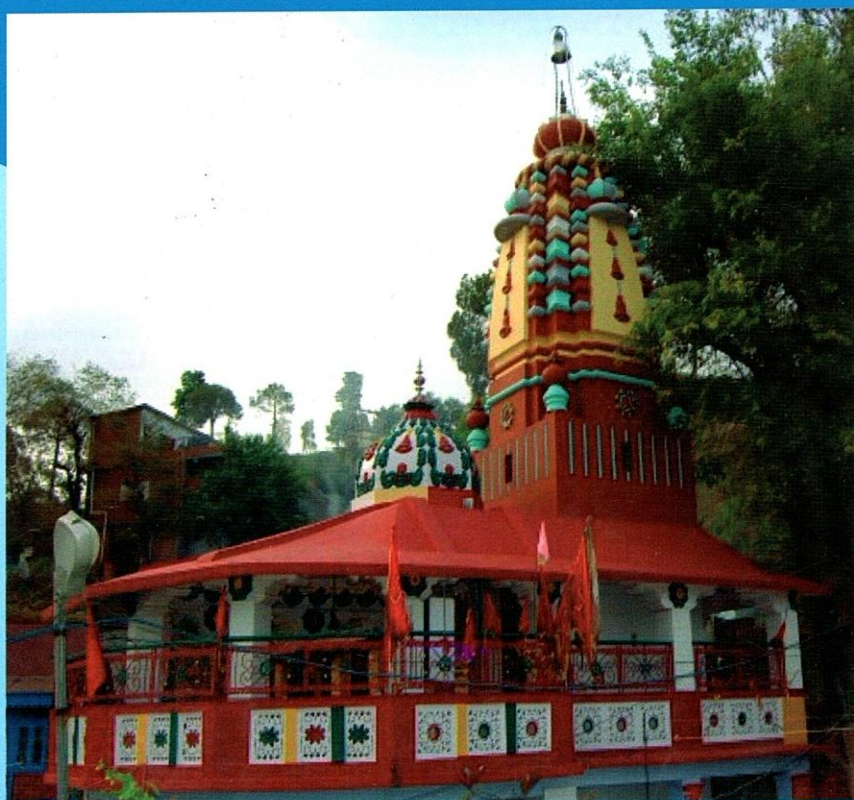
हिमाचली परिप्रेक्ष्य में सोलन जनपद

(इतिहास एवं संस्कृति)



अमर देव आंगिरस

हिमाचली परिप्रेक्ष्य में
सोलन जनपद

(इतिहास एवं संस्कृति)

(बघाट, बाघल, क्योंथल, कुनिहार, महलोग, कुठाड़, बेजा, मांगल, हिण्डूर)



अमर देव आंगिरस



प्रथम संस्करण - 2017
ISBN-978-93-5196-776-7



दयावन्ती प्रकाशन,
अंगिरा अध्ययन संस्थान
समीप फलोद्यान, दाड़लाघाट (अर्की)
सोलन (हि. प्र.) 171102
दूरभाष : 01796 - 248153
मोबाईल : 094181 - 65573, 098051 - 16573

Himachali Pariprekshya main Solan Janpad -Itihas avam Sanskriti

आवरण :
शूलिनी मंदिर, सोलन

मुद्रक :
डिज़ाइन इंडिया, पावर हाउस, न्यू टुटू, शिमला - 171011
मो.93180 - 17070, 94180 - 17070

मूल्य - रु.350/-



समर्पण

परमपूज्या

साध्वी

व्रती

गोलोकवासी

माताश्री रूपदेई देवी

की पावन स्मृति को

श्रद्धापूर्वक

समर्पित



(1922 – 2012)

संस्कृति – एक सतत् अध्ययन

सोलन ज़िले के सांस्कृतिक लेखन पर बहुत कम शोध कार्य हुआ है। अपने अस्तित्व में आने के बाद औद्योगिक विकास की दृष्टि से यह अग्रणी ज़िला रहा है। अंग्रेजी प्रभुत्व 1805 ई. के पश्चात उनके द्वारा यहां सैनिक छावनी एवं उपनिवेश बनाने के कारण यह क्षेत्र क्योंथल (शिमला) की तरह महत्त्वपूर्ण बन गया। सोलन (ऐतिहासिक बघाट) के अतिरिक्त इसकी अन्य आठ ऐतिहासिक ठकुराइयों के इतिहास एवं संस्कृति की समृद्ध परंपराएं हैं जिन पर लेखन की आवश्यकता समझी गई है।

हिमाचल प्रदेश के सांस्कृतिक लेखन में वरिष्ठ साहित्यकार अमरदेव आंगिरस का जाना - पहचाना नाम है। प्रस्तुत संकलन में सोलन जनपद के इतिहास एवं सांस्कृतिक विषयों पर शोध दृष्टि से विशद् विवेचन एवं विश्लेषण का प्रयास किया गया है। एक ही पुस्तक में जिले की नौ रियासतों का इतिहास, सोलन के मेले, लोकगीत, लोकनाट्य धाज्जा, करियाला, बरलाज, लोकोक्तियां, टांकरी लिपि, गुरू सिक्ख परंपरा, प्रजामंडलों का आजादी में योगदान, लोक देवता आदि विषयों पर दुर्लभ जानकारी संकलित करने का श्रमसाध्य कार्य किया गया है।

हिमाचली परिप्रेक्ष्य में सोलन जनपद का हिमाचल के संदर्भों से जोड़ना लेखक ने आवश्यक समझकर भौगोलिक स्थिति का विवरण भी दिया है जो शोध के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो सकता है।

हिमाचल की सांस्कृतिक श्रृंखला में आंगिरस जी की यह पांचवी कृति है। इसमें अनेक विषयों की दुर्लभ एवं लुप्तप्राय जानकारी प्रथम बार प्रस्तुत की गई है जो स्तुत्य प्रयास कहा जा सकता है।

आशा है आंगिरस की अन्य पुस्तकों की तरह संस्कृति प्रेमियों द्वारा इस संकलन का स्वागत होगा एवं नयी पीढ़ी अपनी विरासत से परिचित हो सकेगी।

लेखक को असीम शुभकामनाएं !

एस. आर. हरनोट
वरिष्ठ साहित्यकार

इतिहास के परिप्रेक्ष्य में : सांस्कृतिक धरोहर

इतिहास बोध से मिली सांस्कृतिक चेतना अथवा संस्कृति के मर्म स्पर्श से हुआ इतिहास बोध दोनों जब संश्लिष्ट रूप ग्रहण कर किसी के मानस में घर कर जाएं तो निश्चित रूप से सृजन दिशाएं गहन व सही बनती है जो किसी तर्कसंगत बिन्दु पर कुछ स्थापनाएं करने में सक्षम होती हैं। ऐसा ही अमर देव आंगिरस के मानस में स्थित इतिहास व संस्कृति बोध की चेतना संकेत मिलता है।

'शिवालिक संस्कृति की समृद्ध विरासत : सोलन जनपद की लोक देव परम्परा' पुस्तक के बाद 'हिमाचली परिप्रेक्ष्य में सोलन जनपद : इतिहास एवं संस्कृति' के अन्तर्गत बाघल, क्योंथल, कुनिहार, महलोग, कुठाड़, बेजा, मांगल तथा हिण्डूर छोटी बड़ी रियासतों का इतिहास और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में समष्टि रूप में सर्वेक्षण व अध्ययन एक स्तुत्य प्रयास है। उद्धहरणीय भी ।

प्रस्तुत पुस्तक में हिमाचल के सामान्य परिचय के अन्तर्गत यहां के रियासती भूगोल, स्थापना वंशावलियां, आक्रान्ताओं आदि का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। 'लोक संस्कृति' शीर्षक के अन्तर्गत लोक नाट्य रूपों - करियाला, धाज्जा आदि का परिचय - तत्पश्चात पहेलियां, लोकोक्तियां, टांकरी लिपि के दस्तावेजों, गुरू सिख परम्परा, त्यौहार, मेले, लोकगीत, स्वतंत्रता संग्राम में सोलन जनपद का योगदान और अंत में पारम्परिक पकवानों की मीठी - नमकीन सुगंधी सनी है यह रचना !

आंगिरस सोलन जनपद के भूमि पुत्र हैं जो इस क्षेत्र से भली - भान्ति परिचित हैं। रियासती काल में निकटवर्ती रियासतों के परस्पर सीमान्ती सामरिक संघर्ष भी रहे । सीमा विस्तारण के कारण भी

नित्यप्रति छोटी - बड़ी घटनाएं घटती रहतीं। फलत: दूरवर्ती रियासतों शासकों से सहायता की गुहार भी रहती । इन सारी स्थितियों को लेखक ने संक्षेप में समेट कर विवेच्य जनपदीय इतिहास स्वरूप को उजागर किया है। रियासती इतिहास वहां की लोकधारा को अनेक रूपों से प्रभावित करता मिलता है ।

लोकगीत गायन परम्परा के अन्तर्गत पुत्रजन्म, विवाह संस्कार, मंगलामुखी गीत, सावन गीत, बारहमासा, श्रृंगार एवं नाटी गीत आदि के प्रसंग में मूल गीत को उद्धृत कर संकलन - शोध प्रवृत्ति को भी सार्थक बनाया है। अत: प्रस्तुत रचना मात्र इतिहास - संस्कृति का बोध ही न कराकर पाठक को जनपदीय भाषा के ध्वन्यात्मक रूप से भी जोड़ती है। जैसे 'जेबे त्याए लगणी, तेबे बाईं खे दौड़ना' 'दूई घरा रा प्राओणा, भूखा ई रओ' । अत: अंतर केवल आंचलिक ध्वन्यात्मकता के कारण महसूस होता है जो उच्चारण व लेखन में उभरता है, अन्यथा मूल रूप में भाषा सर्वत्र एक समान है।

देवी - देवताओं से जुड़े पर्व - त्यौहारों व मेलों की परम्परा समूचे हिमाचल को एकसूत्रता में पिरोती है। समरसता लाती है । पुस्तक का अवलोकन करते समय यह सहजानुभूति हुई कि रियासती काल में शासक द्वारा हर सामयिक, सामंती, सामाजिक घटना को समय की पर्तों में दबाने की अपेक्षा उन्हें किसी न किसी पर्व त्यौहार, मेले - उत्सव से जोड़कर जीवन्त बनाने का प्रयास रहा है। 'सोलन जनपद के लोक देवता' से यही ध्वनित होता है।

यह चिन्ता का विषय है कि समय के साथ हमारी सांकृतिक धारा से लोकगायन की बड़ी रसीली, चुटीली, व्यंग्य - विनोद भरी शैलियां धीरे - धीरे विलुप्त हो रही है। कारण अब संस्कारों में वे स्थितियां, रीतियां, रस्में, लोकाचार विस्मृत हो रहे हैं या आधुनिकता उन पर जमकर बैठने - घिसने लगी है। लेखक ने 'पत्तल या तरमौल' नामक छन्दोबद्ध देवस्तुति का वर्णन किया है जो बारातियों को धाम न्योतते समय सुनाई

जाती थी। वधू - विवाह पर शिठणियां - गालियां, गाने की व्यंग्य विनोद भरी चुटकियां सुनाने - गाने का अब अवसर ही नहीं रहा डी. जे. बजा कर इन परम्पराओं का गला ही घोंट दिया गया। इसी प्रकार ऋतु - गीतों - बारहमासा आदि की गायन परम्परा भी धीरे - धीरे विलुप्त होती जा रही है। यही नियति पकवानों की है।

ये सारी चिन्ताएं ही लेखक को अपने जनपद के प्रति संवेदनशील बना पाई है, जिससे उऋण होने की छटपटाहट उसके श्रम - विश्राम के मध्य एक चिन्तन बिन्दु बन कर उभरा है । संक्षेप में प्रस्तुत रचना हर दृष्टि से एक सामयिक स्वस्थ प्रयास है जिसकी सराहना नहीं बल्कि अनुकरण हो ।

'अमर देव आंगिरस' को इस शोधपरक एवं श्रमसाध्य कार्य के लिए हार्दिक बधाई । आशा है सोलन जनपद की संस्कृति पर शोधार्थियों हेतु यह पुस्तक संदर्भ के रूप में उपयोगी सिद्ध होगी । इनके स्वस्थ जीवन के साथ सार्थक - स्वस्थ लेखन हेतु शुभकामनाएं ! इनके साथ सारे परिवार को भी बधाई जो इनके ऐसे लोकज्ञान संचय महायज्ञ में सहयोगी बना है।

डॉ. गौत्तम शर्मा 'व्यथित'
(वरिष्ठ साहित्यकार)

भूमिका

आधुनिक विकास की दृष्टि से सोलन जनपद का हिमाचल में प्रमुख स्थान है। ऐतिहासिक आधार पर दृष्टि डालें तो राजनैतिक गतिविधियों के लिए सोलन का विशेष महत्व रहा है। शिमला पहाड़ियों में स्थापित लघु ठकुराइयों पर वर्चस्व के लिए पटियाला राज्य, मुगलों तथा अंग्रेजों ने इसे एक केंन्द्र बना कर इस क्षेत्र का लाभ उठाया । हिमाचली क्षेत्रों में प्रवेश के लिए वास्तव में यह एक 'पड़ाव' था ।

बघाट के प्रारम्भिक शासकों ने प्रारम्भ में 'भोच' को अपनी राजधानी बनाया था, किन्तु अंग्रेजों की गतिविधियों के कारण 'सोलन' को महत्वपूर्ण स्थान मिला। 1815 ई. में गोरखों की पराजय के पश्चात बघाट के पाँच परगनों पर अंग्रेजों ने कब्जा कर इन्हें पटियाला राज्य को बेच दिया था। यहां अंग्रेजों ने अपने सैनिक छावनी स्थापित की तथा 1902 में रेलवे लाईन बिछाने का कार्य किया। कालका - सोलन - शिमला में रेलवे लाईन बिछ जाने से आवागमन में सुविधा हुई तथा अंग्रेजों ने सोलन, जतोग, स्पाटू, डगसाई आदि में सैनिक छावनियां बनाकर 1857 के संग्राम में विजय ही नहीं पाई, बल्कि 1947 ई. तक शिमला की ठकुराइयों पर पूर्ण राजनैतिक वर्चस्व कायम करके इनका शोषण - दोहन किया। स्वाभाविक था कि सोलन क्षेत्र का आर्थिक तथा समाजिक ढांचा सुधरता ।

आजादी के पश्चात हिमाचल प्रदेश के गठन पर इसके क्षेत्र महासू के अन्तर्गत सम्मिलित थे। एक सितम्बर, 1972 को यह शिमला हिल्स की निचली 8 रियासतों तथा नालागढ़ को मिलाकर 'सोलन' जनपद के रूप में अस्तित्व में आया। वर्तमान में सोलन हिमाचल प्रदेश में औद्योगिक विकास की दृष्टि से अग्रणी है। 1950 में सोलन नगर म्यूनिसिपल कारपोरेशन बना जो प्रदेश का सबसे बड़ा कारपोरेशन है। परवाणु, नालागढ़, बरोटीवाला, बद्दी, सोलन, दाड़लाघाट, मांगल आदि क्षेत्रों में विभिन्न कारखानों की स्थापना से सोलन देश में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

सोलन शहर की अपनी विशेषता है। इसे श्रेष्ठ मशरूम उत्पादन के कारण 'मशरूम - सिटी' तथा उत्तम किस्म के टमाटर पैदा करने के लिए

'सिटी ऑफ रैड-गोल्ड' के नाम से जाना जाता है। शिक्षा हब के रूप में यहां कृषि एवं बागवानी विश्व विद्यालय एन. सी. आर. टी. डिग्री कालेज आदि अनेक प्रकार के उच्च शिक्षण संस्थान हैं।

1600 से 5200 मी. की ऊंचाई पर बसे इसके 12 घाट जलवायु की दृष्टि से उत्तम हैं। इसके प्राकृतिक स्थान सैलानियों के आकर्षण केन्द्र बने हुए हैं।

साधारणतय: सोलन नगर क्षेत्र को ही सोलन मान लिया जाता है तथा इसमें सम्मिलित ठकुराइयों बाघल, कुनिहार, कुठार, महलोग, बेजा, मांगल, आदि पर अपेक्षाकृत कम ध्यान जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से इन क्षेत्रों का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं है। यहां की संस्कृति भी हिमाचल के अन्य जिलों की तरह समृद्ध विरासत समेटे हैं।

हिमाचल की शिवालिक श्रृंखला रावी नदी से यमुना नदी तक फैली हुई अपने में सिरमौर, सोलन, बिलासपुर, कांगड़ा ऊना आदि क्षेत्रों को अपने में समेटे हैं। प्रागैतिहासिक काल से ही हिमालयी क्षेत्रों में मानव सम्यता पाई जाती है। सर्वोच्च हिमालय में वर्ष भर हिमपात एवं दुर्गम क्षेत्र होने के कारण इसमें हिममानव या देवताओं के आवास की जनश्रुतियां प्रचलित हैं। मध्य हिमालय में मानव बस्तियों के उल्लेख एवं देवलोकों की कल्पना की गई है।

शिवालिक क्षेत्र जलवायु तथा उर्वरा भूमि के कारण मानव सभ्यता के लिए अधिक अनुकूल रहा है। इस क्षेत्र के आर्यो के प्राचीन देवता शिवजी को इसीलिए इससे जोड़ा गया। इसकी पहाड़ियों को शिवजी की जटाओं तथा क्षेत्र को 'मैनाक' नाम से हिमालय पुत्री पार्वती से जोड़ा गया है।

सोलन जनपद शिवालिक क्षेत्र के अर्न्तगत आता है। शिवालिक की संस्कृति ही सोलन जनपद की संस्कृति कहला सकती है। इतिहाविद् राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार मानव सभ्यता का उदभव शिवालिक क्षेत्र की उर्वरा भूमि पर ही हुआ होगा। अलैगजैण्डर कन्निघम के अनुसार सतलुज नदी के दोनों ओर के पर्वतीय क्षेत्र, विशेषकर शिमला व सोलन जिलों के क्षेत्र कुलिन्द प्रदेश में आते थे। कुलिन्द जनपद का वर्णन महाभारत विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि में आता है। इससे पूर्व वैदिक काल में देव और दैत्यों की कहानियां इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रही है।

हिमालयी क्षेत्रों में ''शंबर'' नामक दैत्य के आर्य और अनार्य जातियों के रूप में जाना जाता है। महाभारत में कुलिन्द प्रदेश के राजा कौरवों और पांडवों दोनों की ओर से लड़े थे।

ईसा पूर्व के जब कुषाणों ने पंजाब क्षेत्र पर अधिकार किया तो कुलिन्द के ये पहाड़ी क्षेत्र स्वत: कुषाणों के अधीन हो गए। कुलिन्द लोग पीछे पहाड़ों में हट गए। कुलिन्दों की दो मुद्राओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है। पहली मुद्रा पर मृग की आकृति है - दूसरी पर राजा अमोघभूति की। कुलिन्दों की मुद्राएं हमीरपुर (मेवा), ज्वालामुखी, अम्बाला और सहारनपुर तथा गढ़वाल क्षेत्रों से मिली हैं। सहारनपुर, देहरादून क्षेत्र कुलिन्दों के महत्त्वपूर्ण राजधानी क्षेत्र थे।

कुलिन्द राजा अमोघभूति की मृत्यु के पश्चात शकों और हूणों ने दक्षिण की ओर से कुलिन्दों पर आक्रमण किया। कुलिन्दों ने पंजाब के योद्धाओं एवं अर्जुनायन के साथ मिल कर संघ बनाया था जिसने इनका सामना किया था। कुणीन्द जनपद 350 ई. पू. ही खत्म हो गया तथा कुलिन्द लोग यहां की जातियों में समा गए। विद्वानों के अनुसार यह जाति ही आज की कनैत जाति है। महाभारत काल से बौध काल ई. पू. 600 तक भारतीय इतिहास धूमिल काल से गुजरा लगता है। पहाड़ी जनपद स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे हैं।

सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक विशाल राज्य की स्थापना की थी। उसके मन्त्री चाणक्य ने पर्वतेश से मैत्री संधि की थी। परिशिष्टपर्वत नामक जैन ग्रथं एवं बौध वृतान्तों में भी चाणक्य के पर्वत नामक एक घनिष्ट मित्र का वर्णन मिलता है। इन पर्वतीय राजाओं का मैदानी नगरों के साथ नाना प्रकार का व्यापार होता था। इन वस्तुओं में हेमवंत (मोती) विसी और माविसी जाति की खालें उल्लेखनीय हैं। अशोक ने नेपाल से कश्मीर तक समस्त प्रदेशों को जीता था जिसमें शिवालिक के ये सभी क्षेत्र थे। उसने यहां के शासकों को ही शासन व्यवस्था सौंपी थी। महावंश ग्रथं के अनुसार मज्जिम और उसके चार साथियों ने हिमालय के पांच राष्ट्रों में बौध - धर्म का प्रचार किया था। कश्मीर और गांधार में यह कार्य मजभान्तिक और अशोक के पुत्र कुणाल ने किया था। अशोक ने हिमालय में कई जगह स्तूप बनाये।

ईसा की पहली शताब्दी में शंकों ने पंजाब को जीता तो पहाड़ी क्षत्रों पर भी प्रभुत्व जमाया। ये घुमन्तु कबीले थे। कहते हैं आज के गद्दी और गुज्जर इन्ही के वंशज है। कालान्तर में इनके शक - और्दुवों का बहुत सा भाग राजपूत, गूजर, जाट, अहीर के रूप में बस गया और कुछ पहाड़ों की तरफ चला गया। इसका कारण किसी अन्य सत्ता का यहां आधिपत्य जमाना रहा है। कुषाण वंश के कनिष्क ने कश्मीर से कुमांऊ तक पर्वतीय प्रदेश को अपने राज्य में मिलाया था जिसमें वर्तमान शिमला - सोलन - सिरमौर के क्षेत्र भी शामिल थे।

चौथी शती में समुद्रगुप्त ने नेपाल से कश्मीर तक इन सभी पर्वतीय राज्यों को जीता। समुद्रगुप्त ने जो मुद्राएं चलाई उनमें देवी हेमवती (बर्फ की देवी) का चित्र भी अंकित्त है।

छठी शताब्दी में हर्षवर्द्धन ने इस क्षेत्र पर आधिपत्य जमाया। मिया गोवर्द्धन सिंह (हिमाचल प्रदेश का इतिहास) के अनुसार सब से पहले कन्नौज पर बंगाल - बिहार के पाल राजाओं का अधिकार हुआ। इनके प्रसिद्ध राजा धर्मपाल 770 - 880 और उनके पुत्र देवपाल 810 - 850 हुए। धर्मपाल ने कन्नौज के इन्द्रगुप्त जो प्रतिहार राजा वत्सराज का समर्थक था, को हटा कर कन्नौज की गद्दी पर इसी वंश के चक्रयुद्ध को बिठाया। राजा धर्मपाल के काल में पश्चिमी हिमालय पर छोटे - छोटे राजाओं का आधिपत्य था जो उसे महाराजाधिराज स्वीकार कर चुके थे। कन्नौज पर पाल वंश के बाद गूजर प्रतिहार वंश के नागमभट्ट द्वितीय 805 - 33 और राजा भोज 836 - 62 का राज कायम हुआ। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार इस राजा ने किरातों अर्थात पश्चिमी हिमालय में राज करने वाली जाति पर विजय पाई थी।

12वीं शती में मुसलमानों के आक्रमणों एवं राजपूतों पर विजयों के कारण वहां के राजपूत योद्धा और राजकुमार पलायन कर यहां पहाड़ों में आए तथा जंगली कबीला सरदारों को मार - भगाकर यहां के छोटे - छोटे सामन्त बन गए।

इन राजपूत रियासतों में मैदानों से आये परमार, चौहान, चन्देल, सेन, पाल, राठौर, वंश के राजपूतों ने अपनी संस्कृति की छाप यहां के समाज पर डाली। ये रजवाड़े ठाकुर, राणा, राजा के रूप में शासन व्यवस्था के

अंग बने। आज ये अनेक उपजातियों में विभक्त मिलते हैं।

राजपूतों से पूर्व (9 - 10वीं शती) यहां के अधिकांश क्षेत्रों में मावियों का प्रभुत्व था। ये विभिन्न क्षेत्रों में अपने शक्ति - बल से 12 कोस से 20 कोस क्षेत्र पर कब्जा कर लेते थे और जनता का शोषण करते थे। एक मत के अनुसार मावी इन रियासतों में पंजाब के दुर्गम क्षेत्रों से तब आये जब हर्ष के पश्चात यहां की शसन - व्यवस्था कमजोर थी और पंजाब पर शक्तिशाली राजपूत राजाओं और विदेशियों के आक्रमण हो रहे थे। मालवा क्षेत्र उस समय पंजाब का दुर्गम क्षेत्र था जहां से ये मावी या म्वाई पहाड़ी क्षेत्रों में आये। एक अन्य मत के अनुसार खश जाति के स्थानीय सामन्त या सरपंच मावी कहलाते थे जो खशों की सत्ता समाप्त होने पर छोटे - छोटे भू - क्षेत्रों के निरंकुश स्वामी बन गए थे। किन्तु यह धारणा तर्क संगत नहीं लगती।

वस्तुत: नौवीं शती से गोरखा आक्रमण (1805) तक ये रजवाड़े ठाकुर, राणा और सामन्त कहलूर, हण्डूर, सिरमौर और कभी - कभी क्योंथल को भी वार्षिक कर देते थे। इन पहाड़ी रियासतों ने मैदानी शासकों, मुगलों सिक्खों, अंग्रेजों को सदैव किसी रूप में कर दिया। पहाड़ी राजाओं का पहाड़ों से निकल कर मैदानी राजाओं से किसी लड़ाई का विवरण नहीं मिलता। मात्र परस्पर सीमाओं के संघर्ष में ये आपस में ही लड़ते रहते थे। पर यह आवश्यक तथ्य है कि रियासती शासन में इनका शान्तिपूर्ण शासन था। अगर शोषण था तो इन्ही रजवाड़ों का। रजवाड़ों की स्थिति के बारे में एक अंग्रेज ने टिप्पणी की है कि पहाड़ी ठाकुर जब मैदानी राजाओं से मिलने अथवा सामान क्रय करने हेतु घोड़े पर आता था तो ऐसा लगता था जैसे कोई घोड़े खच्चर का व्यापारी हो। मैदानी राजाओं की तुलना में वह नगण्य लगता था। वह अपना स्तर बढ़ाता भी कैसे, पहाड़ों में कोई संसाधन तो थे नहीं। उसे तलवार - बन्दूक के क्रय के लिए मैदानी राजाओं पर ही निर्भर रहना पड़ता था। सोलन (शिमला) क्षेत्र के रजवाड़े भी इसका अपवाद नहीं थे।

सोलन जन पद के इतिहास एवं संस्कृति पर अभी तक छिट - पुट कार्य हुआ है इसके संकलन एवं शोध की परम आवश्यकता है ।

प्रस्तुत पुस्तक में सोलन जनपद की संस्कृति एवं इतिहास की विशद् प्रस्तुति का प्रयास किया गया है। जनपद की सभी रियासतों के

इतिहास एवं अन्य सामग्री को ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर संकलित करके प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया गया है । इतिहास के लिए राजवंशों की वंशावलियों, गजेटियरों, सैंसीज रिपोर्टों एवं बन्दोबस्त रिपोर्टों को आधार बनाया गया है। विडंबना है कि राजवंशों के पास अपने इतिहास एवं संस्कृति की सामग्री साधारण वंशावलियों के अतिरिक्त उपलब्ध नहीं हैं अत: यह कार्य दुष्कर नहीं तो श्रमसाध्य अवश्य है।

लोकगीतों, लोकोक्ति, मुहावरों, पहेलियों, टांकरी भाषा, देवी देवताओं तथा त्यौहारों आदि के संकलन के लिए मुझे जिले के क्षेत्रों में समय - समय पर घूमना पड़ा । इस कार्य के लिए बड़े बुज़ूर्गों एवं माताओं से प्राप्त सहयोग मिला, इसके लिए में उनका हार्दिक आभारी हूँ। विशेषकर ग्राम बातल जिसे सम्मान से 'छोटी - काशी' कहा जाता है और जो अपनी समृद्ध संस्कृति को वर्तमान में भी सहेजे हैं, मेरे इस कार्य का प्रमुख आधार बन सका है।

पुस्तक की प्रामाणिकता के लिए जिन लेखकों की पुस्तकों से संदर्भ लिए गये हैं उनके प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ। पुस्तक की भूमिका लिखने के लिए एवं मुझे प्रेरणा देने वाले डॉ. गौत्तम व्यथित प्रोफेसर एवं भाषा संस्कृति साहित्य पुरस्कार सम्मानित साहित्यकार का हार्दिक आभार। बन्धुवर एस. आर. हरनोट जी का दो शब्द एवं सुझावों के लिए हार्दिक आभार। प्रिय जगदीश हरनोट, डिज़ाईन इंडिया ने पुस्तक के आवरण डिज़ाईन व सैटिंग में जो सहयोग दिया उसके लिए उनका आभार एवं अभिनन्दन।

विषय की व्यापकता के कारण सामग्री की अपूर्णता स्वभाविक हो सकती है इसके लिए सहृदय पाठकों - विद्वानों की सम्मति की अपेक्षा रहेगी। सामग्री जुटाने में लम्बा समय लगा है तथा विषय व्यापक है। अत: तथ्यों के अधूरेपन, पुनरावृति एवं प्रूफ की कमियों के लिए क्षमा प्रार्थना !

आशा है सोलन जनपद के इतिहास एवं संस्कृति पर तथ्यात्मक प्रस्तुत की गई यह पुस्तक पाठकों एवं शोधार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

लेखक

कुछ तथ्य

शिमला हिल्स

ऐतिहासिक 'शिमला हिल्स' में 28 (30) रियासतें थीं, जिनका क्षेत्रफल 4800 वर्गमील था। दक्षिणी दिशा में ये पटियाला राज्य के पिंजौर तहसील और अम्बाला जिले को स्पर्श करती थी। तथा पश्चिम में होशियारपुर और कांगड़ा जिलों में सीमा बनाती थी। उत्तर में मण्डी, सुकेत और कुल्लू एवं पूर्व में हिमालय की श्रृंखला बुशैहर को तिब्बत और गढवाल से अलग करती सीमा बनाती थीं। अंग्रेजी प्रशासन ने शिमला हिल्स को 'प्रिंसली-स्टेटस' के अन्तर्गत 18 शिमला से ऊपर की ठकुराइयों और 12 शिमला से (क्योंथल) नीचे की ठकुराइयों में प्रशासन की दृष्टि से समय-समय पर वर्गीकृत किया था। इनकी संख्या 30 थीं, किन्तु रियासतों के परस्पर अधिकार करने पर इनकी संख्या घटती-बढ़ती रहती थी।

-शिमला हिल स्टेटस गजेटियर-1910 पंजाब हिल स्टेटस।

अठारह ठकुराइयाँ-

जुब्बल, कोटगढ़, बलसन, खनेटी, करांगलू, देलठ, ठियोग, सुन्दर, सांगरी, भड़ोली, दरकोटी, जुब्बल, कोटगढ़, बलसन, रावी, खनेटू, करांगलू, देलठ, सारी, नावर, डोडरा क्यार, ठियोग, घूण्ड, पुन्दर, बेजा, सांगरी, दरकोटी, थरोच।

बारह ठकुराइयाँ-

क्योंथल, बघाट, बाघल, कुठाड़, कुम्हार सेन भज्जी, महलोग धामी, कोटी, क्यारी मधान, कुनिहार, मांगल-पंजाब गर्वन्मैन्ट, रिकॉर्ड ऑफ द दिल्ली रेजीडेन्सी एण्ड एजेन्सी लाहौर-1911 वाल्यूम आजादी-पूर्व की सोलन जनपद में सम्मिलित रियासतें एवं क्षेत्रफल :-

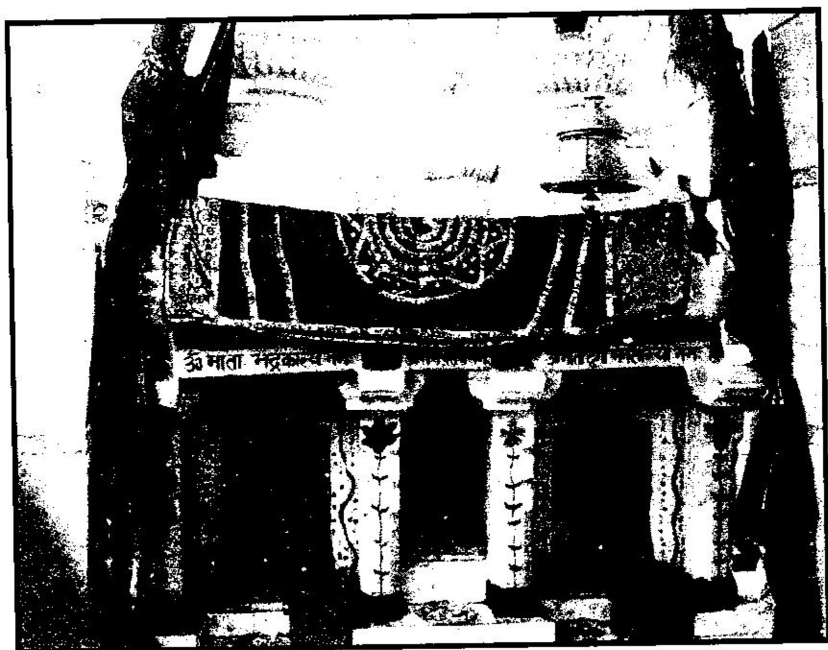
मांगल - 12 वर्गमील
बाघल - 124 वर्गमील
कुठाड़ - 20 वर्गमील
महलोग - 43 वर्गमील
बेजा - 4 वर्गमील
बघाट - 36 वर्गमील
कुनिहार - 8 वर्गमील
क्योंथल - 116 वर्गमील

अन्य 12 ठकुराइयों में सम्मिलित धामी 26 वर्गमील, कोटी 50 वर्गमील, भज्जी 93 वर्गमील में फैली थी। ये रियासतें वर्तमान में शिमला जिला में सम्मिलित की गई हैं।

शिमला हिल स्टेट्स गजेटियर 1910 के अनुसार कहलूर का राजा अजमेर चन्द (1692 - 1738) जिसने 40 वर्ष राज किया तथाउसका पुत्र देवी चन्द (1738 - 1778 ई.) अपनी अधीनस्थ ठकुराइयों से वार्षिक कर वसूली करते थे।

राणा - बाघल - 1000 रू.
बघाट - 1000 रू.
क्योंथल - 3000 रू.
भज्जी - 700 रू.
महलोग - 700 रू.
धामी - 300 रू.
कुठाड़ - 100 रू.
कोटखाई - 300 रू.
कुनिहार - 100 रू.
बलसन - 200 रू.
नेहरा - 200 रू.
बेजा - 100 रू.
मांगल - 100 रू.

सोलन जनपद का प्राचीनतम मंदिर



भद्रकाली मंदिर, जरवौली देवी - अर्की
(11वीं - 12वीं शताब्दी)

विषय क्रम

सोलन की ऐतिहासिक रियासतें

लोक संस्कृति सोलन

त्यौहार और मेले

लोक गीत : (सोलन) क्षेत्र

हिमाचल प्रदेश – सामान्य परिचय

भौतिक – परिवेश

हिमाचल का अर्थ है - बर्फ का पहाड़ ! अधिकांश क्षेत्रों में बर्फ पड़ने के कारण इस प्रदेश को 'हिमाचल प्रदेश' का नाम दिया गया। इस का अधिकांश भाग हिमालयी श्रृंखलाओं के अन्तर्गत "शिवालिक - पर्वत श्रृंखला," (लघु हिमालय) के अन्तर्गत आता है । कुछ भाग उच्च हिमालय तथा मध्य हिमालय तक भी विस्तृत है । यहाँ के प्राचीन साहित्य और संस्कृति में आर्य जाति, देवों और ऋषि - मुनियों की गाथाएं आज भी वर्तमान हैं, इस कारण संसार की सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता को सबसे प्राचीन माना जाता है। आर्यों के पवित्र ग्रंथ - भगवद्गीता में कृष्ण ने दिव्य - विभूतियों का उल्लेख करते हुए अपने को पर्वतों में हिमालय कहा है। हिमाचल में राक्षस, असुर, दानव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, किरात आदि प्राचीन मानव जातियों का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है। इन जातियों में आर्य जाति श्रेष्ठ रही, अत: आर्यों की सभ्यता हिमालयी क्षेत्रों से विकसित हुई, इसके विभिन्न प्रमाण दिए जा सकते हैं। मनाली, मणिकर्ण, रेणुका, भृगुतुंग, किन्नर कैलाश, रोहतांग, धौलाधार आदि ऐतिहासिक स्थलों पर मनु, व्यास, पराशर, भृगु - सहस्रबाहु, परशुराम, बली, मार्कण्डेय, पाण्डव आदि महापुरूषों के वृतान्त यहां की संस्कृति में रच - बस गये हैं। वस्तुत: वैदिक काल से योगी, ऋषि मुनि तथा शान्ति के पिपासु हिमाचली क्षेत्रों में निवास करते रहें है। मुगल काल में तो अनेक राणा - ठाकुरों ने यहां विभिन्न क्षेत्रों में राज्यों की नींव डाली थी।

प्राचीन काल की सनातन वैदिक परम्परा यहां के कण - कण में आज भी विद्यमान है, अत: इस भूमि को 'देवभूमि' कहा गया है। पौराणिक सहित्य में भी हिमाचल को 'देवभूमि' नाम से अभीहित किया गया है।

स्थिति

हिमाचल प्रदेश 55673 वर्ग किलो मीटर में फैला है। इसकी सीमाएं उत्तर में जम्मू - कश्मीर, दक्षिण - पश्चिम में पंजाब, दक्षिण में हरियाणा, दक्षिण - पूर्व में उत्तराखण्ड और पूर्व में तिब्बत को स्पर्श करती है । हिमाचल प्रदेश पर्वतीय क्षेत्र है, अत: अंग्रेजों ने इसे 'शिमला - हिल्ल - स्टेट्स' का

नाम दिया था जो 'पंजाब - हिल्ल - स्टेट्स' के अन्तर्गत प्रशासनिक इकाई बना रहा।

इसकी पर्वत - श्रृंखलाओं की समुद्र - तल से ऊँचाई 350 मीटर से 7000 मीटर तक विस्तृत है। किन्नौर का शिल्ला जास्कर पर्वत श्रृंखला में सबसे ऊँचा 7025 मीटर ऊँचा पर्वत है। हिमाचल प्रदेश 30^0 - 22 - 40^0 उत्तरी अक्षांश से लेकर 75^0 - 45 - 55^0 देशान्तर से लेकर 79^0 - 04 - 20^0 पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इसकी पर्वत - श्रृंखलाओं की ऊँचाई दक्षिण से उत्तर तथा पश्चिम में पूर्व की ओर निरन्तर बढ़ती जाती है।

हिमाचल प्रदेश को प्राकृतिक आधार पर निम्नलिखित तीन भागों में बांटा जा सकता है -

1. बाह्य हिमालय अर्थात शिवालिक श्रृंखला
2. मध्य - हिमालय
3. सर्वोच्च हिमालय अर्थात उत्तरी पर्वत श्रृंखला

शिवालिक श्रृंखला

शिवालिक का अभिप्राय है 'शिवजी की जटाएँ'। संभवत: शिवजी की जटाएं सर्वोच्च हिमालय से लघु हिमालय - शिवालिक तक फैली है अत: इन्हें शिवालिक का नाम दिया गया हैं। प्राचीन भू - वैज्ञानिको ने शिवालिक को मैनाक का नाम दिया है। यहां के पर्वत भुरभुरी मिट्टी और खनिज पदार्थों से निर्मित है अत: यहां भू - स्खलन अधिक मात्रा में होता है। रावी नदी से यमुना तक दक्षिणी क्षेत्र खण्ड में इनका नियमित फैलाव है। इसमें सिरमोर के निचले क्षेत्र, बिलासपुर, ऊना, सोलन और कांगड़ा आते हैं। यह पर्वत श्रेणी डलहौजी के दक्षिणी भाग से शुरू होती है। यहां इसे 'हाथी - धार' कहा जाता हैं। नूरपुर में नागनी धार व्यास नदी के किनारे चौमुखी पर्वत, ऊना में सोलासिंगी धार, रामगढ पर्वत, बिलासपुर में कोट कहलूर, नयना देवी धार, सोलन में राजगढ पर्वत, सिरमौर में डोगधार तथा धारटी धार पर्वतीय क्षेत्र इसके अन्तर्गत आते है। इसमें कांगड़ा की घाटी, स्वां नदी घाटी, नालागढ़ का दून - क्षेत्र और सिरमौर का क्यारदा दून की उपजाऊ घाटियां हैं।

मध्य हिमालय

इसके अन्तर्गत नयनाभिराम पर्वत श्रृंखला 'धौलाधार आती है। धौलाधार का अर्थ है - सफेद बर्फीली धार ! यह बद्रीनाथ के निकट महान

हिमालय की श्रृंखला से अलग होती है। रामपुर बुशैहर में सतलुज, लारजी के निकट व्यास तथा दक्षिणी पश्चिमी चम्बा के निकट रावी इस श्रृंखला को काटती है।

धौलाधार श्रृंखला की उत्तरी ढलान पीर – पंजाब की दक्षिणी ढलान से बड़ा भंगाल की पर्वतीय श्रेणी से जुड़ती है, जिसकी औसत ऊँचाई 4600 मीटर है। धौलाधार की कांगड़ा घाटी से औसत ऊँचाई 3600 मीटर से 4550 मीटर तक है। धौलाधार एकाएक उठी हुई चोटी है। बड़ा भंगाल में पश्चिम की ओर से पीर पंजाल पर्वत श्रेणी इस पर्वत श्रृंखला में विलय कर मण्डी जिला में प्रवेश करती है। यहां नारगू धार, घोघड़ धार, तथा झटींगरी से ऊहल नदी के पार कूटगढ़, देवगढ़, हस्तपुर, अम्बरगढ़ पर्वत शिखर हैं जो दुलची जोत से बजौरा तक विस्तृत हैं। मण्डी और कुल्लू जिलों की सीमा निर्धारित करते हुए हाथीपुर धार स्थित है। इसके उत्तर में कुल्लू की कण्डीधार तथा भूजोत है। हाथीपुर धार के पूर्वी भाग में कटौला के समीप टिहरीधार है जिसका सर्वोच्च शिखर तुंगाधार है। कंडीधार दक्षिण की ओर मुड़ती हुई पराशर झील तक विस्तृत है। मण्डी का चुहार क्षेत्र और उत्तरसाल का क्षेत्र धौलाधार इसी भाग में स्थित हैं इसमें बसाही धार, मुरारी देवी, सिकन्दर धार, कमलाह पर्वत तथा लिण्डी धार इसके समान्तर फैली हैं।

बिलासपुर जिले में यह फेटी धार, झंझयार धार, बंदला धार, बहादुरपुर धार, कोट धार, बाड़ीधार, पंचमुण्डा धार, बड़ोग धार सिरमौर में चूड़धार, नौहराधार, हरिपुर धार इसकी प्रसिद्ध धारें हैं। इसी तरह बजौरी के समीप नारगू धार व्यास नदी द्वारा विभाजित होकर पूर्व में थाची शिकारी धार, कुल्लू में जलोड़ी धार, श्री खण्ड महादेव पर्वत और शिमला में सतलुज के बाएं किनारे निरथ से एकदम ऊपर उठती हुई यह पर्वत श्रृंखला कुमार सेन, थानाधार, नारकण्डा, हाटू शिखर, बाघी होती हुई खड़ा पत्थर के पूर्व में कूपर पर्वत होती हुई कन्चू और छाजपुर शिखरों के पश्चात टौंस नदी के दाएं किनारे तक विस्तृत हैं। नारकण्डा से दक्षिण की ओर शिमला तक महासूधार इसका सबसे रमणीक भाग है।

मध्य हिमालय क्षेत्र में चम्बा, खजियार, चुराह, कुल्लू, मण्डी, शिमला, बिलासपुर और सिरमौर के क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र के रोहतांग दर्रा समुद्र 4800 मीटर ऊंचाई लिए हुए है। चूड़ चांदनी 3647 मीटर ऊंचाई लिए है ।

सर्वोच्च हिमालय श्रृंखला

हिमालय की उच्च श्रृंखला (5000 - 6000 मी.) पूर्वी सीमा के साथ - साथ चलती है और सतलुज के तंग बहाव द्वारा दो भागों में विभाजित होती है। इस श्रृंखला के प्रसिद्ध दर्रे हैं- कांगला (5248 मी.) बारालाचा (4512 मी.) परांग (5548 मी.) और पीन पार्वती (4802 मी.)।

जास्कर श्रृंखला सबसे पूर्व में है जो स्पीति और कश्मीर को तिब्बत से अलग करती है। इसकी चोटियां 6500 मी. से भी ऊंची है - पर्गीयल (6791 मी.) और शिल्ला (7026 मी.) जास्कर श्रृंखला सतलुज की धारा तथा शिपकी दर्रे द्वारा दो भागों में कटती है इसमें अनके ग्लेशियर हैं। जास्कर पर्वत श्रेणी - पांगी भरमौर, कुंजम जोत, पिन पार्वती, चांशल पर्वत के मध्य पांगी, लाहौल, स्पीति, किन्नौर, डोडरा क्वार के जनजातीय क्षेत्र अपनी प्राचीन पारम्परिक रीति रिवाजों को संजोए हुए हैं।

हिमालय का यह क्षेत्र दिव्य, पवित्र, देवात्माओं की श्रेष्ठ तपोभूमि माना गया है जहां आज भी देवताओं और ऋषिमुनियों की आत्मांए निवास करती हैं। हिम मानव की संभावनांए भी वैज्ञानिक प्रकट करते रहे हैं।

हिमाचल प्रदेश स्वतन्त्रता पूर्व की पंजाब - हिल - स्टेट्स की तीस पहाड़ी रियासतों को मिलाकर 15 अप्रैल, 1948 को अस्तित्व में आया था। ये रियासतें थीं - चम्बा, मण्डी, सुकेत, रामपुर बुशैहर, सिरमौर, बेजा, कुठाड़, क्योंथल, ठियोग, मधान, घूंड, रतेश, जुब्बल, दरकोटी, रावीगढ़, देलठ, कुमार सेन, सांगरी, खनेटी, भज्जी, कोटी, बलसन, दाड़ी, थरोच, मंगल, बघाट, बाघल, कुनिहार, महलोग और धामी। एक नवम्बर, 1966 में भौगोलिक तथा भाषाई आधार पर इसे विशाल राज्य का रूप प्रदान किया गया। इसमें कांगड़ा, शिमला, कुल्लू, लाहौल स्पीति, नालागढ़, ऊना एवं बकलोह आदि के पहाड़ी क्षेत्र पंजाब से काटकर मिलाये गए।

आज हिमाचल 12 जिलों में विभक्त है - चम्बा, मण्डी, बिलासपुर, सिरमौर, शिमला, सोलन, किन्नौर, लाहौल - स्पीति, कुल्लू, कांगडा और हमीरपुर ।

भौगोलिक दृष्टि से विशेष विभिन्नता नहीं है, अतः संस्कृति की पर्याप्त समानताएं हैं। हिमाचल प्रदेश की भाषा पहाड़ी है। पहाड़ी भाषाएं कई हैं जो शौरसेनी अपभ्रंश से निकली हैं। इनकी लिपि देवनागरी है। स्वतन्त्रतापूर्व

इनकी लिपि टांकरी भी रही है। प्रदेश में टांकरी लिपि की पांच शैलियां है जिन में पर्याप्त समानताएं है। मण्डीयाली, कांगड़ी, कुल्लवी, चम्बयाली, महासुवी टांकरी लिपियों के प्राचीन दस्तावेज़ बहुतायत में उपलब्ध होते हैं। भोटी, सांचा और डोगरी की अपनी लिपियां रही हैं।

पहाड़ी बोलियों के तीन वर्ग हैं - पूर्वी पहाड़ी की प्रधान बोली नेपाली है। नेपाली को खसकुरा या गुरखाली भी कहते हैं। यह नेपाल की राज भाषा है। मध्य पहाड़ी के गढ़वाली और कुमाऊंनी के दो रुप है, पश्चिमी पहाड़ी में लगभग 20 बोलियां है, जिनमें चंब्याली, जौनसारी, सिरमौरी आदि प्रमुख है। चंब्याली की लिपि शेष से भिन्न है। सभी पहाड़ी बोलियों पर ऐतिहासिक कारणों से राजस्थानी का यथेष्ठ प्रभाव है। ये हिमाचल के निचले क्षेत्र में बोली जाती है। पश्चिमी पहाड़ी से जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी क्योंथली, कुल्लवी, मण्डयाली तथा सतलुज वर्ग की बोलियां विकसित हुई हैं। मूल रूप से इन भाषाओं बोलियों में पर्याप्त समानताएं हैं। बारह ठकुराइयों में परस्पर सामाजिक सम्बन्धों एवं आदान प्रदान के कारण इनकी बोलियों में मामूली भाषा का अंतर है। हिमाचल प्रदेश अपनी वनस्पति एवं प्राकृतिक सम्पदा की दृष्टि से सम्पन्न है। प्रदेश का 38 प्रतिशत भाग इमारती पौधों की सघनता से समृद्ध है। यहां दुर्लभ प्रकार के जीव जन्तु, पक्षी पाए जाते हैं।

जलवायु

पहाड़ी क्षेत्र होने के कारण हिमाचल का जलवायु भिन्नता लिए हुए है। यहां पहाड़ियों में भारी बर्फवारी होती है। हिमाचल में पर्यटन के लिए सुहावने मास सितम्बर से मार्च होते हैं। जब देश विदेश से सैलानी यहां बर्फ देखने तथा बर्फ के खेलों के लिए आते हैं। यहां का जलवायु ऊंचाई के अनुसार ठण्डा - गर्म होता है प्रदेश की समुद्रतल से औसत ऊंचाई 350 मीटर से 700 मीटर तक है। यहां विशेकर तीन मौसम होते हैं - अक्टूबर से फरवरी सर्दी की ऋतु होती है। मार्च से जून तक ग्रीष्म ऋतु होती है। जुलाई - अगस्त वर्षा ऋतु होती है। वर्षा ऋतु के बाद यहां का मौसम सुहावना हो जाता है। सबसे अधिक वर्षा धर्मशाला में (3400 मीटर) होती है। वार्षिक वर्षा 2909 से 3800 मीटर तक होती है। प्रदेश का औसत तापमान 22 डिग्री से 37 डिग्री तक रहता है। सर्दी में 0 से 15 डिग्री सेल्सियस तक रहता है।

नदियां

हिमाचल प्रदेश में पांच प्रमुख नदियां बहती हैं। इन नदियों के नाम पर पंजाब एवं हिमाचली क्षेत्रों को पंचनद क्षेत्र के नाम से पुकारा जाता था। पंजाब क्षेत्र को पांचाल प्रदेश इसीलिए कहा जाता था। हिमाचल की प्रमुख नदियों में सतलुज अर्थात शतद्रु नदी है।

सतलुज नदी :

सतलुज तिब्बत में स्थित मानसरोवर झील के पश्चिमी भाग से निकल कर किन्नौर के शिपकी दर्रे (6608 मीटर) से हिमाचल में प्रवेश करती हुई लगभग 320 किलोमीटर लम्बा सफर तय करती हुई कल्पा, रामपुर, बिलासपुर नगर से भाखड़ा बांध तक पहुंचती है। यहां यह संसार की सबसे बड़ी भाखड़ा - 'गोविन्द सागर' झील बनाती है। सतलुज की सहायक नदियां हैं - बस्पा, स्पीति, नोगली, गंभर, आली और सीर खड्ड आदि।

व्यास नदी

व्यास नदी रोहतांग दर्रे (3978 मीटर) से बहती हुई बजौरा से मण्डी में प्रवेश करती है। व्यास का सम्बन्ध पौराणिक ऋषि वेद व्यास की कर्मस्थली से जोड़ा जाता है। यह मनाली, नगर, कटराई, रायसन, कुल्लू, पंडोह, मण्डी, सुजानपुर, नादौन से बहती हुई पौंग डैम में विलीन हो जाती है। पंडोह बांध द्वारा एक सुरंग द्वारा इसका पानी बग्गी पहुंचाया गया है और एक नहर के रूप में 20 कि. मी. सुरंग द्वारा सलापड़ के स्थान पर सतलुज नदी में मिलाया गया है।

रावी नदी

रावी का उद्‌गम धौलाधार के मध्य स्थित बड़ा भंगाल क्षेत्र है। प्राचीन काल में इसे इरावती कहा जाता था। यह मणी महेश के दामन से बहती हुई चम्बा नगर में प्रवेश करती है, फिर अहाला के समीप जम्मू की सीमा निर्धारित करती कश्मीर में प्रवेश करती है। यह 158 कि. मी. लम्बी यात्रा करके खैरी के निकट हिमाचल से अलग हो जाती है।

चिनाब नदी

चिनाब नदी कुल्लू की दो उप सरिताओं चन्द्रा और भागा के मिलने से अस्तित्व में आई है । ये दोनों बारालाचा दर्रे (4891 मीटर) से निकलती हैं।

चन्द्रा दक्षिण – पूर्व से तथा भागा उत्तर – पश्चिम से। ये छोटी सरिताएं 2286 मी. की ऊँचाई पर तांदी के स्थान पर एक विशाल चन्द्रभागा नदी को जन्म देती हैं। तांदी से यह उदयपुर होती हुई यह चम्बा में प्रवेश करती है तथा घरवास के समीप यह जम्मू – कश्मीर में प्रवेश करती है। लाहौल में इसे तांदी के आगे चन्द्रभागा, और चम्बा में चिनाब कहते हैं। इसका प्राचीन नाम 'असक्नि' है। यह नदी हिमाचल में लगभग 122 कि. मी यात्रा करती है। यह स्पीति, लाहौल और पांगी क्षेत्रों की प्रमुख नदी है।

यमुना नदी

यमुना उतराखण्ड के गढ़वाल क्षेत्र के यमुनोत्री स्थान से निकलकर सिरमौर में अम्बोहा के समीप हिमाचल के पौंटा साहिब को स्पर्श करती हरियाणा में प्रवेश करती है। इसके जल को हिमाचल उपयोग नहीं कर पाता। इसकी महत्वपूर्ण लघु – सरिताएं हैं – टौंस, पब्बर, गिरिगंगा। पब्बर रोहडू के चांसल चोटी चन्द्र नाहन झील से निकलती है और गिरि जुब्बल के कूपर चोटी से निकलती है। इसके किनारे रोहडू, हाटकोटी जैसे स्थान बसे हैं। इसके ट्राऊट मछली प्रचुर मात्रा में मिलती है।

हिमाचल प्रदेश की प्रसिद्ध झीलें

चम्बा में – खजियार झील, मणिमहेश झील, घड़ासरु झील, महाकाली झील

मण्डी में – पराशर झील, रिवालसर झील, कालासर, सुखसर, कुमावाह, कमरू नाग झील

कांगड़ा में – डल झील, कावेरी झील।

कुल्लू में – भृगु, दशहर झील, सरयोल सर झील, मंतालर झील

लाहौल – स्पीति में – चन्द्रताल झील, सूरजताल झील, नीलकंठ झील

शिमला में – चन्द्रनाहन, कराली झील, बरादो नसर झील

किन्नौर में – नाको झील

सिरमौर में – रेणुका झील, परशुराम झील, सुकेती झील

बिलासपुर में – गोविन्द सागर

हिमाचल अपने गर्म पानी के चश्मों के लिए प्रसिद्ध है। लोग इन चश्मों को धार्मिक - दृष्टि से देखते हैं तथा विशेष पर्वों पर स्नान - पूजा करते हैं। कुल्लू में मणिकर्ण, कसोल, वशिष्ठ स्थानों पर सदाबहार गर्म पानी के चश्मे हैं। इसके अतिरिक्त तत्तापानी में सतलुज के किनारे प्रसिद्ध गर्म पानी के स्रोत हैं जो देश - विदेश के पर्यटकों एवं श्रद्धालुओं के आकर्षक के केन्द्र भी हैं। शिमला में ज्यूरी में भी गर्म पानी के स्रोत हैं, हिमाचल के प्राय: समस्त क्षेत्रों में खनिज नमक खड़िया मिट्टी, चूने का पत्थर, बैराइट्स, अभ्रक, लौह अयस्क, शीशा, सीमेंट का पत्थर स्लेट - पत्थर पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। हमीरपुर क्षेत्र में यूरेनियम धातु के मिलने की भी पर्याप्त संभावनाएं हैं।

हिमाचल प्रदेश – कुछ तथ्य : –

जिले – बिलासपुर, चम्बा, हमीरपुर, कांगड़ा, किन्नौर, कुल्लू, लाहौल स्पीति, मंडी, शिमला, सिरमौर, सोलन, ऊना।

क्षेत्रफल – 55673 वर्ग किलो मीटर (21495.5 वर्गमील)

जनसंख्या – 68,56,509 – पुरूष – 34,73,892
– स्त्री – 33,82,617

जनसंख्या घनत्व – 974 प्रति हजार

लिंग अनुपात – 974 प्रतिहजार

साक्षरता – 83.78 प्रतिशत (2011 जनगणना के अनुसार)

साक्षर – कुल व्यक्ति – 51,04,506

पुरूष – 27,91,542 – 90.83 प्रतिशत

स्त्री – 23,12,964 – 76.60 प्रतिशत

जनसंख्या दर – 12.8 प्रतिशत

प्रसिद्ध पर्यटन स्थल : –

चैल, चम्बा, डलहौजी, धर्मशाला, कांगड़ा, लाहौल - स्पीति, पालमपुर, कसौली, खजियार, किन्नौर, कुफरी, कुल्लू, मनाली, शिमला, हिमाचल नेशनल पार्क, भरमौर, शिमला - माल रोड़, रिज्ज, क्राईस्ट चर्च, तारा देवी, काली बाड़ी, सम्मर हिल, जाखू हिल, कुफरी, नारकंडा, वाइल्ड फ्लावर हाल, नाल देहरा, स्टेट म्यूजियम शिमला।

हिमाचल प्रदेश – गठन

15 अप्रैल, 1948 को 21 पहाड़ी रियासतों के विलय से हिमाचल प्रदेश केंद्रीय प्रशासित क्षेत्र के रूप में गठित हुआ । मार्च 1952 से हिमाचल प्रदेश को भारतीय संघीय गणराज्य में पार्ट – सी राज्य का दर्जा दिया गया। मार्च 1952 में ही 36 सदस्यीय विधानसभा का गठन हुआ था। डॉ. यशवंत सिंह परमार राज्य के प्रथम मुख्यमंत्री बने। जयवंत राम विधानसभा के प्रथम अध्यक्ष व कृष्ण चंद उपाध्यक्ष बने थे। 1954 में पार्ट – सी राज्य बिलासपुर का हिमाचल प्रदेश में विलय किया गया । 1956 में राज्य पूनर्गठन आयोग ने प्रदेश को पार्ट – सी राज्य के स्थान पर केन्द्र इसी एक्ट के तहत 31 अक्टूबर 1956 को प्रदेश विधानसभा समाप्त कर दी गई। 15 अगस्त 1957 से केन्द्र शासित परिषद 1956 के तहत प्रदेश में विधानसभा के स्थान पर क्षेत्रीय परिषद अस्तित्व में आई 1 जुलाई 1963 को प्रदेश विधानसभा का पुनर्गठन किया गया और प्रदेश विधानसभा के सदस्यों की संख्या दो नामांकित सदस्यों के साथ बढ़कर 43 हो गई । पुनर्गठन के बाद विस की प्रथम बैठक 1 अक्टूबर 1963 को आयोजित हुई ।1 नवंबर 1966 को पंजाब के कांगड़ा, ऊना, कुल्लू, लाहौल – स्पीति, शिमला व डलहौजी के पहाड़ी भाषी क्षेत्रों का हिमाचल प्रदेश में विलय किया गया। 25 जनवरी 1971 को हिमाचल प्रदेश भारतीय संघीय गणराज्य का 18वां राज्य बना। वर्ष 1971 – 72 में पुनर्सीमांकन के बाद सदस्यों की संख्या 68 हो गई । जोकि 2007 के पुनर्सीमांकन के बाद भी यथावत है।

सोलन जनपद : परिवेश

वर्तमान सोलन जिला उत्तर में शिमला, पूर्व में सिरमौर, पश्चिम में बिलासपुर की सीमाओं को स्पर्श करता है। दक्षिण में पंजाब के रोपड़ और हरियाणा के अम्बाला जिलों को स्पर्श करके सीमा बनाता है। यह जिला समय – समय पर आकार बदलता रहा है। इसकी उत्तर – पूर्व की सीमा सतलुज नदी को स्पर्श करती है।

सोलन जिला 'महासू' जिले को विस्तार देकर संगठित किया गया है। वास्तव में शिमला तथा उसके नीचे पहाड़ियों पर आवाद 12 ऐतिहासिक ठकुराइयों (रियासतों) की 8 रियासतों को मिलाकर आजादी के बाद हिमाचल के 5 जिलों में से एक 'महासू' जिला बनाया गया था, जो शिमला के प्रसिद्ध ऐतिहासिक देवता 'महासू' के नाम पर बनाया गया था। महासू की 8 रियासतें थी– बाघल, बघाट, कुठाड़, कुनिहार, बेजा, मांगल, कोटी, क्योंथल। तत्कालिक जिले थे चम्बा, मण्डी, बिलासपुर, सिरमौर, महासू जिनमे कुछ दिन बाद किन्नौर जिला बनाया गया। 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल के अस्तित्व में आने के समय भौगोलिक स्थिति को देखते हुए गठन किया गया था। यद्यपि 'महासू' जिले के मध्य में न था, लेकिन राजनैतिक और ऐतिहासिक कारणों से शिमला क्योंथल के महत्व तथा बड़ी ठकुराई के कारण 'महासू' का अस्तित्व सामने आया।

चायल, सुबाठु, कसौली, ओच्छघाट, कण्डाघाट, नालागढ़, के क्षेत्र पंजाब में थे। एक नवम्बर, 1966 को राज्यों के पुनर्गठन के समय इन्हें हिमाचल में मिलाया गया और इन्हें सोलन जिला का भाग बनाया गया। इस प्रकार इसमें ऐतिहासिक 9 रियासतों के भाग गठित किये गये। ये हैं – बाघल, बघाट, कुनिहार, बेजा, मांगल, कोटी, क्योंथल, हिण्डूर, कुठाड़। इस प्रकार इसे विशाल स्वरूप प्रदान किया गया। हिमाचल प्रदेश में कांगडा, ऊना, कुल्लू, कण्डाघाट आदि क्षेत्रों को मिलाकर इस पहाड़ी प्रदेश को विशाल हिमाचल का रुप दिया गया।

एक सितम्बर, 1972 को हिमाचल प्रदेश में प्रशासनिक परिवर्तन किया गया। महासू जिला को समाप्त करके शिमला तथा सोलन नये जिले बनाये गये। सोलन जिला में सोलन, कण्डाघाट, अर्की, नालागढ़ चार तहसीले

बनाई गई। इनमें इससे पूर्व सोलन और अर्की तहसीलें महासू में थी एवं नालागढ़ और कण्डाघाट शिमला जिला में थी।

नामकरण :

सोलन जिले की राजधानी सोलन को बनाया गया है। भौगोलिक स्थिति, आवागमन के मार्गों तथा मैदानों से सम्पर्क के कारण इसे राजधानी बनाया गया है। यद्यपि यह ज़िले के मध्य में स्थित नहीं है, किन्तु औद्योगिक दृष्टि से यह क्षेत्र के लिए अनुकूल लगता है। प्रारम्भ में राजा बघाट ने यहां दुर्गा माता का मन्दिर बनाया था जिसे 'शूलिनी' कहा जाता है। यहाँ एक गाँव बस गया जिसका नाम 'शूलिनि' पड़ गया। अंग्रेज-व्यवस्था में शूलिनी का 'सोलन' नाम पड़ा। शुरु में 1863 ई. में अंग्रेजों ने बघाट के राजा दिलीप सिंह से 500 रू किराये पर यह स्थान फौजी छावनी को लिया था। बाद में अंग्रेजी राज में अधिकांश क्षेत्र अंग्रेजों ने कब्जे में लिया।

स्थिति :

सोलन जिला 30°.05' उत्तरी अक्षांश 31°.15' उत्तरी अक्षांश तथा 76°.42' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। जबकि अर्की उत्तर अक्षांश पर 31-09 तथा पूर्वी देशान्तर पर 31-19 है सोलन के शिखर कसौली की ऊँचाई समुद्रतल से 1350 मीटर है। सोलन शिवालिक श्रृंखला के अंतर्गत फैला सुन्दर स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु से समृद्ध क्षेत्र है। करोल का टिब्बा पर्यटन की दृष्टि से सुन्दर स्थल है, जो सांस्कृतिक एवं धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। सोलन क्षेत्र में शूलिनी मन्दिर, जटोली मन्दिर, चिल्ड्रन पार्क, माल रोड़, जवाहर पार्क, मोहन पार्क आदि सुरम्य स्थल हैं।

क्षेत्रफल :

सोलन जिला का क्षेत्रफल 1936 वर्ग किलो मीटर था हिमाचल प्रदेश का क्षेत्र फल 55673 वर्ग किलोमीटर है। पुनर्गठन के बाद 2072 वर्ग कि. मी. हो गया है।

जनसंख्या – 2011 हिमाचल प्रदेश :

जिले	-	12
क्षेत्रफल	-	55673.00

जन संख्या	-	कुल	-	6856,509
		पुरुष	-	34,73,892
		स्त्री	-	33,82617
जनसंख्या वृद्धि	-	12.81 प्रतिशत		
जनसंख्या घनत्व	-	123 प्रति वर्ग कि. मी.		
सेक्स अनुपात	-	974 प्रति हजार स्त्री		
साक्षरता - कुल	-	51,04,506 - 83.78 प्रतिशत		
पुरुष	-	27,91,542 - 90.83 प्रतिशत		
स्त्री	-	23,12964 - 76.60 प्रतिशत		

जिला सोलन :

कुल जन संख्या	-	576670
पुरुष	-	306162
स्त्री	-	270508
साक्षरता औसत		
सोलन	-	82 प्रतिशत
कसौली	-	80 प्रतिशत
सुबाठू	-	86 प्रतिशत
परवाणु	-	73 प्रतिशत
अर्की	-	89 प्रतिशत
डगशाई	-	82 प्रतिशत

उपमण्डल नागरिक 4 - सोलन, नालागढ़, कण्डाघाट, अर्की :

तहसील 6 - सोलन, अर्की, बद्दी, कण्डाघाट, कसौली, नालागढ़
उप - तहसील 4 - रामशहर, कुठाड़, दाड़ला, कुनिहार
विकास खण्ड 5 - सोलन, अर्की, कण्डाघाट, धर्मपुर, नालागढ़
पंचायतें - 211

प्राकृतिक दृष्य :

सोलन क्षेत्र शिवालिक पर्वत श्रृंखला के अन्तर्गत जाना जाता है। यह हिमालयी क्षेत्र का निम्न पर्वतीय खण्ड है। इसकी पर्वत श्रृंखलाओं में चायल पर्वत श्रेणी प्रमुख है। यह शिमला के कुफरी से लेकर मुण्डाघाट होकर चायल

के उत्तर - पूर्व में सोलन में प्रवेश करती है, फिर यह सिरमौर में प्रवेश करती है। गिरि नदी इस पर्वत श्रृंखला को दो भागों में विभाजित करती है। इस पर्वत श्रेणी पर चायल - शिखर समुद्र तल से 2150 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।

एक पर्वत - श्रृंखला तारा देवी शिखर से पश्चिम की ओर बढ़ती हुई शोघी के समीप शालाघाट में सोलन के केथलीघाट, क्यारीघाट, कण्डाघाट, सोलन, बड़ोग, डगशाई, धर्मपुर होती हुई कसौली तक फैली है। इसमें करोल - टिब्बा, बड़ोग, डगसाई उच्च शिखर हैं। इसमें करोल पर्वत समुद्रतल से 7893 फुट ऊँचा सबसे बड़ा शिखर है। शिमला के दक्षिण पश्चिम में जतोग के आगे एक पर्वत श्रेणी घनाहट्टी होती हुई सोलन जिला के गलोग नामक स्थान पर प्रवेश कर शालाघाट तक फैली है यह दानोघाट, कराड़ाघाट से उत्तर - पूर्व की ओर कशलोग, चण्डी, मांगू धार की ओर विस्तृत है। इस पर्वत श्रेणी में हरसंगधार मांगू टिब्बा (चोले की धार) स्थित है। चोले की धार सबसे ऊँचा शिखर है।

मांगू टिब्बा से पश्चिम की ओर यह श्रृखला कशलोग, चण्डी, होती हुई धार टटोह (बिलासपुर) साथ अली नदी के किनारे समाप्त हो जाती है। चण्डी - पजीणा से ऊपर उठती हुई यह धार कांगरी धार, झमरेटा धार, और कठपोल टिब्बे के रुप में आकाश को छूती मालूम होती है। कठपोल टिब्बा शंकू के रुप में 2200 मीटर की ऊंचाई लिए हुए हैं।

एक अन्य धार कराड़ा घाट से घणागूघाट, शेरपुर अर्की, लूटरु धार होती हुई अर्की में प्रवेश करती है, अर्की के उत्तर में यह पिपलूघाट से बाड़ी धार होती हुई बहादुरगढ़ धार, टेपरा से नम्होल को स्पर्श करती है। बाड़ीधार इसका सर्वोच्च शिखर है जिसकी ऊंचाई लगभग 6800 फुट है। उधर सोलन के पश्चिम में सपरुन से बड़ोग, कुमार हट्टी, धर्मपुर, सनावर होती हुई कसौली में प्रवेश करती है। इसमें बड़ोग धार, डगशाई, कसौली शिखर महत्वपूर्ण स्थल हैं। कसौली का मंकी - पीक सबसे ऊँचा पर्वत - शिखर है। कसौली से स्वारघाट तक पर्वत - श्रृंखला में कसौली धार, हरिपुर धार, रामगढ़ धार, चम्बा आदि स्थित है। इस धार में चम्बाघाट मलौन गढ़, जौहड़ तथा मंकी पीक प्रसिद्ध शिखर हैं। गंभर नदी इसे दो भागों में विभक्त करती है। उत्तर में मलौन, सूरगढ़ शिखर एवं दक्षिणी भाग में चम्बा और रामगढ़ के शिखर हैं। इन शिखरों की ऊँचाई 2000 मीटर से कम है। इन पर्वत श्रेणियों को पंचमुण्डा

हिल्स के नाम से पुकारा जाता है। शिवालिक पर्वत-श्रेणी में बसा सोलन जिला प्राकृतिक दृष्टि से सुन्दर क्षेत्र है। इसकी जलवायु स्वास्थ्यवर्द्धक है।

जलवायु :

सोलन जिला का जलवायु भिन्नता लिए है। यहां के क्षेत्र 500 मीटर से 1500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित हैं। इसमें 3 प्रकार के क्षेत्र हैं।

1) निम्न स्थल-ये क्षेत्र 500 मीटर से लेकर एक हजार मीटर की ऊँचाई लिए क्षेत्र है। यहां गर्मी अधिक होती है तथा तापमान 40° तक पहुँच जाता है। सर्दी में तापमान 7° सैल्सियस तक पहुँच जाता है। इस भाग में बद्दी, नालागढ़, पंजैहरा आदि आते हैं।

2) मध्यम स्थल-यह क्षेत्र 1000 मीटर से 1500 मीटर की ऊँचाई वाला भाग है। यहां की जलवायु स्वास्थ्य वर्द्धक है। ग्रीष्म ऋतु सुहावनी होती है तथा अधिक सर्दी नहीं होती। यहां का तापमान 30° सैल्सियस तक रहता है तथा दिन रात के तापमान में बहुत अंतर नदी होता। सर्दऋतु में ठण्डी हवाएं चलती हैं तथा तापमान 10° सैल्सियस तक पहुंच जाता है। इस स्थल में भराड़ीघाट, दाड़लाघाट, शालाघाट, अर्की, कुनिहार, सपाटू, धर्मपुर, सोलन आदि आते हैं। इनके पर्वतों पर दिसम्बर-जनवरी में बर्फ पड़ती है लेकिन ज्यादा दिन नहीं टिकती।

उच्च स्थल :

इस भाग में 1500 मीटर से ऊपर के स्थान आते हैं। सोलन कसौली, आदि में बर्फ पड़ती है तथा अधिक वर्षा होती है। वर्षा ऋतु में मानसून से पर्याप्त वर्षा होती है। चैल, बड़ोग, डगशाई में बर्फ पड़ती है। तापमान कम होने पर अधिकांश स्थानों पर ओले पड़ते है। यहां ग्रीष्म सुहावनी होती है तथा तापमान 20° सैल्सियस तक रहता है। रात्रि का तापमान 0° तक पहुंच जाता है। यह क्षेत्र फलों के लिए अनुकूल है।

सोलन क्षेत्र की नदियाँ एवं सरिताएँ

समुद्र तल से 500 मीटर से 1500 मीटर तक की ऊँचाई वाले शिवालिक क्षेत्र में छोटी बड़ी बीसियों नदियां एवं लघु-सरिताएं बहती हैं, जो इनके तटवर्ती क्षेत्रों को हरियाली और समृद्धि प्रदान करती है। इसकी प्रमुख नदियां हैं। - गम्भर नदी, अश्विनी नदी, सिरसा नदी। इन सदाबहार नदियों में क्षेत्र की पहाड़ियों से निसृत अनेक नालों और खड्डों-नालें से जल-संग्रहण होता है जो इन्हें सदाबहार रखता हैं। कुछ खड्डों-नालें ग्रीष्म ऋतु में सूख भी जाते है, किन्तु मानसूनी वर्षा के बाद इनमें पानी लबालव भर जाता है।

गंभर नदी :

सोलन क्षेत्र की सबसे विस्तृत तथा लाभकारी नदी है गंभर नदी। गंभर नदी के पाट इतने खुले है कि यह बहती हुई। विशेष कलरव नहीं करती, इसीलिए इसे ''गंभर'' नाम दिया गया लगता है। गंभीर बहने के कारण गंभर। दूर-दूर तक यह तटवर्ती इलाकों को सिंचित करती है। इसके किनारों पर गांव-घराट बसें हैं। इस सरिता का मूल-स्रोत टूटू के क्यार गी गांव का नाला है फिर यह शड़ी गांव से बहती सोलन क्षेत्र में प्रवेश करती है। यह नदी शिमला और सोलन के बीच सीमा बनाती है। सोलन के सपरुन, सुबाठू, कुनिहार, बणीमटेरनी होती हुई बिलासपुर के गोबिन्द सागर झील में प्रवेश करती है।

इस नदी की अनेक सहायक लघु-सरिताएं खड्ड नाले हैं जो इसे विस्तार देते हैं तथा नदी का रुप देते हैं। गंभर नदी में सोलन के वाकनाघाट की ढलान के कटोह नामक स्थान से निकलकर गरु स्थान से गंभर में मिलती है । इसका मूल देऊंघाट सोलन हैं, जहां से यह बजरोल, जाबली, देवरा, आदि से गुजरती हुई पोदणा होती हुई गंभर में मिलती है।

एक अन्य खड्ड हरिपुर से आगे लाम्बू लूडा नामक स्थान से निकलकर नरार, कोटला, कोफरी होती हुई आंजी के नीचे जमरोट नाले के साथ मिलती है। यह खड्ड बोकरा, ध्याच, कोलथी, मोलू आदि गांव में सिंचाई का एक मात्र साधन है। यहां से आगे यह गंभर में मिलती है।

गंभर नदी की सहायक खड्ड सुबाठू के रडियाणा गांव के पास से निकलकर देवठी, जाड़ला, च्चावण गांवों को सिंचित करती गंभर नदी में मिलती है। कुठाड़ खड्ड क्षेत्र की एक विस्तृत खड्ड है जो सोलन-बड़ोग के पास छोबल से निकलती है। यह कानों, घंगूयारी, चपला आदि स्थानों से बहती कठनी पहुंचती है। सनावर वाला नाला भी यहीं इसमें मिलता है। यह खड्ड भूरा, काटल, खरोटा, बनियारा, सरोर आदि गांवों को अपना जल उपलब्ध करवाती है। यह डाबर खड्ड से थोड़ी आगे गंभर नदी में मिलती है।

कुणी खड्ड :

कुणी खड्डी के प्रमुख दो स्रोत हैं। इसमें अर्की से पीछे घणागूघाट के फांजी गांव का प्रमुख स्रोत है। यह पहाड़ियों से गिरती कोलका, कोठी, अर्की, बातल, काटल, छोई गांवों को स्पर्श करती कुणी में मिलती है। इस क्षेत्र की यह एक महत्वपूर्ण नदी है जो समीपवर्ती क्षेत्रों के क्यारों तथा घराटों को पानी उपलब्ध करवाती है। दूसरा स्रोत कण्डाघाट की सतलोड़ पहाड़ी है। सतलोड़ से निकलकर यह काशी पट्टा, दोची आदि से गुजरती खालस पट्टी पहुंचती है, यहां इसमें अर्की खड्ड मिलती है जहां यह 'कुणी' कहलाती हैं। खड्ड का 'कुणी' नाम ऐतिहासिक है। यह सरिता अर्की-कुनिहार रियासतों की सीमा बनाती है तथा कुनिहार के कोने में पड़ती है अतः इसका नाम कुणी खड्ड पड़ गया।

रिवालसर के समीप गंभर नदी में प्रवेश करती हैं। गोयला के समीप छमकड़ी से क्वाज नामक नाला निकलता है यह खड्ड थेवड़ा, मलसी, डोडन, से गुजरती हुई एक दो और नालों क्यार नाला और चकली नाला को साथ मिलाती हुई मटूला मनलोग होती हुई बाड़ नामक स्थान में गंभर में मिलती है।

बरसात में इसमें पानी इतना बहता था कि इसका दरिया का रुप बन जाता था। नदी आर-पार करना मुश्किल था, जबकि कुनिहार, या मैदानों की और जाने का यही एक मात्र रास्ता था। 1955 में जब इस पर पुल पड़ा तो एक लोकगीत प्रचलित हुआ।

''ओ नी मुइये खाड्डे-कुणीये, लोका जो तू देया लंगणे,
जेबे पुल पड़ना किसी पन्नी पूछणी ....

आऊंदे – जांदे छोरुआ तारवे गूठी दशणी ....
तूं लोका जो डराया ना करे ....
ओ नी मुइये रवाड़डे कुणीये .... ''

कूणी खड्ड गंभर नदी की प्रमुख खड्ड है। अर्की खड्ड में बथालंग और गलोग से निकलने वाला नाला भी इसे विस्तार देता है।

गंभरोला खड्ड :

यह बाड़ीधार के दामन में पिपलूघाट के नाले से निकलकर आगे जाकर मिलती है। उधर गोयला के डिम्बर नामक स्थान से निकलकर बढ़लग, घाट, पोगणु, क्यारडू नामक स्थानों से गुजरकर उधर पोबर और सधुरत को दो नाले छोड़ू – होड़ू गांव समलज और जंगल को मिलाकर गंभर नदी में मिल जाते है। जोल खड्ड पिपलू घाट के पास 'कैंथ का पानी' से निकलकर कल्याणपुर होती हुई भूमती के नीचे से गुजरती बड़मल, घनेणी गावों की सींचती यह छोई नामक स्थान में गंभर में मिलती है।

एक अन्य खड्ड बड़नाहल जयनगर के समीप से बलेरा होती हुई भलग के समीप 'नीक्कू – झाल' से निकल कर मटेरनी होती हुई लुहारघाट के नीचे बहती है। मलौण घाट के नाले का पानी इसका जलस्तर बढ़ाता है। फिर यह गमरोला में जाकर सतलुज में प्रवेश करती है।

आली खड्ड :

आली खड्ड का मूल स्रोत बड्डर खड्ड का उद्‌गम स्थल घणागुघाट के पास लादी गांव का कुण्ड नामक स्थान है। यह एक नाले के रुप में बहती शावग, शिवनगर, दाती होती हुई अच्छू की डाबर के पास पहुंचती है। यहां इसे 'दात्ती खड्ड' कहते हैं। बाड़ी धार के पिपलूघाट का नाला भी हनुमान बड़ोग के नीचे अच्छू की डाबर में सरयांज नाले के साथ मिलता है। यहां इसे बड्डर खड्ड कहा जाता है। यहां से यह चमाकड़ी पुल होते हुए नवगाँव के त्रिवेणी में आली खड्ड का रुप ले लेती है।

आली का दूसरा स्रोत – दाड़लाघाट के नाले व ग्याणा खड्ड से है। ग्याणा खड्ड मांगू की धार से निकल कर रठोह के नीचे से पवाबो होते हुए

बुघार के नीचे मलोथी में प्रवेश करती हैं। लगभग 35 कि. मी. सफर करने के बाद यह खड्ड खैरियां, तलवाड़ गांवों से बहती गोविन्द सागर झील में मिल जाती है।

इस खड्ड में सारा वर्ष पानी रहता है। इसके दोनों किनारे पर भरपूर सब्जियां उगाई जाती है। यह सिंचाई का यहां प्रमुख साधन है। यहां अदरक, गोमी बीज, टमाटर, आलू, लहसन, प्याज, मूली-शलगम भरपूर मात्रा में उगाये जाते है जो नम्होल, बिलासपुर, शिमला मण्डियों को पर्याप्त मात्रा में विक्रय किए जाते है। इसी खड्ड पर पर्याप्त संख्या में लोग मछलियां पकड़ते है और अपनी आजीविका कमाते हैं। घाघस बाजार में अली खड्ड की महाशेर, गोदड़ और राहू प्रकाश की मछलियां बेची जाती हैं।

सरसा नदी :

शिवालिक पहाड़ियों के ऊपर कालका से निकलने वाली बल्द नदी आगे जाकर सरसा नदी बन जाती है। इसकी दो शाखाएं अम्बोटा खड्ड और बरागु खड्ड नयानगर में जाकर मिल-जाती है। बल्द नदी में अन्य छोटे नाले पलखा वाला नाला, मलपुर, नाला, लेही नाला आदि इसमें मिलकर इसे बड़ा आकार देते हैं। यह नालागढ़ की सबसे बड़ी नदी है। कसौली पर्वत श्रृंखला से बरोटीवाला तक यह बल्द नदी के नाम से जानी जाती है। इसमें हरिपुर धार का पानी मिलकर बरोटीवाला के दक्षिण में सिरसा का रुप लेता है। यह पंजाब के आवन कोट में सतलुज में प्रवेश करती है। बरसात की बाढों में यह क्षेत्र में बहुत हानि भी पहुंचाती है। इसके तटों पर बजरी, रेत के भंडार हैं। इसकी एक सहायक नदी चिकनी खड्ड है।

चिकनी खड्ड :

यह जगात खाना के समीप सरसा नदी में मिलती है। चिकनी पहाड़ी में तीन खड्डों के मिलने के बाद अस्तित्व में आती है। यह बड्डू, लाधेवाल, महदूद, खलेड़, कोटलाधार, शब्बोवाल, डाडूवाल, सेरडी जमराड़ी, साथी वाल, जगात खाना आदि गांवों को जल उपलब्ध करवाती है।

वरोटी वाली नदी लखनपुर के समीप दो खड्डों के मिलने के बाद अस्तित्व में आती है। यह झीड़ा, घीहड़, मझोली, ढोरा वाला, चन्दपुर आदि

गांवों को जल उपलब्ध करवाती है। पंजाब में जाकर सरसा में मिल जाती है। इसी प्रकार कुण्डलू खड्ड, बैहली खड्ड इस क्षेत्र से बहती पंजाब में प्रवेश कर जाती है।

अश्विनी नदी :

यह मूलतः शिमला की कुफरी पर्वत श्रृंखला से निकलने वाली नदी है। यह साधुपुल से समीप सोलन जिला में प्रवेश करती है। चायल की पश्चिमी ढलानों, शालाघाट, कण्डाघाट, करोल टिब्बा के पूर्वी – दक्षिणी भाग का जल प्रवाह इसमें प्रवेश करता है। इस तरह सोलन के चम्बाघाट, सलोगड़ा, क्षेत्रों जल – स्रोतों को समेटती यह गिरी पुल के पास गिरी नदी में प्रवेश करती है। अश्विनी नदी का पानी शिमला और सोलन नगरों में पेयजल की आपूर्ति करता है।

गिरी गंगा :

यह सोलन के गौड़ा के समीप सोलन और सिरमौर की सीमा बनाती है। यह गिरीपुल में प्रवेश करती है। यह शिमला के कूपड़ शिखर से कोटखाई छैला, सैंज, पुल बाहल होती हुई गौड़ा के यशवन्त नगर में सिरमौर जिला में बहती है। कुण्डलू खड्ड चम्बा पर्वत श्रेणी से पंजैहरा के पूर्व में बहती हुई दमोटा के पास पंजाब में प्रवेश करती है।

सतलुज :

सोलन की उत्तरी सीमा मांगल से स्पर्श करती सतलुज नदी अर्की – बिलासपुर, मण्डी की सीमा बनाती है। इस नदी का विशेष लाभ सोलन क्षेत्र नहीं उठा पाता। इस नदी पर कोलडैम का निर्माण हो रहा है जिससे देश – प्रदेश को बड़ी मात्रा में बिजली – आपूर्ति हो सकेगी।

इसी प्रकार ओखरु खड्ड दानोघाट के नीचे बहने वाली अर्की और धामी की सीमा बनाती है। यह सैंज खड्ड बन जाती है। यह घनेसर से बहती हुई मक्यार, ओखरु, पंच्याण, केहरु, नेरटी और बखेल की सिंचाई करती है। यह रामपुर से आगे नालागढ़ – बिलासपुर की सीमा बनाती है। आज प्रायः सभी खड्ड – नालों का पानी पेयजल – आपूर्ति के लिए प्रयोग हो रहा है। उठाऊ – प्रेय जल योजनाओं से अधिकांश पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा रहा है।

हिमाचल (भौगोलिक मानचित्र)



जिला सोलन (मानचित्र)



पर्वत – शिखर

शिवालिक – श्रृंखला के इस भाग में कई रमणीय पर्वत – शिखर हैं जो सांस्कृतिक एवं धार्मिक पहचान बनाते हुए जन साधारण की आस्था के केन्द्र भी है –

करोल टिब्बा :

सोलन के चम्बाघाट से टेढ़ी – मेढ़ी चढ़ाई के रास्ते लगभग 7000 फुट ऊँचाई पर स्थित आदि गुफा करोल पहुंचा जा सकता है। प्राकृतिक – वनस्पति एवं जलवायु की दृष्टि से सैलानियों के लिए यह स्वर्ग के समान है। पर्यटन की दृष्टि से भी यह स्थल महत्व पूर्ण है। शीत – ऋतु में यहां बर्फ पड़ती है। करोल शब्द 'क्रोड़' शब्द का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है 'गुफा' या 'गोद'। पाण्डव – गुफा के कारण ही इस पर्वत की नाम स्थानीय लोगों ने करोल रखा होगा। वैसे भी हिमाचल के अनेक स्थानों पर गुफाओं वाले क्षेत्र को 'करोड़' 'क्रोड़' 'क्रोड़ा' आदि कहने का चलन है।

इस पर्वत – श्रृंखला में बान, चीड़, देवधार का जंगल है तथा अनेक प्रकार की जड़ी – बूटियां इसकी उपत्यकाओं में पाई जाती हैं। इसके जंगलों में बाघ, भालू, घोरल, खरगोश, साही, हिरण, अनेक प्रकार के जानवर पाये जाते हैं।

करोल गुफा :

इस शिखर पर आकर्षण हैं इसकी प्राकृतिक – गुफा। इस गुफा के विषय में मान्यता है कि इसकी लम्बाई पिंजौर के महलों (खण्डहरों) तक है। कहते हैं लगभग 20 कि. मी. तक फैली इस गुफा से बान – देवधार के पत्ते सुरंग के रास्ते पिंजौर निकल जाते हैं। गुफा के अन्दर पानी बहता है जो इन्हें बहा ले जाता हैं। जबकि टिब्बे पर पानी का स्रोत नहीं हैं।

गुफा का सम्बन्ध महाभारत से जोड़ा जाता है। लोक मान्यता है कि पाण्डव बनवास में यहां रहे थे। जब लाक्षागृह (पांचाल देश-पिंजौर में) दुर्योधन पाण्डवों को लाक्षागृह में जीवित जलाने का षड्यन्त्र कर रहे थे तो भीष्म पितामह ने इस गुफा से पाण्डवों को सुरक्षित भागने का संकेत दिया था। इसी गुफा मार्ग से पाण्डव करोल शिखर पर पहुंचे थे। पाण्डवों की स्मृति में यहां कृष्ण का मन्दिर निर्मित हुआ जिसे ठाकुर द्वारा कहा जाता है।

इस लम्बी गुफा में अदृश्य शक्तियों का वास है। कहते है 1976 ई. में दो तान्त्रिक इस गुफा में तीन कि. मी. अन्दर चले गये लेकिन उनका शरीर नीला पड़ गया तथा बाद में एक की मृत्यु हो गई। 1983 में एक साहसिक दल जब इस गुफा में कुछ आगे गया तो उनकी टार्च बुझ गई। किसी तरह से वे बाहर निकले। कहते हैं यदि गुफा के अन्दर कोई गंदगी डाले या कुत्सित विचार लाये तो उसका अनिष्ठ हो जाता है।

लोक-मान्यताओं से इस पर्वत शिखर की ऐतिहासिकता का पता चलता है। मध्यकाल में सहारनपुर (पिंजौर क्षेत्र) के राजपूत शासक इस क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व रखते थे अत: हिन्दू मान्यताओं के लोग-विश्वास एवं देवस्थल इन पर्वत-श्रृंखलाओं से सम्बद्ध मिलते हैं।

कसौली शिखर :

1800 मीटर की ऊँचाई पर स्थित कसौली सोलन का महत्वपूर्ण नगर तथा पर्यटन-स्थल है। राजा बघाट 1842 ई. ने इसे अंग्रेजी सरकार को 5000 रू. में बेच दिया था। अंग्रजों ने यहां सैनिक छावनी बनाई, यहीं से अंग्रेजों ने हिमाचल की ठकुराइयों पर हुकूमत के लिए अभियान प्रारम्भ किये थे। कसौली पर्वत श्रृंखला के आंचल में कालका पिंजौर, पंचकुला नगर बसे हैं। इसी की जलधाराओं से इन क्षेत्रों में जल की आपूर्ति होती है।

कसौली अंग्रेजों और पटियाला राज्य की ग्रीष्मकालीन राजधानी भी रही, यहां 1847 ई. में हेनरी लारेंस ने सनावर-स्कूल की स्थापना की थी जो प्रारंभ में अंग्रेज अधिकारियों के बच्चों के लिए बनाया गया था।

कसौली सुन्दर पेड़-पौधों के बीच स्थित हैं। यहां के सर्वोच्च शिखर को ''मंकी पीक'' कहा जाता है।

कठपोल टिब्बा :

अर्की की उत्तरी सीमा पर ऐतिहासिक मांगल रियासत की सीमा पर लगभग 6900 फुट की ऊँचाई पर कठपोल की पर्वत श्रृंखला क्षेत्र के 12 वर्गमील क्षेत्र में फैली है। इसके आंचल-अधित्यकाओं में बागा (अब जे. पी. सीमेंट कारखाना) अलग, कन्धर, मलोखर आदि गांव बसे हैं। इस शिखर की चारों दिशाओं से पानी के स्रोत बहते हैं जो इस की तलहटी के क्षेत्र को सींचित करते है। यह क्षेत्र दुर्गम है तथा सपाट पहाड़ियों की कृषि-योग्य भूमि पर लोग बसे हैं। इस रियासत का प्रथम शासक श्री मंगल था जो बटबाड़ा (सुकेत) का ठाकुर था। इस रियासत पर सदा कहलूर का प्रभुत्व रहा।

कठपोल शिखर पर बाबा बालक नाथ का सिद्ध-मन्दिर है जहां 26 जून को मेला आयोजित होता है। सर्द-ऋतु में इस पर बर्फ पड़ती है। जनश्रुति है कि यहां बाड़ीधार (धुन्दन से) हरिश्चन्द्र नामक राजा के घोड़े आते थे। वास्तव में यहां के ठाकुर का सम्बन्ध कहलूर और बाघल के राजाओं से आदान-प्रदान के रुप में रहा होगा कठपोल की धारों पर सीमेंट, चूना, पत्थर, जिप्सम आदि खनिज बहुतायत में हैं। इसकी तलहटी में एक बहुत बड़े औद्योगिक समूह जयप्रकाश सीमेंट लिमिटेड ने बागा गांव में बड़ा सीमेन्ट का कारखाना स्थापित किया है।

कठपोल की धार पर ट्रेकिंग के लिए एक घण्टे में दो तीन स्थानों भलग-मलोखर-सहनाली से धार पर चढ़ा जा सकता है। आश्चर्य की बात है कि ऊपर शिखर के साथ एक चरागाह में पानी का तालाब है तथा कुछ समतल खेत हैं जिससे लगता हे यहां कोई शासक रहा होगा। अनेक प्रकार की जड़ी बूटियां तथा जंगली-जानवर अन्य वनों की तरह इसके समस्त क्षेत्र में पाये जाते हैं। इनमें भालू, बाघ, घोरड़ तर्ख, आदि प्रमुख रुप से पाये जाते हैं।

बाड़ीधार :

अर्की की उत्तरी सीमा पर बिलासपुर क्षेत्र को स्पर्श करती लगभग 7000 फुट की उँचाई लिए बाड़ीधार मीलों तक फैली है जिसकी धारों और तलहटियों में अनेक गांव बसे हैं। यह पर्वत श्रृंखला प्राकृतिक दृष्टि से जितनी महत्वपूर्ण है उतनी ही ऐतिहासिक दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। इसकी चोटी पर बहादुरगढ़ का किला था जो गोरखायण (1805 - 15) के समय गोरखों ने बनाया था। आज यहां खण्डहरों के अवशेष ही है। यह 17 वीं शती के अन्त में किसी राजा ने राजा बिलासपुर को राजकुमारी के दहेज में दे दिया गया था। कहा जाता है कि राजकुमारी की इच्छा थी कि वह बाड़ीधार आकर बाघल क्षेत्र को देख सके इसलिए उसे यह भूखण्ड राजा अर्की द्वारा दिया गया था। कहते हैं अंग्रेज पहले यहां राजधानी बनाना चाहते थे, किन्तु पानी की कमी के कारण ऐसा न हां सका। बाड़ीधार के जंगलों में चीड़, बान, कैल, देवदार आदि के वृक्ष हैं तथा यहां शीत ऋतु में बर्फ पड़ती है।

बाड़ीधार 'देव बाड़ादेव' की आवास स्थली होने के कारण सुप्रसिद्ध है। धार पर बाड़ादेव (हिडिम्बा पौत्र बर्बरीक) से मिलन के लिए आषाड़ - संक्रान्ति को पांच पाण्डवों की पालकियां विभिन्न गांवो से आती हैं तथा एक विराट मेले का आयोजन होता है। यहां बूढ़ा देई (हिडिम्बा) का ऐतिहासिक लघुमन्दिर है तथा बाड़ा देव का प्राचीन चौक व मन्दिर स्थापित है। देवता की पूजा - अर्चना आसुरी - कर्मकाण्ड के तरीके से की जाती थी जिसमें प्राचीन काल में नर बलि तथा भैंसे की बली बाड़ादेव को दी जाती थी आज भी बाड़ी मेला हिमाचल प्रदेश के प्रसिद्ध मेलों में से एक हैं। बाड़ीधार में पर्यटन की दृष्टि से विकास की संभावनाएं है।

हरसंग धार :

कराड़ाघाट - चणौग मुख्य सड़क पर बांजण गांव की 6500 फुट की ऊँची पहाड़ी पर स्थित हरसंग देवता के नाम पर हरसंग धार अपना

सांस्कृतिक महत्व रखती है। इसकी धारों पर सर्दी में बर्फ पड़ती है, किन्तु एक-दो दिन में पिघल जाती है। घने जंगल न होने के कारण जंगली जीवजन्तु कम है तथा छोटी-मोटी झाड़ियां ही इसके शिखरों पर दृष्टि गोचर होती हैं।

दामोदर ऋषि की तपस्थली हरसंगधार इस देवता के कारण लोगों की आस्था का केन्द्र बनी है। इस देवता के मेले देवता के रथ-पालकी के साथ गांव-गांव आयोजित होते हैं। यह धार अर्की और भज्जी की सीमा बनाती है।

चैल धार :

प्राकृतिक दृष्टि से चैल या चायल धार का अपना महत्व है 2150 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह आधुनिक नगर है। पहले यह शिमला (क्योंथल) का भाग था। गोरखा आक्रमण के पश्चात इसे अंग्रेजों ने जीतकर पटियाला के महाराजा भूपेन्द्र सिंह को सहायता के बदले भेंट किया था। यह महाराजा पटियाला की ग्रीष्म कालीन राजधानी भी था। इस राजा ने यहां महल बनवाया था आज यह होटल चायल पैलेस के नाम से प्रसिद्ध है। चायल में 3 पर्वत शिखर हैं प्रथम को राजगढ़ हिल कहते हैं। इस पर महल बना है। एक पाण्डव हिल तथा एक साधु टिब्बा कहलाता है। चायल में विश्व का सबसे ऊंचा क्रिकेट का मैदान है।

अर्की की आदि गुफाएँ :

शिव जी के रुद्र के नाम से विख्यात है अर्की की 'लूटरु महादेव गुफा'। शिव का आदि नाम 'रुद्र' है, अतः जनसाधारण में रुद्र, रुदर, लुदर, लुदरु, 'लूटरु' नाम स्वाभाविक रुप से बदल गया है। आदिकाल से स्वनिर्मित शिवलिंगों से शोभित लूटरु गुफा अद्‌भुत प्राकृतिक दृष्य उपस्थित करती है। आग्नेय चट्टानों से निर्मित इस गुफा की लम्बाई पूर्व से पश्चिम की ओर लगभग 20 फुट तथा उत्तर से दक्षिण की ओर 42 फुट है। गुफा की ऊँचाई तल से 3 फुट से 100 फुट तक है। ऊपर से

तिरछे रुप से खुली होने पर इसमें वर्षा का प्रवेश नहीं होता तथा सूर्य का प्रकाश पर्याप्त रुप से होता है। गुफा की ऊँचाई समुद्र तल से 5500 फुट है किन्तु इसकी ऊपरी चोटी की ऊँचाई 6000 फुट के लगभग है जिस पर यदा-कदा बर्फ पड़ती है। गुफा में सैकड़ों व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था हो सकती है।

अर्की बस-स्टैण्ड से लगभग एक किलोमीटर से भी कम दूरी पर स्थित गुफा तक पहुंचने के लिए 100 पौड़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है। आज यहाँ विशाल भवनों का निर्माण किया गया है। शिव गुफा नाथ संप्रदाय की पवित्र स्थलियों में से एक है। 'लूटरु गुफा' को ''परशुराम की पौल'' 'परशुराम के ठहरने का पवित्र स्थान' कहा जाता है। सहस्रबाहु को मारने के पश्चात परशुराम हिमालय के विभिन्न स्थानों पर विचरण करते रहे थे। बाघल के राजाओं (1365) ने शिवरात्रि के अवसर पर यहाँ विशाल धार्मिक उत्सव की परम्परा प्रारम्भ की थी । वे भगवान परशुराम के नाम से सरकारी निर्णयों में परशुराम की दीब 'जलती हुई लोहे की डली' उठाकर 'कसम' दिलवाते थे। गुफा का सम्बन्ध बाबा बालक नाथ से भी जोड़ते हैं।

1805-1815 में आक्रमणकारी गोरखों ने भी यहाँ आवास बनाया था। वे लूटरु धार, सुखण, ताल, बल़, घोघर की धारों पर दुर्ग बनाकर रहते थे। आज लूटरु महादेव गुफा अर्की ही नहीं पूरे जिले में सैलानियों एवं श्रद्धालुओं के पर्यटन का पवित्र स्थल बन गई है। यहाँ स्थाई रुप से नाथ संप्रदाय के साधु निवास करते हैं।

आदि गुफा – मुटरु महादेव अर्की :

लूटरु महादेव गुफा की तरह अर्की नगर के चरणों मे एक सदाबहार नाले के किनारे 'मूटरु' 'मूटलू' महादेव गुफा स्थित है। यहाँ पहाड़ी से सटी लम्बी गुफा में संगमरमर की तरह चूने के कठोर पत्थरों से निर्मित दर्जनों शिवलिंग लटके हुए हैं। जिन पर पानी की अजस्र धाराएँ बह रही हैं।

'मूटलू' शब्द स्थानीय बोली में 'मीटणु पाणी' से बना लगता है। मीटणु, मूटणु, मीटलू और मुटलू। मुटलू से 'मुटरु'। अर्की गौशाला 'प्राचीन राज निवास' परिसर से सौ पौड़ियाँ उतरकर यहाँ आसानी से पहुँचा जा सकता है। यह शिवगुफा 10X10 फुट के तीन बराबर कक्षों में विभाजित है।

यहाँ वर्तमान समय में गंगागिर साधुओं की परम्परा में साधु निवास करते हैं। शिवरात्रि में लुटरु महादेव दर्शन के पश्चात श्रद्धालु यहाँ भी शिवदर्शन के लिए आते हैं।

शिव ताण्डव गुफा – कुनिहार नगर के पास ही सड़क के साथ यह प्राचीन गुफा स्थित है। लगभग 50 फुट लम्बी और 20 फुट चौड़ी इस गुफा में दीवारों एवं छत पर शिव लिंग लटके हुए हैं। किसी साधु ने इसे ताण्डव गुफा का नाम दिया है। आश्चर्य यह है कि स्वयं निर्मित शिवलिंग छोटे चबूतरे पर विराजमान हैं। कुनिहार के धार्मिक अनुष्ठान यहाँ होते रहते हैं। यहाँ सैकड़ों लोगों के ठहरने की व्यवस्था भी है।

कुहनी खड्ड के ऊपरी शिखर पर 'डवारश' नामक गुफा है। यह भी धार्मिक यात्रा एवं साधुओं के आवास के लिए प्रसिद्ध है। बातल गाँव के श्रवण जंगल में 'डूग्गा-डोरा' नामक विस्तृत गुफा है जो एक व्यक्ति के अंदर मर जाने से आज बन्द है। आसलू गाँव में गंगागिर साधुओं की एक विशाल गुफा है जो धार्मिक कृत्यों के लिए आज सार्वजनिक स्थान बन गई है। दाड़ला घाट, काकड़ा गाँव तथा कठपोल के वन क्षेत्रों में भी शिव गुफाएँ हैं जिनमें शिवरात्रि को लोग दर्शन एवं पूजा अर्चना करने जाते हैं।

औद्योगिक केन्द्र :

सोलन जिला औद्योगिक-विकास एवं लघु-उद्योगों के कारण हिमाचल प्रदेश में अग्रणी जिला है। इसके परवाणु, बद्दी, बरोटीवाला, सोलन, नालागढ़, दाड़लाघाट, मांगल आदि क्षेत्रों में छोटे-बडे कारखाने स्थापित किये गये हैं जहां लाखों युवाओं को रोजगार सुलभ हुआ है।

परवाणु :

यह मैदानी क्षेत्रों के लिए हिमाचल का प्रवेश द्वार है। यहां विभिन्न प्रकार की मशीनों के कल-पूर्जे, मशीनें, घड़ियां, कम्प्यूटर आदि अनेक प्रकार का औद्योगिक उत्पादन होता है। सैंकड़ो प्रकार की औद्योगिक- इकाइयां यहां स्थापित हैं। परवाणु एक स्वास्थ्य वर्द्धक स्थान है जो कालका से 2-3 किलोमीटर की दूरी पर है अत: यहां पंजाब-हरियाणा, उत्तर प्रदेश से लोग आकर बस गये हैं। आज भी-यह नगर औद्योगिक-राह पर अग्रसर है।

परवाणु पर्यटन के लिए भी आकर्षक का केन्द्र है। यहां से 5 कि. मी. दूर कौशल्या नदी पर टिम्बर-ट्रेन का झूला लगाया गया है। इसकी लम्बाई लगभग 1.8 कि. मी. है। यहां सैलानियों की भीड़ लगी रहती है। यहां गाड़ियों के तथा मशीनों के स्पेयर पार्टस, पैकेज, मेटिरियल, फार्मो कम्पनियां, घडियां आदि का निर्माण तथा विक्रय होता है।

सोलन :

मुख्यालय सोलन नगर में टैलीविजन, थर्मामीटर, घडियां, गाड़ियों के पार्टस, आदि निर्मित किये जाते है। चम्बाघाट में विश्वप्रसिद्ध शराब की फैक्टरी मोहन-मीकिन ब्रूरी स्थापित है जो गत 150 वर्षों से विश्व में अपना व्यापार फैला चुकी है

इस नगर में सभी उच्च स्तर के कालेज विश्वविद्यालय स्थापित हैं। डॉ. यशवन्त सिंह वन्य एवं बागवानी विश्वविद्यालय नौणी विश्वविख्यात है। यहां अंग्रेजों के समय स्थापित छावनी आज भी देश की प्रसिद्ध छावनियों में से एक हैं।

बद्दी :

औद्योगिक दृष्टि से बद्दी नये नगर के रुप में उभर रहा है। बद्दी से बरोटीवाला क्षेत्र तक सैंकड़ो औद्योगिक इकाईयां लोगों को रोजगार

उपलब्ध करवा रही है। बरोटीवाला में 56 इकाइयों की स्थापना 1982 में हो गई थी? आज यहां लगभग 500 इकाइयां कार्य कर रही हैं। बड़ी इकाइयों में डाबर, वर्द्धमान, गोदरेज, बिडला टैक्सटाईल, दीपक स्पीनर्स, वैद्यनाथ, जैको इण्डिया, हिन्दोस्तानलीवर, राहुल इण्डस्ट्रील आदि का उत्पादन देश- विदेश में प्रसिद्ध है, इसके अतिरिक्त नालागढ़ क्षेत्र में अनेक औद्योगिक इकाइयां स्थापित की गई हैं। इन क्षेत्रों में औद्योगिक जलवायु एवं वातावरण अनुकूल होने के कारण देश-विदेश के औद्योगिक घराने इकाइयां स्थापित करने को लालाथित रहते हैं। नालागढ़ में अम्बुजा सीमेंट तथा जे. पी. सीमेण्ट कम्पनियों की शारवाएं भी हैं। फार्मा कम्पनियां इस क्षेत्र में बहुतापत से स्थापित है।

दाड़लाघाट :

दाड़लाघाट में गुजरात की विश्वविरव्यात सीमेंट कम्पनी अम्बुजा-सीमेन्ट लिमिटेड ने ऐेक बड़ा सीमेंट कारखाना स्थापित किया है जिससे अर्की ही नहीं प्रदेश की आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा मिला है। कारखाने से हजारों लोगों को प्रत्यक्ष- अप्रत्यक्ष रुप से रोजगार मिला है। सीमेंट ढुलाई के लगभग 8000 ट्रक विभिन्न सोसाइटियों के माध्यम से कार्य कर रहे हैं।

बागा – मांगल :

इसी प्रकार जय प्रकाश एसोसिएट सीमेन्ट कम्पनी बागा (अर्की) की सीमेन्ट कम्पनी ने अर्की एवं बिलासपुर क्षेत्र के नवयुवाओं को रोजगार उपलब्ध करवाया है। अर्की की धार लूटरू महादेव में भी सरकारी एवं गैर-सरकारी कम्पनियों के सर्वेक्षण चल रहे हैं। इन धारों पर सीमेन्ट के पत्थर के अतिरिक्त अन्य बहुमूल्य धातुओं के मिलने की संभावनाएं है।

सोलन की ऐतिहासिक रियासतें

बघाट – रियासत

स्वरुप :

सोलन का प्राचीन नाम बघाट था। यह रियासत पूर्व में क्योंथल पश्चिम में ब्रिटिश राज्य, उत्तर में पटियाला तथा दक्षिण में कुठाड़–महलोग के मध्य स्थित थी। 'बघाट' के नाम करण के पीछे इसके 12 घाट बताये जाते हैं– जिनके नाम हैं– घई घाट, देंऊ घाट, लावीघाट, ओच्छ घाट, काला घाट, चम्बाघाट, कण्डाघाट, क्यारी घाट, बाकनाघाट, कैथली घाट, शालाघाट और गुग्गा घाट। 'बघाट' 'बहुघाट' का अपभ्रंश लगता है–यह अधिक तर्क संगत है। संभवतः कुछ घाटों के नाम बाद में पड़े थे। लगता है प्रारम्भिक काल में यह क्षेत्र कहीं दूर की राजधानी से शासित होता रहा होगा अतः इसके घाटों के नाम से पुकारा गया होगा। वैसे भी सोलन नाम 'शूलिनी' देवी के नाम पर पड़ा है जो राजवंश की कुलजा थी। 'शूलिनी' का अपभ्रंश 'सोलणी' पड़ना स्वाभाविक भी है। सौ वर्ष पूर्व के लोकगीतों में सोलन का 'सोलणी' नाम मिलता है –

'सोलणी रे बजारो दे बे पाया पापणियों डेरा बे ... ओ मेरी नीमूये..।' सोलन नाम अंग्रेजों के समय पड़ा है।

बघाट का क्षेत्रफल प्रारंम्भ में 36 वर्गमील था। सोलन के शिखर करोल टिब्बा की ऊँचाई समुद्र तल से 7893 फुट हैं। 'मंकी पीक' सबसे ऊँची है। इसकी उत्तरी सीमा पर अश्वनी खड्ड सिरमौर में प्रवेश करती है। गंभर सरिता इसे दो भागों में विभक्त करती है। सोलन राजवंश के अनुसार आजादी के समय रियासत का क्षेत्रफल 85 कि. मी. था। 1901 की जनगणना के अनुसार आबादी 9490 तथा राजस्व प्राप्ति रु. 30000 थी। 1941 में आबादी 11022 तथा क्षेत्रफल 33 वर्गमील था। कुल गांव 133 थे सरकार प्रिवीपर्स के रुप में रु. 80,000 प्रदान करती थी।

सोलन क्षेत्र के विभिन्न भाग समय-समय पर समीपवर्ती रियासतों में आते-जाते रहे हैं, इसका कारण सिरमौर पिंजौर पटियाला आदि क्षेत्रों के शासकों का इस ओर की रियासतों से सम्पर्क तथा अधिकार के लिए अधिक आवागमन का कारण रहा। सोलन इन रियासतों के लिए एक 'पड़ाव' रहा है।

प्रारम्भिक इतिहास :

बघाट रियासत की नींव बसन्त पाल नाम के पंवार राजपूत ने की थी। इसका नाम हरिचन्द पाल भी मिलता है। समीपवर्ती रियासत बाघल की राजवंशावली एवं मान्यताओं के आधार पर माना जाता है कि 13 वीं 14 वीं शती में मुगलों के आक्रमणों से प्रभावित धारा नगरी (उज्जैन-मालवा) मध्यभारत से अजय देव नाम का पंवार राजपूत तीर्थ यात्रा के बहाने यहां आया था और उसने मावियों को इलाके से भगाकर बिना लड़ाई के 'बाघल' रियासत की नींव डाली। इसके दूसरे भाई मदन देव विजय देव ने बघाट क्षेत्र को हथियालिया तीसरा भाई मदन देव सिरमौर सिरमौर में कहीं जिमीदारों में बस गया। चौथा भाई साधु बन गया जो संम्भवतः सेरीघाट के पास बसा। मृत्यु के बाद वहां उनके पूर्वज जगदेव परमार (धारा वाला देव) के मन्दिर की स्थापना हुई

बघाट के ऐतिहासिक दस्तावेजों में इस प्रकार के प्रमाण नहीं मिलते। सम्भवतः बघाट के प्रारंभिक शासकों ने 'देव' उपनाम के स्थान पर पाल जोड़ दिया हो। वैसे बंगाल के पाल वंश का इनसे कहीं कोई सम्बन्ध का प्रमाण नहीं मिलता और दक्षिण-भारत से इनका यहां आना तर्क संगत नहीं है। ये शासक अपने को प्रारम्भ में 'पंवार' वंश का वंशज ही मानते रहे है तथा भोज को अपना पूर्वज मानते रहे हैं। गढ़वाल रियासत के शासक भी अपने को धारा नगरी से आया हुआ ही मानते हैं।

वक्ष पाल :

बसन्त पाल ने बसन्तपुर मे अपनी राजधानी बनाई इसे आज बस्सी कहा जाता है। यह स्थान सोलन से 10 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

बसन्त पाल का पुत्र वक्षपाल योग्य शासक था । उसने भोचली और भरोली परगनों को जीत कर अपने राज्य में मिलाया ।

राणा भवानी पाल :

5 वीं पीढ़ी में भवानीपाल ने बछरंग परगना और कसौली के क्षेत्र को वहां के शासक से छीनकर अपने क्षेत्र में मिलाया । भवानी पाल के बाद 16 वीं पीढ़ी में इन्द्रपाल ने बसाल, घर टकसाल, के परगनों को जीत कर बघाट में मिलाया। इस राणा ने अपने क्षेत्र का नाम 'बघाट' रखा इसके पूर्व यहां का नाम बसन्तपुर था।

11वीं शती से 15वीं शती तक बघाट के शासक समीपवर्ती रियासतों अथवा मुगल शासकों को कर देते रहे। अन्य रियासतों की तरह 12वीं शती के पश्चात 15वीं शती ई. तक का ऐतिहासिक काल अन्धकारपूर्ण है। रियासतों के उत्थान-पतन, राजनैतिक हलचलों से शून्य यह भाग शान्त, निष्क्रिय सा लगता है। लगता है मुगलों की ताकत और साम्राज्यवादी आक्रमणों से त्रस्त यहां के रजवाड़े शान्तिपूर्ण और संतोष का जीवन व्यतीत कर रहे थे। इस समय के लोकगीतों एवं धार्मिक अनुष्ठानों में ये तथ्य ढूंढे जा सकते हैं। समस्त प्रदेश में ये रजवाड़े दक्षिण अथवा मध्य भारत से पलायन कर इन शान्त पहाड़ी क्षेत्रों में शान्त जीवन की कामना तो कर ही सकते थे।

नारायण पाल :

यह राणा 1586 ई. में गद्दी पर बैठा इस समय आगरा में अकबर राज करता था। वह राणा बसन्त पाल की 61 वी पीढ़ी का लिखा मिलता है। उसके समय रियासत खुशहाल थी। 68वीं पीढ़ी मे जन्मी पाल योग्य प्रशासक था। उसके मुगलों से अच्छे सम्बन्ध थे। मुगल बादशाह ने प्रसन्न होकर उसे दिल्ली बुलाया और खिल्लत देकर सम्मानित किया। जब वह दिल्ली से वापस आ रहा तो भवाना (महलोग की प्रथम राजधानी) कालका के निकट राय ने पुरानी शत्रुता का बदला लेने के लिए उस पर आक्रमण कर दिया। इस लड़ाई में राय मारा गया और उसकी सेना भाग

गई। इस तरह भवाना क्षेत्र पर बघाट राणा जन्मीपाल का अधिकार हो गया। कुछ समय पश्चात यह क्षेत्र बघाट के हाथ से छूट गया था। नारायण पाल के पश्चात उसका बेटा कर्मपाल गद्दी पर बैठा।

सारंग पाल :

पंजाब गजेटियर के अनुसार यह 70वां शासक था। जनश्रुति है कि मुगल जहांगीर परिवार ग्रीष्म ऋतु में पिंजौर (भवाना) आते थे। यहां के शासक को एक बार शंका हुई कि वह राज्य न हड़प ले। उसने बुद्धि से काम लेकर उसे खिराज और उपहार ऐसे लोगों के पास भेजा जिन्हें 'गील्लड़' गले का रोग था। उन्होने यह अफवाह फैलाई कि यहां का पानी पीने से गील्लड़ रोग हो जाता है। इस रोग के भय से उन लोगों ने यहां आना छोड़ दिया।

जब मुगलों का पतन हुआ तो पंजाब में विभिन्न रियासतों में महत्वाकांक्षा की होड़ पैदा हुई। यह काल लगभग औरंगजेब (1658 - 1707) के मध्य का था। ये बारह सिक्ख मिसलें अपनी सत्ता बढाने लगीं। एक सिक्ख सरदार सिंधपुरीया ने बघाट के दो परगने घर और टकसाल हथिया लिये। राणा सारंग ने मुकाबला किया लेकिन हटना पड़ा। किन्तु कुछ समय पश्चात सिंधपुरिया के कमजोर पड़ने पर उसने पुनः इन पर कब्जा कर लिया। इसके बाद राणा फतेहपाल 1777 - 1787 ने बघाट मे सफल राज किया।

राणा रघुनाथ पाल :

(1787 - 1810) रघुनाथपाल राजवंश की 72वीं पीढ़ी में बघाट में राज करते थे। उनके समय में हिण्डूर राजपरिवार में सत्ता के लिए कलह मच गई। उस समय हिण्डूर (नालागढ़) में राजा मान चन्द (1756 - 1761) का राज था। मान चन्द को उसके चाचा पद्म चन्द ने धोखे से मार दिया। पद्म चन्द को दण्ड देने के लिए कहलूर के राजा देवीचन्द (1741 - 78) ने बघाट के राणा रधुनाथ पाल से सहायता मांगी। इसके कारण पद्म चन्द जरजोहरू नामक स्थान पर लड़ाई में मारा गया।

तब कहलूर के राजा ने विजय सिंह को हिण्डूर की गद्दी पर बिठाया। शिमला हिल-स्टेट-गजेटियर में इसका अलग वर्णन मिलता है। महलोग रियासत के हरिपुर गुरुद्वारा के खड़क सिंह ने राजा विजय सिंह को नालागढ़ की गद्दी पर बिठाया। खड़क सिंह की समाधि हरिपुर में वर्तमान है। लोग श्रद्धा से इन्हें 'गुरु' मानते हैं।

हिण्डूर में लाला बालक राम शाद के अनुसार राजा मान चन्द संस्कृत का विद्वान था। वह कर्मकाण्ड में अधिक विश्वास करता था। इसका लाभ उठाते हुए राज्य के कनैतों और ब्राह्मणों ने मान चन्द को हटाकर उसके चाचा मियां पद्म चन्द को राजा बनाने का निश्चय किया। एक दिन जब राजा पूजा पाठ में लीन था तभी उसकी हत्या कर दी गई। षड़यन्त्रकारियों ने राजा के साथ टीका अभी राय चन्द तथा गर्भवती रानी की भी हत्या कर दी।

दलील सिंह :

रघुनाथपाल के पश्चात उसका पुत्र दलील सिंह गद्दी पर बैठा उसने अपने नाम के साथ पाल के स्थान पर सिंह लगाना शुरू किया उस समय धर्मपुर और टकसाल परगने फसल-उत्पादन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन गये थे। यहां से अदरक, हल्दी, अनारदाना आदि का व्यापार दूसरी रियासतों को होता था। यहां उस समय अनाज मण्डियां बन गई थी।

इसके समय हिण्डूर ने बघाट पर आक्रमण किया था। जिसमें दलील सिंह मारा गया था लेकिन हिण्डूर के इतिहास में इस प्रकार का विवरण नहीं मिलता।

राणा महेन्द्र सिंह :

रियासत पर कहलूर का आधिपत्य रहता था, कहलूर में अराजकता फैलने पर महेन्द्र सिंह ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। महेन्द्र सिंह के समय हिण्डर में रामसरन सिंह (1788-1848)

राज करता था। कहलूर में 1778 ई. में महान चंद गद्दी पर बैठा जो अभी 6 वर्ष का था। राम सरन सिंह ने 1790 ई. में कहलूर के साथ लड़ाई शुरू की तथा बिलासपुर नगर को जला दिया। इस प्रकार उसने कहलूर के परगना फतेहपुर, रत्नपुर और बहादुरपुर पर अधिकार कर लिया। उस समय बघाट कहलूर के अधीन थी, इस स्थिति का लाभ बघाट में महेन्द्र सिंह ने उठाया।

गोरखा आक्रमण और बघाट :

1803 ई. में अमर सिंह थापा ने नेपाल से निकल 18 ठकुराइयों को रौंदते हुए कांगड़ा को जीतने का प्रयास किया। तत्कालीन कारण यह थी कि कहलूर पर हिण्डूर और कांगड़ा की सदा बुरी नज़र रहती थी। कहलूर प्राय: इनकी अधीनता में रहता था। इसलिए कहलूर के राजा महानचन्द ने इनसे छुटकारा पाने कि लिए गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा से सैनिक सहायता मांगी उसने 1805 ई. में कांगड़ा पर आक्रमण किया। कांगड़ा के राजा संसार चन्द ने कांगड़ा किला में शरण ली। 1809 में उसने पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की सहायता से गोरखों को सतलुज से पीछे धकेल दिया। बिलासपुर 12 ठकुराइयों पर अपना प्रभुत्व जमाता था और बघाट की ठकुराई भी उसकी इसमें सहयोगी थी। अब ये सब ठकुराइयां गोरखों के अधिपत्य में आ गई। बघाट को उन्होने अपना करद राज्य बनाया और महेन्द्र सिंह से वे खिराज लेते रहे। राणा महेन्द्र सिंह ने अमर सिंह थापा से अपने पारिवारिक सम्बन्ध भी स्थापित किये।

गोरखों की पराजय तथा बघाट :

गोरखा आक्रमण के समय बघाट राज्य कहलूर का सहयोगी राज्य था। कहलूर ने चूंकि गोरखों का साथ दिया अत: बघाट में राणा ने भी तटस्थ रहकर कहलूर का समर्थन किया। युद्ध की समाप्ति पर अंग्रेजो ने अपने वचन के अनुसार सभी पहाड़ी रियासतों के प्रशासकों को सनद मे द्वारा उनके राज्य पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए लौटा दिये। बघाट की ओर से कोई सहायता न मिलने के कारण बघाट के 5 परगनों को छीन कर

अपने पास रख लिया। शेष 3 परगनों बीसाल, मचोली, बसाल को महेन्द्र सिंह को प्रदान किया। अंग्रेज सरकार ने बघाट के 5 परगने एक लाख तीस हजार रुपये में महाराजा पटियाला को बेच दिए थे। इनमें कसौली और कंडाघाट के क्षेत्र भी थे। 1839 में महेन्द्र सिंह निस्संतान मर गया।

राणा विजय सिंह (1842 – 1849) :

लैप्स की नीति के अनुसार दत्तक पुत्र गोद लेने की स्वीकृति नहीं थी, अत: बघाट रियासत अंग्रेजी राज्य में मिला दी गई। लेकिन राणा दलील सिंह के छोटे भाई के पुत्र उमेद सिंह ने गर्वनर जनरल के पास प्रार्थना की । लार्ड एलिंघम ने तब यह ठकुराई महेन्द्र सिंह के भाई विजय सिंह को 1842 को प्रदान की।

अंग्रेज सरकार ने कसौली क्षेत्र को सेना की छावनी बनाने के लिए विजय सिंह से 5000रु में किराये पर लिया तथा वार्षिक किराया 500 रू देना स्वीकार किया। लकिन 1861 में वार्षिक कर देना बन्द कर दिया। विजय सिंह की 1849 में निसंतान मृत्यु हो गई। यह रियासत पुन: अंग्रेजी शासन में चली गई।

उमेद सिंह 1861 मृत्यु :

उमेद सिंह ने पुन: गद्दी के लिए अपना हक जताया था विलायत में एक वकील कर के अपना दावा बोर्ड ऑफ डाइरैक्टरस के सामने प्रस्तुत किया। लार्ड केनिंग ने 1861 ई में उमेद सिंह को बघाट का राणा स्वीकार किया। उसकी शीघ्र मृत्यु होने के कारण 18 जुलाई 1869 को सरकार ने उसके पुत्र दिलीप सिंह को बघाट का राणा बना दिया।

राणा दिलीप सिंह (1861 – 1911) :

अंग्रेजों ने सोलन में भी सेना की छावनी – कैन्टोंनमैंट बनाने के लिए 1856 में 500रू वार्षिक कर पर भूमि खरीदी। इससे पूर्व लार्ड हार्डिंग ने महाराजा पटियाला से कसौली और सपाटू के क्षेत्र उपहार स्वरुप प्राप्त किये थे। 1847 में डगशाई के 5 गांव भी महाराजा पटियाला ने अंग्रेजों

को उपहार में दिये। 1850 में कसौली के पास सेंट एसाइलम की स्थापना की गई जिसे बाद में अंग्रेज सैनिकों के बच्चों के लिए स्कूल में बदल दिया गया। यह सेंटलारेंस स्कूल के रुप में आज विख्यात हैं। 1857 ई. के संग्राम के समय बघाट निष्क्रिय रहा। इसका कारण बघाट का शासन अंग्रेजों के हाथ में रहना था।

दुर्गा सिंह (1900 – 1977) :

ग्यारह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठने के बावजूद अंग्रेज सरकार ने दुर्गासिंह को राज्य के अधिकार 1919 ई. में दिये। 1922 ई. पूर्ण अधिकार दिये गये। 1924 से 1933 तक दुर्गासिंह चैम्बर ऑफ प्रिन्सीज में शिमला की पहाड़ियों को प्रतिनिधि रहे। अंग्रेजों में 1928 में इन्हे कुशलता तथा सहयोग के कारण 'राजा' की उपाधि से सम्मानित किया। दुर्गासिंह के समय की महत्त्वपूर्ण गतिविधि पहाड़ों में प्रजा मण्डलों की गतिविधियां रही। गांधी जी की सलाह पर दुर्गासिंह ने पहाड़ी राजाओं और प्रजामण्डलों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन 26 जनवरी, 1948 को सोलन में बुलाया। सम्मेलन में दुर्गासिंह ने सभी के सामने सुझाव रखा कि सभी रियासतों को एक संगठन में लाकर उसे 'हिमाचल - प्रदेश' का नाम दिया जाये। इसके लिए एक उपसमिति बनाई गई। इसके अध्यक्ष दुर्गासिंह तथा उपाध्यक्ष ठाकुरसेन नेगी को बनाये गये। इस उपसमिति को दूसरे प्रजामण्डलों से सम्पर्क कर एकीकरण को कहा गया। इसी के परिणाम स्वरुप 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश अस्तित्व में आया तथा बघाट महासू जिला की तहसील सोलन के रुप में अस्तित्व में आई।

बाघल – अर्की रियासत

भौगोलिक स्थिति :

अर्की क्षेत्र हिमाचल प्रदेश के सोलन जिले का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। अपनी समृद्ध संस्कृति के कारण इसका समीपवर्ती क्षेत्रों में विशेष प्रभाव रहा और ऐतिहासिक काल में शिमला की बारह ठकुराइयों में इसे शिमला – क्योंथल के पश्चात दूसरा स्थान प्राप्त था।

आज प्रशासनिक रुप से इसे स्वतन्त्रता – पूर्व की तीन रियासतों बाघल, कुनिहार तथा मांगल को मिलाकर बनाया गया है। 2010 ई. के पुनर्गठन में इसके साथ नालागढ़ के कुछ क्षेत्र भी सम्मिलित कर दिए गये हैं। अर्की क्षेत्र की उत्तरी सीमा सुन्दर नगर, मण्डी, तहसील, पश्चिम में बिलासपुर तथा रामशहर तहसील (सोलन) से स्पर्श करती है। दक्षिण में इसकी सीमाएं कसौली तहसील तथा पूर्व में धामी (शिमला) से मिलती हैं।

अर्की क्षेत्र का क्षेत्रफल 89403 हैक्टेयर है। इसका 67530 हैक्टेयर भाग वनों से ढ़का है। इसके कुल क्षेत्रफल का 35 प्रतिशत भाग पर्वतीय, 40 प्रतिशत भाग पठारीय तथा 20 प्रतिशत भाग समतल हैं। शेष भाग में छोटे – बड़े सरित – नालें बहते हैं। तहसील भर में कृषि योग्य भूमि केवल 1656 हैक्टेयर है तथा घासणी एवं पशु चरागाहें 19777 हैक्टेयर भूमि में फैली है।

2011 ई. की जनगणना के अनुसार अर्की तहसील की जनसंख्या 56,908 थी जिनमें 28363 पुरुष तथा 28545 महिलाएं थीं। निरक्षरों की संख्या 24 प्रतिशत थी। इसके कुल छोटे बड़े गांवों की संख्या 513 थी। साक्षरता 89 प्रतिशत थी ।

अर्की की ऊँचाई समुद्रतल से 1175 मीटर है। इसका अधिकांश भाग पथरीला है। इसके पश्चिमी भाग में बाड़ीधार पर्वत श्रृंखला, उत्तर में कठपोल मांगल की पहाड़ियां, मध्य में लूटरु महादेव शिखर हैं। दक्षिणी

भाग कुनिहार में कम ऊँचाई की पहाड़ियां हैं। इसकी प्रमुख नदियां गंभर, कुहणी तथा आली नदियां है जो प्राचीन काल में इन तीन रियासतों की सीमा रेखाएं बनाती थीं।

इतिहास :

बाघल रियासत की स्थापना 13 वीं शताब्दी में धारानगरी मालवा (उज्जैन) से आये पंवार राजपूत अजय देव ने की थी। जनश्रुति के अनुसार अजय देव अपने दो भाइयों विजय देव और मदन देव के साथ बद्रीनाथ और ज्वाला जी की यात्रा करने के लिए इस क्षेत्र में आये थे। अजय देव के साथ कुछ सैनिक तथा युद्ध सामग्री थी। उन्हें अपनी यात्रा के दौरान यह क्षेत्र अच्छा लगा। उस समय बघाट (सोलन) और बाघल (अर्की) में मावी जाति के निरंकुश शासक राज करते थे। उनकी मनमानियों से प्रजा दुखी थी। अत: स्थिति देख अजय देव पंवार ने बिना लड़ाई के म्वाई सरदारों को यहां से मार भगाया अजय देव का छोटा भाई विजय देव सोलन की ओर गया जहां उसने 'बघाट' रियासत की नींव रखी। तीसरा भाई धार्मिक विचारों का था वह सिरमौर क्षेत्र में चला गया जहां कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

बाघल और बघाट रियासतों में मुगल - अंग्रेज शासन के दौरान वरीयता का विवाद चलता रहा जिसमें शुरु में बाघल को सफलता मिली क्योंकि ये धारानगरी से अपने साथ एक लक्ष्मीनारायण की मूर्ति (जो अर्की में मन्दिर में स्थापित है) एक तलवार, एक छड़ी तथा एक नगाड़ा लाये थे - अर्की राजवंश के पास सुरक्षित थे। इनके साथ जो कर्मकार, पुरोहित, विद्धान आये थे, उनकी पीढ़ियां यहां आज भी वर्तमान है।

रिपोर्ट वन्दोबस्त कानूनी रियासत बाघल 1907 - 08 के अनुसार राणा अजय देव ने सबसे पहले मौजा 'डमरास' (दाड़लाघाट) में निवास स्थान बनाया। उसके बाद उसके बेटे नन्द देव ने दाड़ला के घोघर पहाड़ी पर अपना निवास बनाया। संभवत: कहलूर के हमलों के कारण सुरक्षा की दृष्टि से राणा ने यहां पहाड़ी पर निवास स्थान बनाना उचित समझा।

उसके बाद उसने धुन्दन क्षेत्र में अपनी राजधानी का निर्माण करवाया राजधानियां बदलने के पीछे अनेक जनश्रुतियां प्रचलित हैं। किन्तु सुरक्षा की दृष्टि से तथा सुविधा की दृष्टि से राजधानियां बदलनी पड़ी थी।

परमार वंश और धारा नगरी :

बाघल के शासक अपने को विक्रमादित्य राजवंश के राजा भोज को अपना पूर्वज मानते थे। राजा भोज परमार वंश का सर्व प्रसिद्ध शासक था। उसने उज्जैन - मालवा में 55 वर्ष राज किया। उदयपुर के आलेखों के अनुसार उसने हिमालय से मालावार चंदि देश सहित अनेक क्षेत्रों को विजित किया था। उसने गुर्जर राजा भीम, लाटा, कर्णाट और तुरुष्क (तुर्क) भी विजित किये थे। 1019 - 20 के एक उत्कीर्ण लेख में जयसिंह द्वारा भोज पर विजय और राज्य विस्तार का उल्लेख है किन्तु अन्य विवरणों में भोज की विजयों का उल्लेख मिलता है। भोज ने महम्द गजनवी का सामना भी सफलतापूर्वक किया था। भोज एक धर्मपरायण, विद्वान और प्रजापाल के रुप में जाना जाता है। उसने धारा में 'भोज - झील' बनवाई। उसने धारा में एक संस्कृत कालेज बनाया जो सरस्वति के मन्दिर के रुप में विख्यात हुआ। भोज को ज्योतिष, वास्तुकला एवं काव्य का निर्माता भी माना जाता है।

राजा भोज का छोटा भाई पराक्रमी उदयादित्य था। उसने 1060 ई. में आक्रमणकारी चालुक्य जयसिंह को मालवा से भगा दिया उदयादित्य 1060 - 1086 ई. तक धार का शासक रहा। इसके बाद भोज II ने तुर्क सेना को धार से बाहर निकाला।

1134 - 1142 ई तक यशोवर्मन ने 12 साल तक जयसिंह I के साथ युद्ध किये। अत: आर्थिक रुप से वह कमजोर हो गया। अत: राज्य में आन्तरिक भग दड़े और अराकता पैदा हो गई। कई सूबेदार स्वतन्त्र हो गये। मालवा पर बाहर से हमले होने लगे। 1150 - 1173 ई. तक धार के उपर चालुक्यों का कब्जा रहा।

1192 में बिन्ध्य वर्मन ने चालुक्यों को हराकर पुन: धार पर

कब्जा किया। थोड़े दिन बहुत उन्नति हुई किन्तु दिल्ली के तुर्क सुल्तानों ने हमले करने शुरू किये। 1234 ई. में सुल्तान वंश के इल्तुमिश ने धारा को लूटा। मन्दिर तोड़े। महाकाल के मन्दिर को तोड़ा और मूर्ति दिल्ली ले गयां उन दिनों दिल्ली में देव पाल नामक राजा राज करता था। सुल्तान फिरोज ने माण्डु राजधानी के समीप हमला किया और नुकसान करके चला गया। उसके भतीजे अलाऊदीन खिलजी ने 1292 ई. में भिलसा जीत लिया। उसके पश्चात 1256 - 60 ई. में मालवा में जयवर्मन 2 का राज रहा। यह एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ। उसका एक बजीर 'कोका' नामक स्वतन्त्र शासक था। उसके राज्य में अराजकता थी। राजा जयसिंह (जयसल) 1260 ई. में गद्दी पर बैठा।

मालवा का पतन :

जय वर्मन (1256 - 1269 ई) जय सिंह 2 (1269 - 1274) अर्जुन वर्मन (1274 - 1283 ई) भोज 2 (1283 ई) तक के परमार वंश के शासक दिल्ली सुल्तानों के अधीन रहे। सुल्तानों की शक्ति के आगे वे संघर्ष का साहस न कर पाते थे। किन्तु इल्तुमिश की मृत्यु (1225 ई) के पश्चात रजिया बेगम, बलवन के शासन में मालवा तथा अन्य राजपूत राज्य स्वतन्त्र होने का प्रयास करने लगे। बलवन ने बड़ी कठोरता से मालवा, रणथम्भौर, ग्वालियर, चन्देरी आदि राजपूत शासकों को दबा दिया। अलाऊदीन खिलजी तक (1296 - 1316) तक राजपूत शासक मुसलमान शासकों को विभिन्न प्रकार के कर देते रहे।

मुसलमान हमलावर मालवा पर आक्रमण करते रहते थे। 1305 ई. में अलाऊद्दीन खिलजीने मालवा पर आक्रमण करने अपनी सेना भेजी, मालवा के राजा महलक देव ने शत्रु का मुकाबला करने का संकल्प लिया। उसने 20,000 हजार घुड़सवार और 90,000 सैनिकों की सेना तैयार की। सेना की कमान एक स्वतंत्र सेनापति हरनन्द कोका को सौंपी। मुसलमानों की तरफ आईन-ऊल-मुल्क मुल्तानी 1,60,000 एक लाख साठ हजार सैनिकों को साथ युद्ध के लिए पहुंचा। एक रक्तरंजित लड़ाई के पश्चात धोखे से युद्ध में हरनन्द कोका युद्ध में काम आया।

राजपूत सेना ने लड़ाई जारी रखी। असंख्य मुसलमान मारे गये, किन्तु अधिक सैनिक संख्या के कारण उन्हें कुछ अन्तर नहीं पड़ा। बाद में चमत्कारिक रुप में मुसलमानों की विजय हुई।

मालवा के साथ माण्डू, धारा और चन्देरी भी अलाऊ दीन के कब्जे में आये। आईन - ऊल - मुल्क को मालवा का गवर्नर बनाया गया। 1294 ई. में उसने कोहिनूर प्राप्त किया और उसे दिल्ली ले जाया गया।

14वीं शती में मालवा पूरी तरह से मुस्लिम शासन में आया अत: पंवारों ने चितौड़, खान देश, माण्डू आदि में छोटे - छोटे किले बनाये ताकि मुसलमानों का सामना किया जा सके। सुल्तान अलाउदीन खिलजी (1296 - 1316 ई.) ने गुजरात 1297 ई. मालवा 1305 और माण्डू किला जीत कर सोन गढ़ चौहानों को सौंप दिया। उसने रणथम्भौर का किला (1301) मेवाड़ की राजधानी चितौड़गढ़ (1303 ई.) और जालौर (1300) को थोड़े संघर्ष के पश्चात आसानी से जीत लियां अलाउदीन ने जैसलमेर के भट्टी राजपूतों से भी युद्ध किया और गोल्डन फोर्ट को जीता।

अजय देव परमार 1260 – 13 05 ई. :

1305 ई. के धार के पतन के साथ ही परमार वंश के शासक सरदार और योद्धा धार छोड़ने को बाध्य हुए। अलाऊदीन खिलजी के हिन्दुओं के प्रति कट्टरता के कारण प्रजा का पलायन शुरु हुआ। जयसिंह 2 के पिता जैतवी देव के समय अजय देव परमार मालवा का महा प्रमुख अर्थात प्रधानमंत्री था। अजय देव महाप्रमुख रहे, इसका उल्लेख रहतगढ़ राजस्थान के ताम्रपत्र ''मान्धाता ग्रांट'' (1256 - 1260) में मिलता है। यह ताम्रपत्र जमीन दान देने के सम्बन्ध में हैं।

अजयदेव परमार पंवार वंश के निर्माण कृष्णराज उपेन्द्र की 15 वीं पीढ़ी में थे। अजय देव की धार में जागीर थी। इसका प्रमाण मध्यप्रदेश के निमाड़ जिले के गोड़ापुरा गांव के ताम्रपत्र में उल्लिखित मिलता है। राजा जयवर्मन द्वितीय ने गंग देव को आदेश दिया कि 'बडुला गांव' माधव शर्मा अग्निहोत्री को दान में दिया जाये। इसकी प्रति महाप्रमुख मालवा के अजय देव को 1260 ई. में दी गई।

यही वह समय था जब अजयदेव अपनी सैनिक कुशलता से मालवा के शत्रुओं से लड़ता रहा। ऐसा लगता है कि अलाऊदीन के धारा पर आक्रमण (1305) ई. तक अजयदेव कहीं न कहीं युद्ध से जुड़ा रहा। इसी वर्ष धार के पतन के साथ वह अपने दो भाइयों विजय देव और मदन देव के साथ सैनिक साजो-सामान के साथ धार से निकलकर हिमालयी क्षेत्रों की तरफ आया। वह अपनी उम्र के जवानी के पड़ाव का पार कर रहा था, किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों में लड़ाई के पर्याप्त साधन न होने और अराजक शासन व्यस्था के कारण बिना लड़ाई के वह बाघल का शासक बन बैठा। इसी तरह उसके वंश के योद्धा बघाट, बलसन में भी शासक बन बैठे। यह वह समय था जब मध्य भारत के पराजित राजपूत शासक हिमालय की तरफ आत्मरक्षा के लिए कूच कर रहे थे। शिमला की 18 बड़ी ठकुराइयां और 12 लघु ठकुराइयां इसी प्रकार बसी। यही नहीं जम्मू कांगड़ा, कुल्लू के कुछ भागों आदि में भी दन मैदानी शासकों ने पलायन कर आसानी से 'ठकुराइयां' स्थापित की। अधिक तर्क युक्त है कि अजय देव ने (1306-1310 ई.) के आसपास बाघल की स्थापना की। उसके साथ ही उसके भाई विजय देव ने बघाट की स्थापना की बघाट में थोड़े दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गई तथा बसन्त पाल नामक राजपूत को बघाट का निर्माता माना जाता है। बसन्त पाल ने बस्सी नामक स्थान को अपनी राजधानी बनाया था। इसी समय के आसपास गढ़वाल में भी एक परमार-राजपूत ने राज्य की नींव डाली थी।

इतिहास :

अजय देव धारा में सतत् संघर्ष तथा आत्मरक्षा के कारण प्रमुख सैनिकों कर्मचारियों के साथ बाघल क्षेत्र में आये। उस समय बाघल तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में मावी नस्ल के निरंकुश शासक यहां राज करते थे। 'मावी' हरियाणा-पंजाब की लड़ाकू प्रजाति थी जो वहां के दुर्गम क्षेत्रों में आवाद थी। ये मावी सतलुज-व्यास की नदी कंदरों के आस-पास रहते थे। हिमालयी क्षेत्रों में ये निरंकुश कबीलों को रुप में कार्य करते थे। इसी प्रकार की प्रजाति या रुण्ड, घींग, म्लेच्छ आदि यहां अराजकता फैलाये

हुए थे। यहां जनसंख्या भी कम थी, अतः बिना संघर्ष के अजय देव यहां का शासक बना। परम्परा के अनुसार ये तीन भाई पहले काली सेली आये। इसके पश्चात अजयदेव मौजा डमरास (दाड़लाघाट) में इसने अपना आवास बनाया। डमरास की पहाड़ी पर इनके आवास के निशान पत्थरों के ढेर के रुप में देखे जा सकते हैं। डमरास – डुगली का लक्ष्मण – धूनी मन्दिर का सम्बन्ध यहां से प्रारम्भिक शासक से जोड़ा जाता है।

बाघल में कब्जे के लिए कुनिहार के शासक अभुज देव ने जो जम्मू – अख्नूर से वहां आया यहां था ने अजय देव पंवर की सहायता की। अभुज देव पेशेवर योद्धा था। उस समय क्योंथल के ठाकुर ने जब बाघल पर हमला किया तब अभुज देव ने मदद की तथा जतोग के साथ लगते बाघल क्षेत्र को बचाने में कामयाब हुआ। इसके बदले में बाद में अजय देव ने अपने क्षेत्र का कुनिहार के साथ लगता गांव अभुज देव को भेंट किया। इन गांवों में सायरी का क्षेत्र भी छीनकर जुंगा से अभुज देव को प्राप्त हुआ। यह शासक बाघल का निर्माता था तथा दीर्घायु था। इसके विषय में अनेक दन्त कथाएं प्रचलित है। इसने धारा में अनेक अभियानों में युद्ध किया था, अतः यहां बाघल की सीमाओं को इसके सतलुज घाटी से गंभर नदी तक स्थापित किया।

नन्द देव :

नन्द देव अजय देव का पुत्र था। इसने डमरास से निवास स्थान बदलकर दाड़ला – घोघर को बनाया। सुरक्षा की दृष्टि से यह स्थान महत्वपूर्ण था। इसकी तलहटी में अपार जल स्रोतों की वजह से उसे यह स्थान पसंद आया।

कसास चन्द :

इसके समय में पासवर्ती कहलूर (बिलासपुर) रियासत से सीमा पर घुसपैठ तथा लूटमार होती रहती थी। इसके समय की जन श्रुतियों में उसकी अराजकता से सम्बन्धित बातें मिलती है।

कुल चन्द :

इस शासक का नाम बड़ी आस्था से लिया जाता है। इसने सीमाओं को मजबूत बनाया तथा कहलूर के आक्रमणों और घुसपैठ को रोकने के लिए धुन्दन को राजधानी बनाया। इसका सम्बन्ध यहां के देवी मन्दिर से जोड़ा जाता है। इसके पश्चात धीर चन्द, भूमिपाल चन्द ने धुन्दन क्षेत्र से शासन चलाया।

हरीश चन्द्र :

हरिश्चन्द्र नाम के राजा का उल्लेख एक जनश्रुति में मिलता है। अजय देव से राणा सभाचन्द तक ऐतिहासिक दस्तावेजों में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। कहते हैं ठाकुर हरिश्चन्द्र के घोड़े बाड़ीधार से कठपोल शिखर तक घूमते चले जाते थे। इस जन श्रुति से धुन्दन राज्य के कठपोल – मांगल तक के विस्तार का पता चलता है।

स्वच्छांग चन्द 'गूंगा – राणा' :

यह राजा बड़ा प्रतापी था। धुन्दन मठ तथा मन्दिरों के निर्माण में इसका नाम लिया जाता है। यह काली का भक्त था। इसके विषय में अर्की क्षेत्र में जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। अर्की राजा वंश के अनुसार यह राजा बहुत धार्मिक था। कहते हैं किसी विजय मे बाद उसने अपनी जीभ से काटकर देवी को रक्त चढ़ाया था। उस जमाने में जीभ चढ़ाने का रिवाज देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पंजाब तथा कांगड़ा में प्रचलित था, उस समय के वैद्य जीभ को दवा से ठीक कर दिया करते थे किन्तु उनकी जीव्हा पूरी ठीक नहीं हुई अत: इन्हें ''गूंगा राणा'' कहा जाता है। कहते हैं कोटी रियासत के एक पण्डित ने इनकी जीव्हा ठीक कर दी थी।

किंवदन्ती है कि कहलूर के राजा ने जब धुन्दन की सीमा पर हमला किया तो ये जालपा माता मन्दिर में पूजा कर रहे थे। अचानक इन्हें जब सूचना मिली तो एकदम इनके मुंह से निकला ''हे भवानी माँ'' और इनकी जुबान खुल गई। इनके समय में कहलूर के राजा इन्द्रसिंह ने

बहादुरगढ़ किले पर हमला किया। लेकिन इन्होंने बहादुरी से मुकाबला किया। इन्होंने कहलूर के सैनिकों को ''काली - सेली'' तक भगा दिया और सीमा निर्धारण किया। बाड़ीधार के सुन्दर जंगल के कारण कहलूर का राजा हमेशा यहां सीमा पर अधिकार जमाता था। इस लड़ाई मे कहलूर के बहुत से सैनिक मारे गये। इस लड़ाई में स्वच्छांग चन्द के छोटे भाई मित्र चन्द ने बहुत बहादुरी दिखाई। उसकी बहादुरी के ईनाम के रुप में मित्र सिंह को पन्द्रह सौ की जागीर ''मैहली का इलाका'' जो शिमला की सीमा पर था, प्रदान किया गया तथा उसे स्वतन्त्र ठाकुर का दर्जा प्रदान किया गया। कुछ समय पश्चात मित्र चन्द की बेटी का विवाह भज्जी के शासक से हुआ इस प्रकार भज्जी और मैहली को सम्बन्ध अच्छे हो गये।

इसके पश्चात के कुछ राजा इस प्रकार थे -

आलम चन्द, हरिपाल चन्द, हंस पाल चन्द, अभय चन्द

इनके विषय में महत्त्व का कोई विशेष विवरण नहीं मिलता ।

राणा प्रताप चन्द :

प्रताप चन्द बाघल राजवंश की 23वीं पीढ़ी का (1600 ई.) राणा था। अर्की महलों के भित्ति चित्रों में सर्व प्रथम प्रताप चंद के चित्र मिलते है। ये चित्र कांगड़ा - गुलेर चित्र - शैलियों के है। उन दिनों औरंगज़ेब बादशाह के भय से दिल्ली तथा अन्य मैदानी भागों से चित्रकार - कलाकार भाग कर हिमालयी क्षेत्रों में राजाओं के संरक्षण में आये जिन्होने अर्की, मण्डी, कांगड़ा, गुलेर, बसोली, नूरपूर, बिलासपुर, नालागढ़ और चम्बा आदि में शरण ली। यहां के शासकों ने उन्हें सम्मान तथा संरक्षण दिया।

प्रताप चन्द के समय की चित्रकला से अनुमान लगता है कि अर्की में चित्रकला की पूर्व - परम्परा रही होगी।

इस राणा के समय बाघल रियासत के सम्बन्ध बिलासपुर से अच्छे

रहे। इनकी बेटी कहलूर के राजा विक्रम सिंह लगभग 1600 ई. को ब्याही गई थी। इस राजा से सम्बन्धित एक रोचक घटना मिलती है- इसकी दोनों रानियों के एक ही दिन पुत्र पैदा हुये। कांगड़ा वाली के पहले बेटा हुआ, बाद में बाघल वाली रानी के बेटा पैदा हुआ। विक्रम सिंह कहीं बाहर के गढ़ में गया हुआ था। उसे वहां पहले बाघल वाली रानी के बेटा होने की खबर कर्मचारी ने दी। राजा ने प्रसन्न होकर उसे राजकुमार मानने की बात कही और बधाई संदेश भेजा। बाद में कांगड़ा वाली रानी का संदेश मिला, लेकिन राजा उत्सव में मिठाइयां बांट चुका था। कांगड़ा वाली रानी के बेटे का नाम सुलतान चंद तथा बाघल वाली रानी के बेटे का नाम केशव चन्द रखा गया।

बड़े होने पर दोनों भाईयों की आपस में नहीं बनती थी। विक्रम चन्द के बाद जब सुलतान चन्द गद्दी पर बैठा तो केशव चन्द ने कहलूर पर अपने विश्वस्त सैनिकों के साथ हमला किया और सुलतान को कांगड़ा भगा दिया

बार-बार लड़ाई के डर से दोनों भाइयों ने फैसला किया कि आपस में द्वंद्वयुद्ध किया जाये। जो बच जाएगा-वही कहलूर का राजा बनेगा अतः दोनों भाई तलवार लेकर मैदान में उतर आये। लड़ाई में दोनों घायल होकर मर गये। केशव चन्द को कोई पुत्र नहीं था अतः सुलतान चन्द के पुत्र कल्याण चन्द को राजा बनाया गया इसके बाद कहलूर के साथ सम्बन्ध कटु हो गये।

नवरंग चन्द (1605-1640):

इस राणा के समय कहलूर से बाघल के सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। सीमा का अनेक झड़पें होती रहती थीं। कई गांव कहलूर ने अपने कब्जे में कर लिये थे।

सभा चन्द (1640-1670 ई.):

सभाचन्द एक योग्य शासक था। यह प्रथम शासक था जिसने

धुन्दन छोड़कर 1643 ई. में अर्की को राजधानी बनाया। यह राणा बड़े आकर्षक व्यक्तित्व का युवक था। उसकी वेश-भूषा मुगल पहरावे की तरह थी। प्रारम्भ में उसने आधुनिक बाजार की गौशाला के पास अपना निवास - स्थान बनाया। धारा नगरी से लाई लक्ष्मी नारायण की मूर्ति को मन्दिर में प्रतिष्ठापित किया। साथ में मिट्टी-पत्थर के महलों का निर्माण करवाया। अर्की बाजार भी इन्होंने ही बसाया। इनके समय में चित्रकला को प्रोत्साहन मिला अर्की महलों के दीवान-खाने में इनका एक सुन्दर चित्र चित्रित मिलता है।

पृथ्वी चन्द :- (1670 - 1727 ई.)

पृथ्वी चन्द ने महलों के कार्य को पूरा किया तथा एक किले का निर्माण करने का कार्य प्रारम्भ किया। रियासतों के आपसी छोटे-छोटे विवादों के कारण लड़ाइयों में सुरक्षा के लिए यह आवश्यक था। उनके समय में राजा कार्य बाजार की गौशाला से ही होता था।

मेहर चन्द :- (1727 - 1743 ई.)

मेहर चन्द 1702 ई. में पैदा हुआ। इस शासक ने बाजार के ऊपर पहाड़ की खतरनाक ढलान पर किले का कार्य पूरा किया। इसके अतिरिक्त चूना-सुर्खी-पत्थर के पक्के महलों का निर्माण करवाया। राजदरवार अब ऊपर महलों में ही लगता था। सामाजिक गतिविधियों के लिए बाजार की गौशाला में ही बैठकें तथा आयोजन होते थे। मेहर चन्द एक कुशल तथा कलाप्रिय राजनीतिज्ञ था। कद में छोटा था, किन्तु दृढ़-प्रतिज्ञ था। इसके समय में चित्रकला का कार्य भी होता रहा।

इस राणा के समय कहलूर से बिगड़े सम्बन्ध पुन: सुधरे। इनके समय में कहलूर मे अजमेर चन्द (1692 - 1741) राज करता था अजमेर चन्द बड़ा महत्वाकांक्षी था, गुरू गोविन्द सिंह से उसके कटु सम्बन्ध थे। अजमेर चन्द ने सिरमौर पर आक्रमण करके कुछ इलाके को जीतकर अपने नाम से यमुना के किनारे एक किले का निर्माण किया इस अभियान में बाघल ने इसका साथ दिया।

1738 ई में अजमेर चन्द की लड़की मेहर चन्द के लड़के को व्याही गई थी। मेहर चन्द के समय कुल्लू का राजा जयसिंह (1733 – 34 ई.) भाग कर यहां इसकी शरण में आया था। मण्डी के राजा ने कुल्लू पर हमला किया जिसमें जयसिंह के बजीर ने विद्रोह करके मण्डी वाले राजा का साथ दिया। 1734 ई. में जयसिंह ने पंजाब के मुगल सूबेदार से मदद मांगी। वह पंजाब में उसके पास कई दिन ठहरा। कहते हैं जयसिंह के आकर्षक व्यक्तित्व के कारण मुगल सूबेदार की बेटी उस पर लट्टू हो गई। उसने शादी की इच्छा व्यक्त की परन्तु शर्त रखी कि वह मुसलमान बन जाए। इस शर्त को जयसिंह ने नहीं माना। अत: उसे मुगल सूबेदार की शरण छोड़कर फिर अर्की आना पड़ा। यह राजा अर्की में 1734 – 1740 ई. पुन: अपना राज्य वापिस न ले सका। 1742 ई. में इसकी मृत्यु हो गई।

भूप चन्द :– (1743 – 1778)

भूपचन्द के समय सारा राजकार्य और गतिविधियां राजमहलों में होने लगी। एक अदालत का भवन बनवाया गया। राजा दरबार नीचे बाजार में लगाता था। इनके दो लड़के जगत सिंह और मदन सिंह थे। दो लड़कियाँ थी। बड़ी बचपन मे मर गई। छोटी लड़की 1804 ई. में सिरमौर के राजकुमार के साथ व्याही गई। इनके समय में नालागढ़ (हिण्डूर) के राजा ने रामशहर सीमा पर लगते बाघल के इलाके पर हमला किया। इस हमले को कहलूर की मद्द से विफल कर दिया गया। सिरमौर को राजा ने बद्दी क्षेत्र में बाघल से झगड़ा किया और बाघल पर हमला किया लेकिन कहलूर की मद्द से उन्हें पीछे हटना पड़ा।

राणा भूप चन्द के समय कुनिहार के राणा अनन्त देव (1715 – 1795 ई.) के साथ लड़ाई का विवरण मिलता है। अनन्त देव कुनिहार राज वंश का प्रसिद्ध ठाकुर हुआ। एक बार उसने कांगड़ा के विरूद्ध कहलूर की सहायता की थी। इस लड़ाई में अनंत देव ने कांगड़ा के अफ़गान सरदार आगर खां को अपनी तलवार से मार गिराया था। इस लड़ाई 1783 ई. में कहलूर की रानी नागर देवी ने स्वयं सेना का नेतृत्व करके कांगड़ा के संसार चंद के सेनापति के विरुद्ध युद्ध लड़ा था।

राणा भूपचन्द के समय कुनिहार के राणा अनन्त देव के साथ 1795 ई. में एक लड़ाई का विवरण मिलता है। अनंत देव एक बहादुर किन्तु अभिमानी राजपूत था। वह अपनी रियासत के मार्ग से आने जाने वाले मुसाफिरों से पथ कर लेता था। कुनिहार मैदानी यात्रा के लिए एक महत्वपूर्ण पड़ाव था जहां से क्योंथल, पटियाला, हण्डूर, बाघल, कुठाड आदि जाने के लिए रियासत से गुजरना पड़ता था। इसका विरोध हिण्डूर और बाघल वालों ने किया किन्तु अनन्त देव न माना। फल स्वरुप बाघल के राजा और हिण्डूर के राजा ने कुनिहार पर संयुक्त आक्रमण किया। कुनिहार में उनके मुकाबले कम सैनिक थे। घबराकर अनंत देव ने स्थिति को देखते हुए सन्धि का प्रस्ताव रखा। इसलिए लड़ाई रुक गई। किन्तु दूसरे दिन किसी बात से नाराज होकर बाघल के मुसलमान सैनिक ने धोखे से अनन्त देव को मार दिया। 80 वर्ष के अनन्त देव की हत्या से बाघल और कुनिहार के सम्बन्ध बिगड़ गये जो आजादी तक यथावत रहे। इस लड़ाई के बाद कुनिहार का पोबर परगने का इलाका अर्की (बाघल) में मिला दिया गया और कुछ क्षेत्र गंभर के साथ लगता गांव हिण्डूर में मिला दिया गया। इस घटना की स्मृति कुनिहार के हाटकोट में अनन्त देव के एक मन्दिर के रुप में विद्यमान है। जब भूपचन्द की मृत्यु (1778 ई.) हुई उस समय उसके बेटे जगत चन्द की आयु केवल 10 वर्ष थी। भूपचन्द एक कुशल शासक होने के साथ अनेक मंदिरों का निर्माता भी माना जाता है।

राणा जगत सिंह :– (1778 – 1882 ई.)

दस वर्ष की आयु में जगत सिंह का राज्यारोहण हुआ। इस राणा को अपने जीवन काल में अनेक लड़ाइयां लड़नी पड़ी। गद्दी पर बैठने के कुछ दिन बाद ही कुल्लू के राजा पृथ्वी सिंह ने बाघल पर हमला किया। इससे पूर्व वह भज्जी, खनेटी और मण्डी के कई इलाके जीत चुका था। यह लड़ाई तीन स्थानों दानोघाट, बथालंग और गलोग में हुई जो 12 घण्टे चली। इसमें कुल्लू के सौ आदमी मारे गये जबकि बाघल के 40 आदमी युद्ध में काम आये। कुल्लू का मिंया सरदार मारा गया। बाकी कुल्लू के सिपाही भाग खड़े हुये।

कुछ दिनों बाद जगत सिंह ने अपने कुछ सधे हुये सिपाहियों की टुकड़ी लेकर शिमला के मैहली इलाके पर हमला किया और इसके कुछ क्षेत्र कलजूण, कैमली और पनेश जीत लिये तथा अपने राज्य की सीमा जतोग तक बढ़ा दी। जगत सिंह ने जतोग में एक किला बनाया जिसका नाम रखा 'जगत गढ़'

मैहली के अपने ही वंश के जागीरदार मियां सिंह को इस किले का सेनापति बनाया गया। कुछ दिनों बाद क्योंथल के राणा भूपसेन ने मैहली पर चुपचाप हमला करके इसे क्योंथल रियासत में मिला लिया तथा मियांसिंह को इसके बदले बहुत सा धन, सोने का कंकण तथा जागीर प्रदान की। मिंया सिंह ने इस प्रकार स्वेच्छा से इस क्षेत्र को क्योंथल में मिलाने की स्वीकृति प्रदान की

राणा जगत सिंह के समय कहलूर के राजा महाचंद ने दो बार बहादुरपुर की सीमा पर लड़ाई की। पहली लड़ाई सोसण गांव में हुई। दोनों ओर के 40 आदमी मारे गये। इस लड़ाई में हिण्डूर के राणा रामसरन सिंह ने बाघल का साथ दिया। कहलूर के सिपाहियों को पीछे भागना पड़ा। दूसरी लड़ाई बन्दला और संघेली में हुई। इसमें भी हिण्डूर ने बाघल का साथ दिया। कहलूर को पीछे भागना पड़ा।

जगत सिंह एक अच्छा योद्धा था। हिण्डूर के राजा रामसरन सिंह के साथ मिलकर जगत सिंह ने पिंजौर पर हमला किया। इस लड़ाई में सिरमौर के राजा ने इन्हें हरा दिया। जगत सिंह पकड़ा गया। उसे सिरमौर ले जाया गया, किन्तु समीपी रिश्तेदार होने के कारण छोड़ दिया गया।

जगत सिंह इस वंश का ऐसा शासक था जिसके जीवन भर पडौसियों से लड़ाइयां लड़नी पड़ी। 1805 ई. में गोरखों ने बाघल और हिण्डूर आदि रियासतों पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया था। उनके राज्य काल को ''गोरखायण'' के नाम से जाना जाता है।

गोरखा आक्रमण :

जगत सिंह के समय बिलासपुर में महान चन्द (1778 - 1842 ई.)

और हिण्डूर में रामसरन सिंह (1788 - 1848) का शासन था। हिण्डूर के राजा ने बिलासपुर (कहलूर) के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। महानचन्द अभी बालक था, उसकी माता कर्मचारियों के सहयोग से शासन चला रही थी। इस स्थिति का लाभ उठाते हुए सतलुज नदी के दायें भाग पर कांगड़ा के राजा संसार चन्द ने आक्रमण कर अपने अधिकार में कर लिया था। राजा महान चन्द ने पंजाब के सोढियों से मद्द मांगी परन्तु कोई साथ नहीं मिला।

इसके विरुद्ध महान चन्द ने सिरमौर के राजा धर्मप्रकाश से सहायता मांगी, परन्तु वह काँगड़ा के साथ लड़ाई करते वीरगति को प्राप्त हुआ। आनन्दपुर के सोढ़ी भी इस प्रकार मारे गये। मजबूत होकर महान चन्द ने हिण्डूर और कांगड़ा के विरुद्ध गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा से सहायता की प्रार्थना की जो उस समय अनेक पहाड़ी इलाकों को जीतता हुआ गढ़वाल पहुंच चुका था। गोरखों ने हिण्डूर पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया। इसके साथ हिण्डूर के अधीनस्थ ठकुराई बाघल भी गोरखों के अधीन हो गई। हिण्डूर के राजा रामसरन सिंह ने नालागढ़ छोड़कर पलासी में शरण ली।

1805 ई. में गोरखा सेनापति अमर सिंह थापा ने बाघल पर आक्रमण करने और लूटमार करने एक सैनिक टुकड़ी भेजी। बाघल उसका मुकाबला करने की क्षमता नहीं रखता था । गोरखा सैनिकों ने महलों के मुख्य द्वार पर आग लगा दी और दरवाजों को फूंक डाला। कम संख्या में होने के कारण वे किले में प्रवेश न कर उन्हें वापिस जाना पड़ा। वे कहलूर की तरफ बढ़े काफी समय तक कहलूर में रहे तथा उन्हों ने अनेक किलों का निर्माण किया रत्नगढ़, मलौण बहादुर गढ़ उसी की स्मृति दिलाते है। काँगड़ा और सिक्खों से संघर्ष के मध्य गोरखे पीछे हटे और अर्की के महलों पर हमला कर दिया। यह हमला 1809 ई. में हुआ राणा जगत सिंह माल असबाव के साथ बाघल छोड़कर नालागढ़ चला गया। वहां वह 'मढ़' गांव में रहा। बाद में हिण्डूर के राजा के साथ पलासी चला गया। वह नालागढ़ 7 वर्ष तक रहा। इन वर्षों में गोरखों का अर्की पर पूरा अधिकार रहा। उन्होंने अर्की की अच्छी जलवायु और आवागमन

की सुविधा की दृष्टि से इसे राजधानी बनाया। यहां का किला ऊंची पहाड़ी पर दुर्जेय तथा सुरक्षित था, यहां से दूर-दूर तक इलाके की हल चलों को देखा जा सकता था। गोरखों ने अर्की की पहाड़ियों लूटरु महादेव, ताल गांव, बल्ह-दाड़ला घोघर, बुघेरी और बाड़ीधार आदि पहाड़ियों पर छोटे-बड़े किले बनाये। बहादुर पुर गढ़ का किला बाड़ीधार पर बनाया ताकि बिलासपुर की ओर की हलचलों को देखा जा सके। यहां गोरखों के दो हजार सैनिक रहते थे।

गोरखों ने अर्की के गांवों को बहुत लूटा। वे अर्की के लोगों से 23247 रु. वार्षिक कर के रुप में लेते रहे। उनके अत्याचारों के किस्से यहां की जनश्रुतियों में सुनने को मिलते हैं। कहते हैं गोरखों प्रत्येक सुबह गांव-गांव जाकर दूध मांगने जाते थे। दिन में छाछ और शाम को घी मांगते थे। लोगों के धन अनाज और खाद्य-सामग्री को छीन कर ले जाते थे। लोगों ने अपना सोना चांदी और आभूषण गठ्ठों में और जंगलों में छुपाया 1805 से 1815 ई. तक बाघल में 'गोरखायण' यानि अराजकता रही। गोरखे पासवर्ती क्षेत्रों कुनिहार, महलोग, कुठाड़, कयोंथल आदि सभी इलाकों से लूट-घसूट करते थे। इस सम्बन्ध में दन्तकथाएं प्रचलित हैं।

गोरखा – अंग्रेज युद्ध :

पहाड़ी राणा, ठाकुरों ने मिलकर अंग्रेजी सरकार से अनुरोध किया कि वे 'गोरखायण' से उन्हें मुक्ति दिलाये। नवम्बर, 1814 को अंग्रेजों ने गोरखों के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा की और उन्हें सभी प्रकार का सहयोग देने को कहा। सभी पहाड़ी राजाओं को वचन दिया कि युद्ध में जीतने के बाद उनके क्षेत्र उन्हें वापिस कर दिए जाएंगे। अंग्रेजी सेना के सेनापति मेजर औक्टर लोनी ने रोपड़ की ओर से हिण्डूर पर धावा बोला। वहां हिण्डूर के रामसरन सिंह और बाघल के जगत सिंह राणा ने अपने सैनिकों के साथ अंग्रेजी सेना का साथ दिया। अमरसिंह थापा अर्की छोड़कर रामशहर पहुंचा। भयंकर युद्ध के बाद गोरखों की हार हुई। गोरखे पहाड़ी प्रदेश छोड़कर नेपाल जाने लगे। अन्तिम युद्ध बाघल के मलौण किले में गोरखा सेनापति भक्ति सिंह थापा के साथ युद्ध की समाप्ति पर

हुआ। अंग्रेजों ने यहां तोपों का इस्तेमाल किया जिससे मलौण किला लहस-नहस हो गया। युद्ध में भक्ति सिंह थापा मारा गया। आज भी भक्ति थापा का पवित्र स्मृति स्थल यहां वर्तमान है। गोरखों के कुछ परिवार अभी भी मलौण किले के पास विद्यमान है। इस आक्रमण में गोरखों का एक प्रमुख सेनापति बघाटिया भी मारा गया। शेष गोरखे नेपाल लौट गये।

अंग्रेज सरकार ने अपने वचन के अनुसार इन क्षेत्रों के शासकों को इनके राज्य कुछ शर्तों के साथ लौटा दिये। बाघल के राणा को 3 सितम्बर, 1815 को एक सनद भेंट की गई। जिसमें राज्य पीढ़ी दर पीढ़ी प्रदान किया गया। यह शर्ते लगा दी गई कि लड़ाई के समय राणा अंग्रेजों का साथ दे और अपने राज्यों की सड़कों को ठीक बनाये रखे। आवश्यकता पड़ने पर बेगारी भी दे। कुछ समय बाद वे बेगारियों की शर्त हटा दी गई और 3500रु- वार्षिक राजकर लगा दिया गया।

शिवशरण सिंह (1828 – 1840 ई.) :

गोरखों से मुक्ति के 13 वर्ष बाद 1828 ई. में जगत की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र शिवशरण सिंह गद्दी पर बैठा शिवशरण एक धर्मपरायण व्यक्ति था। उसने अर्की में मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा महलों में दीवान खाने में चित्रकला के लिए कांगड़ा-गुलेर के कलाकारों की सेवाएं लीं। इनके समय की प्रमुख घटना है कांगड़ा के राजा संसार चन्द के पुत्र अनिरुद्ध चन्द के अर्की में शरण लेने की। पंजाब का महाराजा रणजीत सिंह उसकी दो बहनों का हाथ अपने बजीर ध्यानसिंह के पुत्र हीरा सिंह के लिए चाहता था। अनिरुद्ध अपनी मर्यादा और धर्म के कारण इस प्रस्ताव के विरुद्ध था। रणजीत सिंह के प्रकोप के भय से वह अपने विशाल राज्य को लात मारकर अर्की में शिवशरण सिंह के पास आ गया। यहां से वह हरिद्वार चला गया। अनिरुद्ध के साथ कुछ चित्रकार यहां आये जिन्होंने अर्की दीवान खान एवं मन्दिरों में चित्र बनाये जो आज भी ऐतिहासिक धरोहर बने हुए है। 1828 से 1831 ई. तक अनिरुद्ध चन्द के दो पुत्र रणवीर चन्द और प्रमोद चन्द अर्की में रहे। अनिरुद्ध चन्द की 1831 ई. में मृत्यु हो गई तथा अंग्रेजी सरकार के कहने पर उसके दोनों

पुत्रों रणवीर चन्द और प्रमोद चन्द को वापिस कांगड़ा बुलालिया गया। कहते है अनिरुद्ध चन्द ने जगत सिंह को शरण देने के बदले एक अमूल्य हीरा तथा पर्याप्त सोना - चांदी भेंट किया था।

किशन सिंह (1840 - 1876 ई.)

राजा किशन सिंह बाघल रियासत के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस राजा के समय अर्की का विकास हुआ। उसने अपने महलों का विस्तार किया। रियासत में अनेक मन्दिर बनवाए। दीवानखाने में चित्रकारी करवाई। अर्की बाजार को सुव्यवस्थित किया। अर्की की आस - पास की जमीन पर बिलासपुर और कांगड़ा के बागवान - किसानों को बुलाकर आम के बागीचे लगवाये। खेती बाड़ी के विकास में रुचि ली।

यह राजा हाथी, घोड़े और भैंसो का बहुत शौकिन था। स्थान उसकी रियासत में तीन - चार हाथी, चालीस, पचास घोड़े और 250 भैंसे हमेशा रहती थी। इस राजा से प्रजा बहुत प्रसन्न रहती थी। राजा की रसोई 'सदाव्रत' थी। रात - दिन महलों में लंगर चला रहता था। सैंकड़ों लोग रोज भोजन करते थे। राजस्व के रुप में अनाज पर्याप्त मात्रा में एकत्र होता था, परन्तु राजा कभी अनाज नहीं बेचता था। वह अनाज को बेचना पाप समझता था। इसके कारण उनके भण्डार सदा भरे रहते थे। उसने अपने पूर्वजों के अधूरे महलों का निर्माण - सुधार करवाया। राजा किशन सिंह शिकार का शौकीन था। इसलिए उसने जंगलों की सुरक्षा का विशेष ध्यान रखा। चालीस - पचास बंदूकची सदा उनकी सेवा में तत्पर रहते थे ।

उसने अपने समझदार भाई मिंया जयसिंह को वजीर बनाया। वह वजीर बुद्धिमान और कुशल प्रशासक था। इसकी योग्यता का सिक्का दूर - दूर तक फैला था। वह महत्वाकांक्षी तथा सीमाओं के विस्तार में रुचि रखता था। अतः उसके विरुद्ध दरबार में कई कर्मचारी राजा के कान भरते थे। कुछ धूर्त लोगों ने गलत - झूठी शिकायतें करके उसे बजीर के पद से हटवा दिया परिणाम स्वरूप वह अपनी रियासत में चला गया अब राजा ने रियासत का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया और अपने दूसरे भाई विजय सिंह को बेटे मिंया राम सिंह को बजीर बनाया। मिंया जय सिंह की

मृत्यु के बाद उसके पुत्र ध्यान सिंह ने बजीर बनाया गया। बड़े मुकद में बहियों में दर्ज किये जाते थे। फैसले बजीर की सहायता से पंचायत प्रणाली के तहत सुलझाये जाते थे। अनिर्णित फैसलों को शपथ दिलाकर हल किया जाता था। शपथ 5 – 6 प्रकार से दिलाई जाती थी।

1. डिब घड़ा गोला : – एक घड़े में पानी भरा जाता था उसमें आटे के दो गोले, एक सोने के और दूसरा चांदी के छल्ले से लिपटे होते थे जो घड़े में डुबा दिये जाते थे। शपथ लेने वाले को एक गेंद निकालनी होती थी। यदि वह चांदी के छल्ले वाली गेंद निकालता तो वह सच्चा माना जाता और फैसला उसके पक्ष में होता था।

2. डिब लोहे की डली : – यह एक अग्निपरीक्षा थी। इसमें पहले पीपल के कुछ पत्तों को एक धागे से पिरोया जाता था और फिर शपथ लेने वाले व्यक्ति के हाथ में बांध दिया जाता था। तब चार से आठ सेर तक के भार वाले एक लाल गर्म लोहे के गोले या डली को उसके हाथ पर रख दिया जाता था सात कदम चलने पर यह गोला फेंकना होता था यदि उसका हाथ न जले तो फैसला उसके पक्ष में हो जाता था।

3. डिब कड़ाही : – यह भी एक कठोर अग्नि – परीक्षा थी। एक कड़ाही में तेल गर्म किया जाता था। शपथ लेने वाले वक्ति को एक चांदी का सिक्का उबलते तेल से हाथ डालकर निकालना होता था। यदि उसका हाथ ना जले तो फैसला उसके पक्ष में हो जाता था।

4. गाय की पूंछ पकड़कर गौ माता की कसम खाकर भी निर्णय हो जाता था।

5. 'ठाकुर सहाय' कहने और 'चौकी ठाकुर' छूने पर भी शपथ ली जाती थी।

6. 'गंगा जली' उठाकर और अपने पुत्र के सिर पर हाथ रखकर भी शपथ उठाई जाती थी।

हारे हुए पक्ष को विरोधी पक्ष को हर्जाने के अलावा कुछ पैसा रियासत के लिए बतौर दण्ड राशि देना पड़ता था। मुकद्दमों के निर्णय तथा शपथ के ये तरीके बाघल के अतिरिक्त कुनिहार, महलोग, बेजा, बघाट, क्योंथल, भज्जी मांगल आदि ठकुराइयों में भी प्रचलित थे। किशन सिंह के शासन में सबसे बड़ा विद्रोह ''पोबर परगने का विद्रोह'' हुआ। इसका कारण सरली गांव जो ज्यालंग (कसौली) का गांव - को छीनकर सरली के दयालों को दिया गया। इससे पोबर परगना के सभी लोगों का क्रोध विद्रोह में बदल गया और उन्होंने भू - राजस्व देना बन्द कर दिया। राज्य के कर्मचारियों और लोगों की आपस में मारपीट हुई जिसमें राज्य कर्मचारी घायल हो गये। राजा को इसे दबाने के लिए अंग्रेज सरकार की मदद लेनी पड़ी इस पर विद्रोहियों के नेता को सुपरिंटैण्डेंट शिमला हिल स्टेटस ने पकड़कर रियासत को सौंप दिया। राजा ने दण्ड के तौर पर उन पर मालगुजारी बढ़ा दी और 8000 रूपये जुर्माना लगा कर विद्रोहियों को छोड़ दिया। इसके साथ विद्रोह समाप्त हो गया।

1857 ई. के विद्रोह के समय किशन सिंह ने अंग्रेजी सरकार की मदद ली। वह क्योंथल, धामी, कोटी और जुब्बल के 250 आदमियों के साथ शिमला में स्थिति का सामना करने को प्रस्तुत रहे इन्होंने शिमला - जालन्धर सड़क की सुरक्षा का जिम्मा लिया। विद्रोह में मदद के लिए अंग्रेज सरकार ने राणा किशन सिंह को राजा की उपाधि प्रदान की। पीढ़ी दर पीढ़ी राज्य तथा खिल्लत भेंट की। मिंया जय सिंह को भी खिल्लत भेंट की गई। उसने मियाँ जय सिंह को कुछ आदमियों के साथ शिमला भेजा।

किशन सिंह ने सफलतापूर्वक 37 वर्षों तक राज किया। उसके समय में बाघल की गणना शिमला हिल्स की रियासतों में पांचवे स्थान पर होती थी। 12 ठकुराइयों में इसे दूसरा स्थान हासिल था। यह विद्रोह नालागढ़ में भी फेल गया। मिंया जय सिंह ने उसे जाकर शांत किया।

मोती सिंह (1876 – 1877 ई.) :

राजा किशन सिंह की मृत्यु 1876 ई. में हुई। इसके बाद मोती सिंह बालकपन में ही – बाघल की राजगद्दी पर बैठा परन्तु चार मास बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। रानियों का इसमें षड़यन्त्र का संदेह हुआ।

राजा ध्यान सिंह: – (1877 – 1904 ई.)

मोती सिंह के पश्चात दूसरा भाई राजगद्दी पर अधिकार के लिए नहीं था। अत: किशन सिंह के छोटे भाई जयसिंह के पुत्र मियाँ ध्यान सिंह को अंग्रेज सरकार ने राजा बनाया। वैसे किशन सिंह के सबसे छोटे भाई मिंया मान सिंह ने भी दावेदारी जताई लेकिन ध्यान सिंह की सेवाओं और योग्यता को देखते हुए उसके, हक में फैसला किया गया। यहां से राजवंश में दूसरी श्रृंखला अधिकार क्षेत्र में आई। 1877 ई. में राज़गद्दी के समय ध्यान सिंह ने रीति के अनुसार छोटे भाई मानसिंह को अपना बजीर बनाया। अपने पूर्वजों की भान्ति यह राजा भी हाथियों और घोड़ों का शौकीन था। उसे 'नागरी' और पहाड़ी संस्कृति की ठीक शिक्षा दी गई। उसे उर्दू और अंग्रेजी नहीं आती थी, परन्तु उसकी रूचि संस्कृत साहित्य में थी।

मुकद्‌दमों का निपटारा वह स्वयं करता था, परन्तु उसकी रूचि प्रशासन में नहीं थी। राज्य का सारा काम अपने छोटे भाइयों पर ही निर्भर था। इसके राज्य में न्यायालय की बहियां बननी शुरू हुई। न्यायालय शुल्क और नान जुडिसियल शुल्क स्टाम्स को भी प्रयोग में लाया जाने लगा। अनाज – भण्डारों का आय – व्यय का लेखा जोखा रखा गया। पूरी रियासत को चार तहसीलों – अर्की, दाड़ला, धुन्दन, सरली में बाँटा गया।

बड़ोग गांव का विद्रोह :

ध्यान सिंह के समय बड़ोग गांव के ब्राह्मणों में मनलोग जंगल में जानवर न मारने के कारण राजा के विरुद्ध बगावत कर दी मनलोग जंगल से सूअर आकर किसानों की खेती चट कर जाते थे। राजा ने उनके शिकार पर प्रतिबन्ध लगाया था। इसका विरोध किशन सिंह नामक युवक के नेतृत्व में शुरू हुआ ।

इस आंदोलन के कारण लोग भूखों मरने लगे थे क्योंकि बरसों से कोई फसल नहीं हो रही थी। राजा ने राजस्व बढ़ा दिया था, लोगों को पशुओं को चराने के लिए जगह नहीं थी। आपसी संघर्ष में राजा के कई सिपाही घायल हुए। यह संघर्ष 1897 से 1902 तक चला। अंत में शिमला से पहाड़ी रियासतों के अधीक्षक ने यहां के विद्रोहियों को पकड़कर रियासत के हवाले किया जिन्हें अम्बाला जेल भेज दिया गया। इस प्रकार यह आन्दोलन दबा 1904 ई. में ध्यान सिंह की मृत्यु हो गयी। ध्यान सिंह ने 27 वर्ष सफल शासन किया। इसके चार बेटे और तीन बेटियां थी। सबसे बड़ा बेटा विक्रम सिंह था। पर्वतीय राजाओं में ध्यान सिंह का प्रमुख स्थान था।

राजा विक्रम सिंह (1904 – 1922 ई.) :

ध्यानसिंह की मृत्यु के समय टीका विक्रमसिंह नाबालिक था, अत: रियासत का शासन बजीर मियां मानसिंह ने संभाला। मियां मानसिंह और सुकेती रानी जो टीका विक्रम सिंह की मां थी, के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। यह द्वेष इतना बढ़ा कि सारे इलाके के लोग मियां मान सिंह के विरुद्ध हो गये। 1905 ई में समस्त कनैत जाति ने बजीर और उस के सभी भाइयों के विरुद्ध विद्रोह किया। अत: सुपरि-टैण्डैण्ट हिल-स्टेटस को इस बार भी हस्तक्षेप करना पड़ा । सरकार ने कांगड़ा के एक नायब तहसीलदार मियां शेर सिंह को मानसिंह के साथ मैनेजर नियुक्त किया। शेर सिंह ने रियासत में सुधार किया। उसने रियासत में जमीन का बन्दोवस्त करवाया जो 1908 में पूरा हुआ।

1909 में मियां मान सिंह और शेरसिंह के स्थान पर सरकार ने राय साहब हाकिम सिंह को मैनेजर नियुक्त किया गया। यह प्रबन्ध 1921 तक चला 1921 में सरकार ने विक्रम सिंह को राज्य के कुछ अधिकार दिये मैनेजर हाकिम सिंह ने वजीर के रुप में कार्य किया। विक्रम सिंह के समय अर्की में प्रथम पाठशाला स्थापित की गई। इसके समय में रियासत की आय 65045 रु. थी। इस राजा की मृत्यु 29 वर्ष की आयु में हो गई।

सुरेन्द्र सिंह :- (1922-1944 ई.)

विक्रम सिंह की मृत्यु समय सुरेन्द्र सिंह की आयु 13 वर्ष थी। इसलिये प्रशासन का कार्य पण्डित विराट चन्द को दिया गया जो उस समय बजीर था। वह 1927 ई. तक कार्य करता रहा। 1927 ई. में लाला खान चन्द को मैनेजर बनाया गया। जनवरी 1932 में सरकार ने सुरेन्द्र सिंह को पूरे अधिकार दिये। इसके समय पंचायतों के द्वारा विकास कार्य शुरू किये गये। घुण्ड इकुराई के कुंवर शिव सिंह इस राजा के समय 1937 से रियासत के वजीर रहे।

सुरेन्द्र सिंह नाम मात्र का ही राजा था। वास्तव में अंग्रेज रेजिडैण्ट ही शिमला से शासन चलाते थे। रियासत में कुप्रबन्ध था, महलों में सुरेन्द्र सिंह के विरुद्ध षड़यन्त्र होते रहते थे। गद्दी के लिए रिश्तेदारों विशेषकर रानियों में लड़ाई झगड़े रहते थे। सुरेन्द्र सिंह 'मिरगी' की बीमारी से ग्रस्त था जिसके कारण वह रात को बिस्तर से गिर पड़ता था।

उसके इलाज के विषय में एक वैद्य का संस्मरण बड़ा महत्वपूर्ण हैं जिसने सुरेन्द्र सिंह की मिरगी का इलाज किया था। वह वैद्य थे पंडित त्रिलोक सिंह ''आजम' पं॰ त्रिलोक सिंह आजम ने मनोहर कहानियां, नवम्बर, 1982 के अंक में बाघल की अव्यवस्था और महलों में षड़यन्त्रो का पर्दाफाश किया है। ''एक क्रान्तिकारी इलाज'' लेख के अनुसार वे लिखते है-''1927 ई. में मेरा चिकित्सालय शिमला में काफी मशहूर हो चुका था। शिमला उस समय अंग्रेजों की राजधानी थी। वहां पर गर्मियां बिताने आये राजे-महाराजाओं तथा उनके परिवारों की शान-शौकत माल रोड़ पर देखने को मिलती थी। अधिकांश राजा, रजबाड़े मुझसे चिकित्सा परामर्श लिया करते थे।

उन दिनों जुब्बल रियासत के राजा राणा भरत चन्द माल रोड़ स्थित अपनी शानदार कोठी 'जुब्बल हाऊस' ठहरे हुये थे। उनके साथ उनका भानजा राजा सुरेन्द्र सिंह भी आया हुआ था। सुरेन्द्र सिंह बाघल रियासत का राजा था। वह युवक मिरगी की बीमारी से परेशान था। इसकी-वजह से वह बाघल का राजा होते हुए भी शासक नहीं था। बाघल वायसराय द्वारा शासित प्रदेश था। वायसराय की ओर से बाघल का

प्रशासन पण्डित विराट चन्द चलाते थे। उन्हें जिला शिमला के रेजिडेण्ट द्वारा यह अधिकार दिया गया था।

जुब्बल के राजा साहिब ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं सुरेन्द्र सिंह का इलाज करूं, परन्तु अंग्रेजी रेजिडेण्ट ने देसी चिकित्सा की इजाजत नहीं दी। अंग्रेजी पद्धति से जब लाभ न हुआ तो जुब्बल के राजा ने देसी इलाज के लिए रेजिडेण्ट से अनुमति ले ली।

एक दिन मेरे दवाखाने के बाहर दो राजसी व्यक्ति घोड़ों पर आये। वे रूपयों से भरी एक गठरी लाये थे। उनके द्वारा दिया गया पत्र बाघल के राजा सुरेन्द्र सिंह का था। सुरेन्द्र सिंह ने मुझे फौरन आने का अनुरोध किया था। गठरी मे दो हजार चांदी के सिक्के थे जो उन्होंने राह खर्च के लिए भेजे थे।

जिस समय यह रुपयों की गठरी भीतर रखी गई, उस समय संयोग से भारत के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी 'विस्मिल' और चन्द्रशेखर आजाद मेरे कमरे में बैठे हुए थे। मैं उन दिनों शिमला के सांस्कृतिक सहित्यिक और राजनैतिक कार्यक्रमों में गहराई से जुड़ा था। मैं कांग्रेस का सचिव तथा सांस्कृतिक संस्था का संयोजक भी था और ''शिमला समाचार' साप्ताहिक का सम्पादक भी। विस्मिल की तरह मैं भी शायर था। उन्हीं के साथ आजाद मेरे पास आते थे। मैं कई कारणों से 15 – 20 दिनों के लिए बाघल जाना नहीं चाहता था किन्तु ''विस्मिल' और चन्द्रशेखर आजाद ने मुझे अलग बुलाकर कहा कि मैं इन रुपयों को ले लूं क्योंकि क्रान्तिकारियों को आर्थिक सहायता की बहुत जरुरत थी। मैंने ये सारे रुपये क्रान्तिकारी साथियों को दे दिये।

अगली सुबह मैं अपनी घोड़ी 'गुलशन' पर सवार होकर कण्डाघाट के रास्ते अर्की रवाना हुआ। मेरे साथ मेरे सचिव त्रिलोक जोशी भी थे। मुझे अर्की 'शीशमहल' भवन में ठहराया गया। मेरी सेवा में 3 – 4 दिन मुझे सुरेन्द्र सिंह की बीमारी वर्दी धारी सैनिक तैनात हो गये। 3 – 4 दिन मुझे सुरेन्द्र सिंह की बीमारी समझने में लगे। चौथे दिन इलाज शुरु हुआ। सुरेन्द्र सिंह को रोज डायरी लिखने का शैक था। वह विवरण कुछ

इस प्रकार होता था- ''सरकार ने आठ बजे दातुन, कुरला-किया, सरकार को आठ बजकर अठ्ठाईस मिनट पर कान में खुजली हुई, दस बजे सरकार ने नाश्ता किया, ग्यारह बजकर सात मिनट पर सरकार को रानी साहिबा ने याद किया आदि - आदि ।

मैं राजा के मनोवैज्ञानिक इलाज की भी सोचने लगा। उनकी सारी बातें सुनता, वे मेरे मित्र बन गये थे। इलाज शुरु हुआ 8 - 10 दिन में उन्हें कोई दौरा नहीं पड़ा। एक दिन मैं और मेरा सचिव अपनी-अपनी घोड़ियों पर सवार होकर बाजार में घूमने लिकले। पन्द्रह दिनों तक हम बाहरी दुनिया से कटे रहे थे। जब हम बाजार में घूम रहे थे तो पीछे घुड़सवारों की टाप की आवाजें सुनाई दी। जब पास आये तो पता चला कि वे मुस्लिम सुपरिंटैण्डैण्ट थे। मुझे कहा गया कि महल वापिस चलो राजा की आज्ञा है। हम पर किसी षड़यन्त्र का संदेह किया गया था।

महलों में शाम तक राजा से मुलाकात नहीं हुई। राज माता ने अलग बुलाकर हमसे कहा कि सोते समय ली जाने वाली दवाई की पुड़िया में दवा के स्थान पर सिन्दूर, सूअर के बाल, चावल मिले जो कोई जादू-टोना था। मैंने राज माता को समझाया कि यह किसी दरबारी का काम हो सकता है। यदि मैंने राजा को मारना होता तो मेरे पास तो अनके विषैली दवाइयां हैं। पर मैं ऐसा क्यों करुंगा?'' राज माता को विश्वास हो गया ।

मैंने जैसा कहा था कि राजा का सबसे विश्वसनीय और निकट रहने वाला कौन है तो राजा का निजी सचिव रामरतन दोषी पाया गया। पुलिस सुपरिंटैण्डैण्ट ने जब सख्ती की तो उसने सब कुछ उगल दिया। उसने राजा के निकट सम्बन्धी का नाम बताया जो राजा को कभी रोग मुक्त नहीं होने देना चाहता था।

रामरत्न निकाल दिया गया। राजा ठीक हुआ। शिमला से 6 माह इलाज चलता रहा और राजा की मिरगी ठीक हो गई।'' इस विवरण से पता चलता है कि प्रशासन नाम की कोई बात राजा के हाथ में नहीं थी। राजा सुरेन्द्र सिंह की मृत्यु 1944 ई. में 35 वर्ष की उम्र में हुई।

राजा राजेन्द्र सिंह :— (1945—2010 ई.)

राजा राजेन्द्र सिंह 29 फरवरी, 1928 को पैदा हुए। उनकी शिक्षा कर्नल ब्राऊन्स स्कूल देहरादून में हुई। उसके बाद गवर्नमैण्ट कालेज लाहौर से डिग्री प्राप्त की। वे आधुनिक विचारधारा के व्यक्ति थे। इनका राज्यारोहण 28 पौष, 2003 को हुआ और 27 आषाढ़, 2004 को उन्हें राज्याधिकार मिले। राजा ध्यान सिंह के पश्चात 43 वर्ष बाद एक ऐसा युवा गद्दी पर बैठा जो स्वस्थ, शिक्षित और आधुनिक था। राजेन्द्र सिंह ने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन को संघर्ष को अनुभव किया और रियासत में चल रहे प्रजामण्डल आन्दोलन के आगे सिर झुकाया। अर्की में भी प्रजामण्डल आंदोलन तेज हो गया था। लाला प्रभुदयाल, मनसा राम ठाकुर, हरिराम, तुलसी राम, भोलू राम, पुरिया राम, खुशी मुहम्मद, सैनू राम, दौलत राम, दया राम, हीरा सिंह पाल आदि क्रान्तिकारियों ने आजादी के लिए राजप्रणाली का विरोध किया। 15 अप्रैल, 1948 को बाघल रियासत हिमाचल प्रदेश के महासू जिले में मिला दी गई जिसमें आज मांगल कुनिहार मिलाकर तहसील का रूप दिया गया है।

राजेन्द्र सिंह अर्की क्षेत्र से हिमाचल विधान सभा के लिए 2 बार एम. एल. ए. चुने गये तथा हिमाचल होम गार्डज कमाण्डैण्ट जनरल रहे। इन्हें नागरिक सुरक्षा का निदेशक बनाया गया।

बाघल

''बहुत समय तक तो बाघल के शासक स्वतन्त्र रूप से राज करते रहे, परन्तु समय के साथ-साथ दिल्ली के मुसलमान शासकों विशेषकर मुगलों का प्रभाव उत्तरी पहाड़ियों की ओर बढ़ जाने के कारण बाघल भी प्रभुसता में आ गया। अत: वे केन्द्रीय सत्ता को एक हजार रुपये राजकर के तौर पर तथा आवश्यकता पड़ने पर 300 सैनिक और 300 बेगारी देते थे। यह कर वे अधिपति शासक हिण्डूर कहलूर या सिरमौर के राजा द्वारा दिया करते थे।

बाघल पर कभी हिण्डूर कभी कहलूर और कभी सिरमौर की प्रमुखता रही । ऐसी स्थिति में बाघल को अपनी सीमाओं को सुरक्षित रखने में कई उतार-चढाव देखने पड़े ।''

– हेमिल्टन वाल्टर 'डेसक्रिप्शन ऑफ हिन्दुस्तान' लन्दन – 1820

क्योंथल – रियासत

वर्तमान सोलन जनपद में शिमला का कण्डाघाट क्षेत्र और सुबाठू का छावनी भी सम्मिलित की गई है अतः सोलन के पूर्व इतिहास पर प्रकाश डालना आवश्यक है। गोरखा आक्रमण के समय (1803 – 1815 ई) बघाट का तीन चौथाई भाग यानी 8 परगनों में से 5 परगने अंग्रेजों ने गोरखों को हराने के बाद महाराजा पटियाला को दे दिये थे जिनमें कण्डाघाट, कसौली और सुबाठु के क्षेत्र भी थे। बघाट (सोलन) में केवल तीन परगने ही रह गये थे। अंग्रेज – गोरखा युद्ध में बघाट के राणा महेन्द्र सिंह (1803 – 1839 ई) ने कहलूर से सन्धि के कारण गोरखों का साथ दिया था, अतः दण्ड स्वरुप अंग्रेजों ने बघाट के इन इलाकों को पटियाला को 30000 रू. में बेच दिया था। पुनः 1847 ई.– में लॉर्ड हार्डिंग के मांगने पर कसौली और सुबाठू के क्षेत्र उसे उपहार स्वरुप प्रदान किये थे। वर्तमान में ये क्षेत्र सोलन जनपद के भाग हैं।

रियासत का नाम 'क्योंथल' क्यों पड़ा इसका कोई विवरण नहीं मिलता। संभवतः किसी स्थान विशेष की घटना के नाम पर यह नाम रखा गया हो। राजवंशावली के अनुसार क्योंथल का क्षेत्रफल प्राचीन काल में 482 वर्ग कि. मी. था तथा शिमला की पहाड़ी रियासतों में इसका स्थान छठा था।

'क्योंथल' रियासत की सीमाएं पूर्व में सिरमौर, ठियोग, बलसन दक्षिण – पश्चिम में पटियाला, मधान, कोटी उत्तर में कुमार सेन रियासतें थीं । क्योंथल 6 परगनों में विभक्त था। 1892 ई. की जनगणना के अनुसार इसकी आवादी 31154 थी। आजादी के समय यहां सेन वंश का 78वां राजा विक्रम सेन शासन करता था। राजा को प्रिवी पर्स के रूप में 39700 रू. पेंशन मिलती थी।

प्रारंभिक इतिहास :

सेन राजाओं से पूर्व इस क्षेत्र में छोटे – छोटे ठाकुरों का अधिपत्य था। इन क्षेत्रों पर सिरमौर राज्य और हिण्डूर की सेनाएं हमेशा लूट – मार

करती रहती थीं । रियासत में अराजकता फैली रहती थी। 1203 ई. में मुसलमान शासक शहाबुद्दीन गौरी ने जब बंगाल पर आक्रमण किया और जीत प्राप्त की तो वहां का राजा सूर्य सेन बंगाल छोड़कर प्रयाग आ गया। उसका पुत्र रूप सेन सेनासहित शिवालिक क्षेत्र में स्थित रोपड़ आ गया। उसने वहां एक किला बनाया।

मुसलमान सेनाओं ने वहां भी उसका पीछा किया वह उनसे लड़ाई में मारा गया। उसने बड़े पुत्र ने इस स्थान को छोड़कर सतलुज नदी से पार 'पाँगणा' में शरण ली। यह पराक्रमी युवक था - वीर सेन। दूसरे भाई गिरिसेन ने अश्विनी नदी के दाहिने किनारे शरणली। (765 ई.) राजा वीर सेन ने पांगणा सुकेत में किला निर्माण कर आस - पास के बीसियों छोटे - छोटे ठाकुरों के किलों पर कब्जा किया और सुकेत राज्य की नींव डाली। यह राजा भी रथ - छत्र के साथ पूजा जाता है। इसे सहदेव पांडव का वंशज माना जाता है। वैसे सेन वंश अपने को सहदेव का वंशज मानते हैं।

'क्योंथल की स्थापना के विषय में जनश्रुति है कि जब सिरमौर और हिण्डूर की सेनाएं यहां लूट - घसूट कर रही थी तो यहां के ठाकुरों को पता चला कि रोपड़ में एक पराक्रमी राजपूत ने किला बनाया है और वह पराक्रमी होने के साथ गुणवान भी है लोगों ने कुछ प्रतिष्ठित व्यक्तियों को उस राजकुमार के पास भेजा और राज्य की अराजकता के बारे में बताया। उन दिनों सिरमौर की सेवाएं क्योंथल में डेरा डाले बैठी थी। उनका मुखिया किले में ठहरा हुआ था। राजकुमार ने अपनी सेनासहित उन पर हमला किया और मुखिया को मार डाला। जब वह लौटने लगा तो लोगों ने उसे रोक लिया और यहां राज करने को कहा। एक राजपूत ठाकुर ने अपनी ऊंगली से खून निकालकर उसके माथे पर तिलक लगा दिया। इस बात से वह बहुत प्रभावित हुआ और रुकने को तैयार हो गया। वह राजकुमार था केशव सेन। कहते हैं इसी के नाम पर रियासत का नाम ''क्योंथल'' पड़ा। उसने जुनगा के समीप 'कोटी' नामक स्थान को अपनी राजधानी बनाया। कुछ समय के बाद सिरमौर की सेनाओं ने कोटी पर हमला किया कोटी के महल जल गये। अत: राणा ने राजधानी कोटी

से बदलकर जुनगा कर दी। जुनगा नाम यहां के स्थानीय देवता जुनगा के नाम पर पड़ा है।

1379 ई. से पूर्व का ऐतिहासिक विवरण उपलब्ध नहीं है। इसी समय दिल्ली के मुसलमान शासक फिरोजशाह तुगलक ने सबसे पहले पंजाब पर आक्रमण के समय क्योंथल और सिरमौर को अपने अधीन लाया था जो थोड़े दिन रहा।

सिरमौर के साथ संघर्ष का वर्णन ''देशू की हार'' लोक गाथा में मिलता है। इसके अनुसार क्योंथल के राजा अनूप सेन और सिरमौर के राजा महीप्रकाश की लड़ाई का वर्णन है। महीप्रकाश ने क्योंथल के राणा अनूप सेन की पुत्री से विवाह का प्रस्ताव रखा। अनूप सेन ने इन्कार किया। अतः महीप्रकाश ने क्योंथल पर आक्रमण कर दिया देशू की धार पर लड़ाई हुई। मही प्रकाश की हार हुई। बाद में उसने अपने सम्बन्धी गुलेर के राजा से सहायता मांगी और अनूप सेन को हराया।

'मदना की हार' लोक गाथा में अनूपसेन (1670 - 1692) और कहलूर के राजा भीम चन्द (1672 - 1692) के बीच 1680 ई. में लड़ाई हुई थी। क्योंथल के राणा ने इस लड़ाई में मदना नामक एक योद्धा को कहलूर भेजा। इस लड़ाई में मदना मारा गया और उसका चाचा उदू बचकर वापिस क्योंथल लौट आया था।

एक अन्य लोकगाथा के अनुसार क्योंथल का राजा एक बार अपने बजीर से किसी बात पर नाराज हो गया। उसने बजीर को निर्वासित कर दिया उस वजीर ने हिण्डूर के राजा से मिलकर क्योंथल पर आक्रमण कर दिया और महलों को आग लगा दी। परन्तु राणा बचकर भाग निकला। बाद में उसने सेना एकत्रित कर हिण्डूर की सेना को हराया और नये महलों का निर्माण किया।

क्योंथल के अधीन बलसन, भरोली और मधान की ठकुराहयां कुमार सेन के राणा रामसिंह ने छीन ली थी। अतः क्योंथल के राणा ने कुमार सेन पर आक्रमण कर अपने इलाके वापिस ले लिये। बाद में दोनों

राज्यों के बीच सन्धि हो गई और सीमा - निर्धारण हुआ।

मुसलमान खिलजी वंश के बाद शिमला के पहाड़ी राज्य कहलूर, सिरमौर और हिण्डूर के द्वारा राजकर दिया करते थे। क्योंथल एक हजार रू. वार्षिक कर देता था। इसके अतिरिक्त 650 सैनिक और इतने ही बेगारी समय पड़ने पर भेजने पड़ते थे।

गोरखों के आक्रमण के समय तक क्योंथल एक शक्तिशाली ठकुराई थी। स्टेट गजेटियर के अनुसार क्योंथल के अधीन 18 ठकुराइयां थी - कोटी, घूण्ड, मघान, महलोग, कुठाड़, कुनिहार, धामी, थरोच, सांगरी, कुमार सेन, रजाणा, खनेटी, भैली, खलासी, बागड़ी, डीगयाली और घाट।

रघुनाथ सेन : - (1801 – 1831 ई.)

1809 में गोरखों ने क्योंथल पर अधिकार कर लिया। क्योंथल का राणा। रघुनाथ सेन भाग कर सुकेत के राजा के पास शरण हेतु चला गया। कुछ दिन बाद वह वहीं मर गया। इस स्थिति के कारण क्योंथल के अधीन सभी रियासते स्वतंत्र हो गई।

राजा संसार सेन : - (1831 – 1862 ई.)

गोरखों के हराने के बाद अंग्रेजों ने क्योंथल के बालक राजा संसार सेन को गोरखा युद्ध का खर्चा देने को कहा। धन न होने के कारण राणा ने अपने 16 परगनों में से 8 परगने अंग्रेजों को भेंट कर दिये। राणा ने सोचा कि अंग्रेज यहां से चले जाएंगे तो ये फिर वापिस मिल जाएंगे। परन्तु अंग्रेज सरकार ने ये परगने बघाट क्षेत्र के कुछ परगनों के साथ पटियाला राजा के पास 2 लाख 80 हजार रुपये के नजराने पर दे दिये। क्योंथल पर कोई खिराज (कर) नहीं लगाया गया।

11 सितम्बर 1815 को सनद द्वारा सरकार ने ठियोग, घूण्ड, मघान और कोटी ठकुराइयों का प्रभुत्व राणा को प्रदान कर दिया। 1830 ई. में अंग्रेजी सरकार ने शिमला में एक सैनीटोरियम स्थापित करने के लिए

क्योंथल राज्य के 12 गांव अंग्रेजी राज्य में मिलाये। ये गांव थे-पंजार, शरहान, देवरिया, फागली, ढली, क्यार, बमलोई पगवाग, धार, कहनलग, कठियाणा, और खलीणी । इसके बदले अंग्रेजी सरकार ने क्योंठल को हाटकोटी के पास रावींगढ़ के क्षेत्र शराचली और गठासू इलाके दिये। वास्तव में 1827 ई. में गवर्नर जनरल लार्ड एमरस्ट जब शिमला आया तो ग्रीष्मऋतु बिताने के लिए उसने उसने शिमला में निवास-स्थान बनाने की योजना बनाई।

1857 ई. में कसौली जतोग और शिमला में विद्रोह भड़का। मारकाट के भय से कुछ अंग्रेज पुरुषों और महिलाओं ने शिमला नगर से भाग कर क्योंठल के राणा संसार सेन के पास जुनगा में शरण ली। राणा ने उन्हें सभी सुविधाएं उपलब्ध करवाई। परिणाम स्वरुप अंग्रेजी सरकार ने प्रसन्न होकर राणा संसार सेन को 24 जुलाई 1958 को राजा की उपाधि से सम्मानित किया और एक हजार रुपये की खिल्लत प्रदान की। 1862 ई. में संसार सेन की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र महीन्द्र सिंह ने अपने पिता के सारे ऋण चुकाये।

राजा बलवीर सेन (1882 – 1901 ई.) :

बलवीर सेन के समय रियासत की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। किसान भूमि की व्यवस्था से दुखी थे। वे राजस्व देने में असमर्थ थे। लोगों में असंतोष फैली तो सरकार ने एक मैनेजर की नियुक्ति की। 1884 ई. में बलवीर सेन ने कुसुम्पटी का क्षेत्र अंग्रेजों को 3500 रु. प्रतिवर्ष के कर के रुप में दे दिया। 1901 ई. में राणा की मृत्यु हो गई।

राजा विजय सेन (1901 – 1916 ई.) :

1901 ई. में उसका पुत्र विजय सेन गद्दी पर बैठा। 1911 ई. में उसे दिल्ली दरवार में पर्वतीय रियासतों के सम्मेलन में आमंत्रित किया गया। इसके समय भूमि-बन्दोवस्त हुआ। इसने किंग जार्ज पंचम और क्वीन मेरी के राज्यारोहण / कारोनेशन समारोह में दिल्ली में भाग लिया था।

राजा – हेमेन्द्र सेन : – (1916 – 1940 ई.)

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात 1916 ई. में हेमेन्द्र सेन गद्दी पर बैठा। प्रशासन-सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद 1926 ई. में सरकार ने उसे राज्य के पूर्ण-अधिकार प्रदान किये। उसने अपने कार्यकाल में कई सुधार किये। उसने रियासत में बेगार प्रथा को बंद किया और कमजोर वर्गों में दास प्रथा का उन्मूलन किया। पुलिस को आधुनिक बनाया। अनेक भवन बनाये और टैलीफोन की सुविधा उपलब्ध कराई। उसने शिक्षा के लिए लोगों को प्रेरित किया।

राजा हितेन्द्र सेन :

1940 ई. में हितेन्द्र सेन राजा बना। वह रियासत का अन्तिम शासक था। कुछ समय बाद ही 15 अप्रैल, 1948 को अन्य पर्वतीय राज्यों की तरह क्योंथल को भी हिमाचल प्रदेश के 'महासू' जिल्ले में सम्मिलित किया गया। इसके क्षेत्र को पुन: कुसुम्पटी – ठियोग और जुब्बल तहसीलों के साथ मिला दिया गया। राजा हितेन्द्र सेन की मृत्यु 2002 में हुई।

कुनिहार – रियासत

कुनिहार, अर्थात छोटी – छोटी पहाड़ियों से घिरी वादी, जिसका अधिकांश क्षेत्र कश्मीर घाटी की तरह समतल! किसी ने इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण इसे ''छोटी बिलायत'' का नाम दिया तो अतिशयोक्ति की बात नहीं। अपनी भौगोलिक स्थिति और उपजाऊ भूमि के कारण यह रियासत धन – धान्य से पूर्ण थी। कलेवर में यह केवल 12 वीं शती में 12 कोस थी जो उन्नीसवी शती तक आते – आते 8 वर्गमील रह गई। अंग्रेजों के पॉलिटिकल डिपार्टमैण्ट (नेटिव स्टेट्स 6 जनवरी 1925) के अनुसार 1901 – 02 में यह रियासत 8 वर्ग मील (7.64 वर्ग मील) थी जिसमें 2.25 वर्गमील कृषि योग भूमि थी। इसके बीच से रौ (राव) खड्ड गुजरती थी।

शिमला से लगभग 28 कि. मी. की दूरी पर स्थित कुनिहार की सीमाएं उत्तर – पश्चिम में बाघल, दक्षिण – पूर्व में पटियाला रियासतों से मिलती थी। कुनिहार घाटी धार खजरो तथा धार घनेरी जो क्रमश 4000 फुट तथा 4500 फुट ऊँचाई लिए हुए है – से घिरी हुई है। पीली और काली मिट्टी का यह क्षेत्र उपजाऊ होने के साथ बणी जंगल और धार जंगल में छोटी – छोटी झाड़ियों से भरा है।

'कुणी खड्ड' इसे बाघल से अलग करती है। यह सीमा रेखा मानी जा सकती है, पश्चिम की तरफ इसकी गंभर नदी सीमा रेखा बनाती है कुणी नदी जुब्बड़ हट्टी से कुनिहार में गंभर में प्रवेश करती है। राजवंश के अनुसार 18 वर्ग कि. मी. में फैली इस रियासत की जनसंख्या 1901 में 2168 थी तथा राजा का राजभत्ता 4200 रूपये वार्षिक था।

कुनिहार के सबसे महत्वपूर्ण स्थल है कुनिहार – ताल। इसके क्षेत्र में राजवंश की कुलजा, दानो देव, शिवजी आदि के ऐतिहासिक मन्दिर है तथा यहां पारंपरिक पूजा – अनुष्ठान तथा मेले आयोजित होते हैं।

'कुनिहार' का अर्थ है 'कुणी' खड्ड का 'हार' यानी 'माला'। 'हार' स्थानीय भाषा में उपजाऊ खेतों के समूह को कहते हैं। सचमुच कुणी नदी के हार के रूप में कुनिहार का अस्तित्व है। कुणी खड्ड के

नाम से भौगोलिक आधार पर इसका नाम 'कुनिहार' पड़ा है। कुणी के अतिरिक्त 'रौ' खड्ड (जिसका नाम 'राव' के आधार पर) कुनिहार को दो भागों में विभक्त करती थी। इसके किनारे इसकी प्राचीन राजधानी निर्मित हुई थी।

कुनिहार का संस्थापक

रियासत का संस्थापक राव अभुज देव अथवा अभोज देव था जो जम्मू के अखनूर क्षेत्र से यहां आया था। जनश्रुतियों के अनुसार वह जलवायु-परिवर्तन के लिए यहां आया था। अभुज देव योद्धा था तथा अखनूर से बाहर वह किसी शासक के पास संभवत: नौकरी करना चाहता था। मध्यकाल (बारहवीं शती) की यह सच्चाई है कि बड़े-बड़े राजवंशों के राजकुमार अथवा योद्धा दूसरे राज्यों में वीरता के कारनामें करते थे, जिससे उन्हें जागीरें मिला करती थी। इस प्रकार के योद्धाओं के किस्से मध्यकालीन राजपूत वीरों के इतिहास में सर्वत्र मिलते हैं। अभुज देव भी संभवत: मुगल-आक्रमण कारियों से त्रस्त इस इलाके में आया। वंशावली के अनुसार अभोज देव (1154 ई.) सूर्य वंशी जम्मू के राजा सूरज देव का वंशज था। वह कुछ साहसी व्यक्तियों को लेकर जम्मू से निकला । उसे पता चला था कि कुनिहार रियासत में अराजकता फैली हुई है। इस क्षेत्र में कौल ब्राह्मणों का अधिकार था। छोटे से संघर्ष के बाद कौल ब्राह्मण ने अधीनता स्वीकार की। स्थानीय लोगों ने इसमें उसकी मदद की। इस प्रकार राव अभोज देव कुनिहार का शासक बना। ऐतिहासिक दृष्टि से सारे क्षेत्र में मावी-ब्राह्मण निरंकुश शासक थे। संभवत: यहां भी कोई मावी-ब्राह्मण शासक रहा हो। विवरण के अनुसार जब अभोज देव अख्नूर से चला तो उसे पता चला कि कहलूर में विद्रोह उठ खड़ा हुआ है अत: उसने कुनिहार की तरफ रूख किया। रायकोट के बाद इसका सामना कुछ सैनिकों से हुआ जिन्हें क्योंथल के सैनिक कहा गया है किन्तु इतिहासकारों के अनुसार ये सैनिक स्थानीय मावी रहे होंगे। उन्हे परास्त कर अभोज देव ने कुनिहार के अगले भाग 'पोआबो' में राजधानी बनाई। यह स्थान वर्तमान कुनिहार से 12 कि. मी. दूर है। अभोज देव के वंशजों ने 1210 विक्रमी से 1656 वि. तक 446 वर्ष राज किया।

राव केशव (केशो)

प्रारम्भ में यहां के शासक 'राव' उपनाम का (1600 ई.) प्रयोग करते थे जो जम्मू अखनूर से ये परम्परागत रुप से प्रयोग करते थे, किन्तु राजाओं की 22 वी पीढी में राणा राम सिंह ने अपने समकालीनों की तरह नाम के साथ 'सिंह' लगाना शुरु किया। इसका कारण पंजाब के सिक्ख - परम्परा के गुरु गोविन्द सिंह और उसके शिष्यों का प्रभाव था। इस काल में पहाड़ी रियासतों में अधिकांश शासकों के नाम सिंह मिलते है। सिंह वैसे भी बहादुरी का प्रतीक माना जाता है।

18 वीं पीढ़ी तक कुनिहार राज्य के शासकों का परिचय एवं कारनामें उपलब्ध नहीं हैं। इसी पीढ़ी में केशव देव जिसे उर्दू के प्रभाव से इतिहास कार 'केशो देव' लिखते हैं - ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कहते हैं यह शासक आलसी एवं विलासी था। उसकी कमजोरी का लाभ उठाकर क्योंथल रियासत और बाघल रियासतों के शासकों ने आक्रमण कर यहां के दो परगने जीत कर अपने कब्जे में कर लिए। कुणी खड्ड के वार का 'पोबर' परगना अर्की तथा पोआबो के साथ का क्षेत्र क्योंथल के राज्य में चला गया। इसके बाद कुनिहार और बाघल की शत्रुता हो गई। केशव देव ने 'पोआवो' को छोड़कर अब राजधानी 'काहणी' गांव में बनाई जो 'राव' खड्ड के किनारे स्थित थी।

राव आनंद देव (1763 ई. - 1795)

24 वीं पीढ़ी में अनन्त देव, जिसे दस्तावेजों में आनन्द देव भी लिखा गया है- एक बहादुर योद्धा था। उसके लड़ाई के किस्से जनश्रुतियों में वर्तमान हैं। राव केशव देव को मजबूरी में हण्डूर और कहलूर के राजाओं की कुल्लू पर आक्रमण करने में मदद करनी पड़ी थी, फलस्वरुप इन रियासतों से उसके अच्छे सम्बन्ध थे। किन्तु अनन्त देव के समय ऐसे हालात नहीं रहे।

इस शासक के बाघल से सम्बन्ध बिगड़ने की एक महत्वपूर्ण घटना 1794 ई. में घटित हुई थी। राणा जगत सिंह बाघल

(1778 – 1828) के समय कुनिहार के राणा के साथ लड़ाई का विवरण मिलता है। अनंत देव बहादुर और कठोर–स्वभाव का शासक था। कुनिहार इलाका मैदानी क्षेत्रों में जाने के लिए एक पड़ाव था। अनन्त देव ने पटियाला, हण्डूर, बाघल के राहगीरों से पथ–कर लेना शुरू किया, जिसके विरोध में इन रियासतों के लोगों ने विरोध किया। राजा ने उनकी मांगों को मानने से इन्कार कर दिया, परिणाम स्वरुप बाघल के राजा भूपचंद और हण्डूर के राजा ने कुनिहार पर संयुक्त रुप से हमला कर दिया। कुनिहार में उनके मुकाबले बहुत कम सैनिक थे। पराजय देखकर अनन्त देव ने संधि करनी चाही, परन्तु इन्हें पकड़कर प्रातः ही एक मुसलमान सैनिक ने इनकी हत्या कर दी। इस 80 वर्षीय वृद्ध को मारने पर प्रजा में हण्डूर और बाघल के प्रति घृणा पैदा हो गई जो स्वतन्त्रता–प्राप्ति तक रही। इस लड़ाई में कुनिहार का कुछ क्षेत्र अर्की में मिला दिया गया और कुछ हण्डूर में मिलाया गया। लोक प्रियता के कारण अनन्त देव का मन्दिर हाटकोट मे निर्मित किया गया।

एक जनश्रुति के अनुसार उक्त लड़ाई में आनन्द देव (अनंत देव) जब शौचादि के लिए बाहर गये थे, तो झाड़ियों में छिपे बाघल के सैनिकों ने उन पर भाले से वार किया। यह भाला उनके पेट पर लगा। उन्होंने सैनिकों का मुकाबला उसी भाले से किया। बाघल की ओर से जिस मुसलमान सैनिक ने उन पर हमला किया था, उसे मार डाला । लेकिन अधिक जख्मों के कारण वे भी वीरगति को प्राप्त हुए।

अनन्त देव के पश्चात 'राव' के स्थान पर राजाओं ने 'ठाकुर' की उपाधि का प्रयोग करना शुरू किया। अनंत देव की वीरता के किस्से मशहूर हैं– एक बार उसने कहलूर की ओर से कांगड़ा के विरुद्ध नादौन में लड़ाई में भाग लिया था तथा अफगान सरदार आगर खान से सीधी लड़ाई की थी तथा उसका वध कर दिया था। उसकी तलवार को भी साथ ले आया था, जो आज भी उसके वंशजों के पास है। उस पर फारसी में लिखा है– "नशारमन अल्लाह फतह, कदयव तुकलत अल्लिया अल्लाह।" यह युद्ध 1783 ई. में हुआ था। उस समय बालक महान चन्द की राज माता नागरी देवी ने स्वयं कहलूर की सेना का नेतृत्व करते हुए

कांगडा के राजा संसार चन्द से युद्ध किया था। आनन्द देव के लिए उक्ति है - वह लड़ाई के लिए जीया और लड़ाई के लिए मरा।''

मगन देव (1795 – 1816)

ठाकुर मगन देव के समय गोरखों के आक्रमण के कारण रियासत को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसे हटाकर एक छोटी जागीर दी गई। युद्ध में मगन देव ने अंग्रेजों की सहायता की थी, अतः सरकार ने उन्हें 4 सितम्बर, 1815 को एक सनद और कुनिहार की ठकुराई पीढ़ी दर पीढ़ी वापिस लौटा दी। सनद में इन्हें ठाकुर की उपाधि से पहचान दी गई।

इसके बाद वंशावली के अनुसार ठाकुर पूर्ण देव (1816 - 1837) ठाकुर किशन सिंह (1837 - 1855), राणा तेग सिंह (1866 - 1905), ने रियासत में राज किया। ठाकुर किशन सिंह ने 1857 ई. के संग्राम में अंग्रेजी का साथ दिया। तेग सिंह एक कुशल प्रशासन था। उसने सारा काम - काज लिखित रुप से प्रारंम्भ किया।

हरदेव सिंह

तेग सिंह की मृत्यु के समय उसके दोनो पुत्र नाबालिग थे - हरदेव सिंह और कंवर गोपाल सिंह। प्रशासन का उत्तर दायित्व 'कोर्ट ऑफ वार्डस' को प्रदान किया गया। रियासत का काम चलाने के लिए लक्ष्मीधर को बजीर नियुक्त किया गया। अंग्रेज सरकार ने हरदेव सिंह को 21 फरवरी, 1916 को पहली बार कुनिहार रियासत का मैनेजर बनाकर गद्दी प्रदान की। बाद में 10 अगस्त 1917 को उसका कार्य देखकर उसे राज्य के पूरे अधिकार दिए गये। हरदेव को 'राणा' की उपाधि प्रदान की गई।

हरदेव सिंह योग्य प्रशासक सिद्ध हुआ। उसने अनेक निर्माण कार्य करवाये तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति में प्रजामण्डल के लोगों का सहयोग दिया। इन सम्मेलनों की अध्यक्षता भी की। 1963 में 66 वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हो गई। यह रियासत 15 अप्रैल, 1948 को हिमाचल प्रदेश की अर्की तहसील में विलीन हो गई।

महलोग (चण्डी) – रियासत

शिमला की पहाड़ी रियासतों की 12 ठकुराइयों के अन्तर्गत स्वतन्त्रता पूर्व महलोग रियासत 43 वर्गमील क्षेत्रफल में फैली थी। यह नालागढ़ और कुठाड़ रियासत के मध्य में स्थित थी। इसके उत्तर में हण्डूर, पूर्व में कोट–बेजा एवं कुठाड़ और दक्षिण में हरियाणा की सीमाएं हैं। 1940 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 1831 और क्षेत्रफल 49 वर्ग मील है। इसकी प्रारम्भिक राजधानी 'पट्टा' में थी। कहते हैं यहां बांसों का घना जंगल होने के कारण जब राजधानी बनाने का कार्य शुरु हुआ तो इस क्षेत्र के बांसों को काट कर पाट दिया गया जिसके कारण इसे 'पट्टा' कहा गया है। कुछ लोगों का कहना है कि अंग्रेजों द्वारा यहां का 'पट्टा' राजा के नाम लिखने के कारण इस स्थान का नाम 'पट्टा' पड़ा। मावी लोगों के यहां रहने के कारण रियासत का नाम 'महलोग' पड़ा । महलोग का प्रशासन प्रारम्भिक राजाओं द्वारा चार परगनों घड़श्यांग, घड़याड़, दून और घरनाली थे। इन परगनों को 55 नम्बरदारियों में बांटा हुआ था। इस रियासत में 789 वर्षों में 64 शासकों ने राज किया।

महलोग के इतिहास के विषय में जनश्रुतियों का आधार लेना पड़ता है। इसका प्रारम्भिक शासक अयोध्या से यहाँ आया था। वीरचंद नाम का यह पूर्वज कैलाश–मानसरोवर यात्रा के लिए यहां आया। तीर्थ यात्रा से लौट कर यह सहारनपुर के पास बस गया तथा वहां का शासक बन गया। उस समय कालका और पंजौर के बीच मावी शासकों का निरंकुश शासन था। मावी पंजाब के बीहड़ इलाकों से आये लड़ाकू जाति के लोग थे जिन्होंने पहाड़ों में स्थान–स्थान पर छोटे–छोटे राज्य स्थापित कर लिए थे। वीरचन्द ने स्थानीय लोगों तथा पासवर्ती ठाकुरों की मदद से मावियों पर विजय पाई तथा 'महलोग' राज्य की नींव डाली। प्रारम्भ में इसका नाम 'भवाना' था। वीरचन्द के बाद जनश्रुतियों में प्रारंभिक शासकों में कन्दोसी चन्द का अपभ्रंश नाम मिलता है जिसने मवाना की सीमाओं का विस्तार किया था। वंशावली में महत्व के ठाकुरों में 7वीं

पीढ़ी के उत्तमचंद का उल्लेख महत्वपूर्ण है। उस पर 1612 ई. में सिरमौर के राजा ने आक्रमण किया और ठकुराई को अपने अधिकार में कर लिया। वह भागकर अपने ससुर क्योंथल के ठाकुर के पास चला गया। कुछ समय पश्चात क्योंथल के ठाकुर अपने ससुर की सहायता से शत्रुओं को भगाकर पुन: राज्य वापिस ले लिया। उस समय मुगल बादशाह जहांगीर ने जो पहाड़ी रियासतों से कर बसूल करता था, ने पिंजौर में कई इमारते बनवाई। उत्तम चन्द ने भवाना को छोड़कर 'महलोग' अपनी राजधानी बनाई। यह ठकुराई क्योंथल रियासत के अधीन रही, परन्तु मुगलों को राजकर कहलूर के द्वारा दिया जाता था। उत्तम चन्द ने पास के 12 परगनों को जीतकर 'महलोग' की स्थापना की तथा 'कोटी घढ़सी' को अपनी राजधानी बनाया। कहते हैं मावी - बाहुल्य क्षेत्र होने के कारण यहां का नाम महलोग पड़ा।

रियासत के मैजिस्ट्रेट वृजबिहारी लाल मेहता के अनुसार ये ठाकुर इक्ष्वाकु वंश से सम्बन्ध रखते थे। यहां के स्थानीय मावियों को हराकर यहां बसे थे। मुहम्मद गौरी के समय भवाना में इस वंश का सरल पाल नाम का ठाकुर राज करता था। मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारा गया था। इसके पोते जगत सिंह ने इसे पुन: प्राप्त किया तथा 1183 ई. में राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य को नैड़ खड्ड से यमुना नदी तक बढ़ाया। राजधानी 'भवाना' पिंजौर में ही रखी। इसकी 35 पीढ़ियों ने भवाना (मुआणा) से ही राज किया। 1612 में ठाकुर सुखपाल के राजकाज में अधिक रूचि लेने के कारण उसके मामा सिरमौर के शासक प्रदीप प्रकाश ने इससे राज्य छीन लिया, फलस्वरुप सुखपाल भाग कर महलोग आ गया।

सुखपाल के बेटे गर्वदेव की शादी क्योंथल की राजकुमारी के साथ हुई जिसके दहेज में उसे दो परगने खड़याड़ और घड़स्यांग मिले थे। उसके उत्तराधिकारियों ने अपने पुराने क्षेत्र नाली और दून परगनों को भी साथ मिलाया सुखपाल ने घड़सी को अपनी राजधानी बनाया था किन्तु नाली और दून इलाके मे लोगों ने इसका विरोध किया कि यहां लकड़ी घास की कमी है। इसलिए पट्टा जो रोपड़ - सपाटू शिमला मार्ग पर था,

उसे राजधानी बनाया गया। रियासत का नाम भी पट्टा महलोग पड़ा। बाद के शासकों ने चण्डी को ग्रीष्मकालीन राजधानी बनाया।

महलोग बन्दोबस्त रिपोर्ट के अनुसार गर्वदेव चन्द के बाद 14 वें शासक का नाम नाहर चन्द मिलता है तथा उसका पड़ पौत्र पृथी चन्द लिखा है, जबकि रियासत की वंशावली में पृथी चन्द का नाम नाहर चन्द से छः पीढ़ी पहले मिलता है। पृथी चन्द के समय उसके दादा का भाई खुशाला रियासत का वजीर था। पृथ्वी चन्द के कोई संतान नहीं थी इसलिए उसने अपने निकट सम्बन्धी वजीर खुशाला से गुप्त रख कर अपना दूसरा विवाह करने की बात सोची। खुशाला को यह अच्छा नहीं लगा। वह राज्य का हकदार स्वयं बनना चाहता था। अतः उसने षड़यन्त्र द्वारा देवीसरन ब्राह्मण से मिलकर 1780 ई. में पृथी चन्द को विष देकर मार दिया और कहलूर के राजा की सहायता से राजगद्दी पर अधिकार कर लिया तथा कहलूर का आधिपत्य स्वीकार किया। खुशाल चन्द की 1783 ई. में मृत्यु हो गई।

संसार चंद (1783 – 1849) :

1805 ई. में गोरखा – आक्रमण के समय महलोग भी पराधीन हो गया। ठाकुर संसार चंद भाग कर हिण्डूर के राजा राम सरन सिंह के शरण में चला गया जहां बाघल का राणा जगत सिंह भी शरण लिए था गोरखों ने महलोग से 10 वर्षों तक रुपये 3000 वार्षिक कर वसूल किया। 1815 ई में अन्य रियासतों की तरह अंग्रेजों ने मलावण किले में गोरखों को परास्त किया तो महलोग भी अंग्रेजों के अधीन आ गया। साथ देने के कारण अंग्रेजों ने वादे के अनुसार राजाओं, राणाओं ठाकुरों को राज्य लौटा दिये।

अंग्रेज सरकार ने महलोग को 4 सितम्बर, 1815 को महलोग की ठकुराई संसार चंद को पुश्त दर पुश्त लौटाई तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार को 40 बेगारी तथा वार्षिक नजराना देने की शर्त लगाई। 1815 ई. में राज्य की कुल आय रुपये 8000 थी। संसार चंद ने अपने छोटे भाई चमना को बजीर बनाया तथा प्रत्येक परगने में एक – एक मेहता और एक – एक प्यादा कायम किये। ये त्रैमासिक रिपोर्ट ठाकुर को भेजते थे।

दिलीप चंद (1849 – 1880) :

इसने मेहता की शक्तियों को कम किया ताकि वे बगावत न कर सके। हिसाब – किताब को बहियां खोली। 1857 के संग्राम में इसने अंग्रेजों का साथ दिया।

रघुनाथ चन्द (1880 – 1902) :

इसने अपने चाचा गणेशु को वजीर बनाया। इसके कुशल प्रशासन से प्रारम्भ होकर अंग्रेज सरकार ने 1898 में रघुनाथ चंद को राणा की उपाधि से सम्मानित किया। उसने पट्टा में कई भवन बनाये। अस्पताल बनवाया तथा पुलिस विभाग को सुद्रीड़ किया। इसकी अल्पायु में मौत हुई।

दुर्गा चंद :

पिता की मृत्यु के समय दुर्गाचंद की आयु एक वर्ष थी अत: राज्य का कार्य राजमाता ने चार सदस्यीय परिषद को सौंपा। ये सदस्य थे। बक्शी मंशाराम, मौजी राम, बलीराम और मस्त राम कुछ समय बाद बक्शी मंशाराम से राज माता के मत भेद हो गये तथा उसे कैद करना पड़ा। इससे प्रजा में असंतोष फैला। परिणामत: शिमला हिल स्टेटस के सुपरिंटैण्डैण्ट ने हस्तक्षेप करके मनशा राम को कैद से मुक्त करवाया लेकिन कंवर भवानी सिंह को महलोग राज्य का प्रबन्धक नियुक्त करना पड़ा। उसने 1909 में जमीन का कानूनी बन्दोबस्त करवाया तथा दो नये स्कूल खोले। 1920 में सरकार ने दुर्गाचंद को पूरे अधिकार दे दिये।

नरेन्द्र चंद (1934) :

इसे अंग्रेज सरकार (सुपरिन्टैण्डैंट) ने 3 मई, 1936 को गद्दी पर बिठाया तथा बाल्यावस्था होने के कारण प्रशासन चलाने के लिए अमीचन्द को प्रबन्धक नियुक्त किया। 15 अप्रैल, 1948 को महलोग हिमाचल प्रदेश में समाहित हो गई।

कुठाड़ – रियासत

भौगोलिक स्थिति :

सुबाठु के दक्षिण में गम्भर नदी के पार प्राचीन कुठाड़ रियासत वर्तमान थी। यह रियासत कुठाड़ नदी की घाटी में स्थित है अत: इसे कुठाड़ क्षेत्र के नाम से जाना गया। संभवत: कुठाड़ नदी के ऊबड़ – खाबड़ इलाके से गुजरने के कारण इसे कुठाड़ नाम दिया गया है। कुठाड़ नदी किशनगढ़ से सुबाठु के समीप गम्भर नदी में मिलती है। इसकी सीमाएं पूर्व – उत्तर में पटियाला रियासत भड़ोली, दक्षिण में बेजा और पश्चिम में महलोग रियासतें रियासतों से स्पर्श करती थी।

कुठाड़ की जनसंख्या 1901 की जनगणना के अनुसार 4195 तथा क्षेत्रफल 528 वर्ग कि. मी. अथवा लगभग 19 वर्गमील था। स्वतंत्रता के पश्चात राजा को राजभत्ता 9000 रु. मिलता था। कुठाड़ रियासत 5 परगनों में विभक्त थी। ये थे रिहानी, धार, शील्ह, धरुथ, फेटा। गांव का मुखिया नम्बरदार था जो कर बगैरा उगाहता था।

रियासत की नींव :

शिमला हिल्स गजेटियर के अनुसार सूरत चन्द नामक राजपूत किश्त वार (कश्मीर) से यहां आया था। 13 वीं शती में उत्तरी भारत तथा कश्मीर रजौरी पर मुगलों के आक्रमणों से भयभीत इन क्षेत्रों में सैनिक साज – बाज के साथ इस प्रकार के राजपूत शासकों के यहां शान्त क्षेत्रों में बसने व आत्मरक्षा करने की परंपरा थी। यहां बिना बड़े अवरोध के स्थानीय लोगों के सहयोग से मावी शासक को भगाकर सूरत चन्द शासक बना।

राजकीय दस्तावेजों के अभाव में जनश्रुतियों के आधार पर इतिहास को सुरक्षित रखा गया है। जनश्रुति कहती है कि सूरत चन्द जब किश्तवाड़ से भागकर यहां आया तो यहां के निरंकुश मावी के पास नौकरी करने लगा। एक दिन वह निराश एक पेड़ के नीचे कहां बैठा था तो लोगों

ने उसके व्यक्तित्व को देखकर पूछा कि वह कौन है? उसने उत्तर दिया कि वह राजवंश से है तथा परेशानी में भटक रहा है और मावी के पास नौकरी करने को मजबूर है। लेकिन यदि स्थानीय लोग उसका साथ दें तो वह मावी को यहां से भगा सकता है। ऐसा ही हुआ। उसने लोगों की सहायता से मावी को वहां से भगा दिया और राजा बन बैठा

लोक विश्वास के अनुसार रिहानी परगने के पूर्वज दिल्ली से आये थे। उन्होने रिहानी दुर्ग के मावी को परास्त कर भगाया। धार परगने को मावी को बुशहर रियासत के बदोही कनैतों ने हराकर भगाया। कांगड़ा के चांगरी कनैतों ने धरुथ और फेटा परगनों को मुक्त करवाया था।

केवल फेटा परगने के छोटे भाग पर मावी का अंकुश रह गया था। जिसे सरा गांव कहते थे। वहां से मावी को भगाने के बाद 5 परगनों के सरपंचों ने सूरत चंद को राजा बना दिया। सूरत चंद से लेकर आज तक कुठाड़ ठकुराई के 48 शासक हुए। गोरखा आक्रमण 1805 से पूर्व कुठाड़ का विवरण इतिहास में उपलब्ध नहीं है। इतिहास कारों का मानना है कि यह ठकुराई सदैव हिण्डूर रियासत या कहलूर रियासत के अधीन रही। ये इस रियासत से उचित कर लेते थे। बदले में रियासत की रक्षा एवं कानून - व्यवस्था में सहयोग करते थे। गोरखा आक्रमण के समय कुठाड़ क्योंथल रियासत का राज्य था इस रियासत के महत्व के शासक थे।

गोपाल चन्द (1791 – 1803 , 1815 – 1824) :

इसके समय में गोरखों ने यहां लूटपाट की। गोरखों के अत्याचारों के किस्से एक समान कुठाड़, बाघल, बेजा, बघाट प्रत्येक क्षेत्रों में सुने जाते हैं। गोपाल चंद को गोरखों के भय से मनीमाजरा (पिंजौर) में शरण लेनी पड़ी थी। मनीमाजरा उन दिनों अम्बाला जिला में था। गोरखे कुठाड़ से 3000 रुपये वार्षिक कर लेते थे जिससे यह ठकुराई आर्थिक रुप से कमजोर हुई। गोरखा - युद्ध की समाप्ति पर जब यह अपने राज्य लौट रहा था तो मार्ग में ही इसकी मृत्यु हो गई।

राणा भूप चन्द (1824 – 1858) :

अपने पिता की मृत्यु के बाद भूप चन्द राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया गया। भूप चंद को अंग्रेजी सरकार ने 3 सितम्बर 1815 को सनद भेंट की तथा अन्य राजाओं की तरह अंग्रेजी शासन को समय – समय पर सहयोग देने की शर्तें लगाईं। 1857 ई. के विद्रोह में यह ठकुराई अप्रभावित रही। 1858 में राणा भूपचंद की मृत्यु हो गई। इस शासक ने राजस्व निश्चित किया और आमदनी 8000 रुपये वार्षिक तक पहुंचाई।

राणा जयचन्द (1858) :

1858 में राणा जयचन्द 18 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। उसने अपने चाचा बहादुर सिंह को बजीर बनाया । उसने कुशलता से शासन चलाया। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद जयचंद खर्चीला और विलासी हो गया। अंग्रेज सरकार ने बुरे हालात से निपटने के लिए कोटखाई के मिंया दुर्गा सिंह को नया वजीर बनाया। उसी समय राणा की मृत्यु हो गई।

राणा जगजीत चंद (1896 – 1930) :

अपने पिता की मृत्यु के समय जगजीत सिंह 10 वर्ष का था अत: प्रशासन का कार्य दुर्गासिंह के कन्धे पर था, लेकिन रियासत की आर्थिक स्थिति सुधर नहीं सकी। 1908 में राणा जगजीत सिंह को राज्याधिकार दिए गये। 1930 में राणा गंभीर रुप से बीमार हुआ जिससे उसकी मृत्यु हो गई। अत: राणा कृष्ण चन्द को गद्दी सौंपी गई।

कृष्ण चंद (1930 – 1956) :

कृष्ण चंद ने अपने पिता की मृत्यु की स्मृति में कुठाड़ में नये नगर की स्थापना की तथा उसका नाम जगजीत नगर रखा। 1948 को यह रियासत हिमाचल प्रदेश में विलीन हो गई । आज यह सोलन जिले की उप – तहसील हैं। राणा अरुण चंद ने कुठाड़ किले का पुनर्निमाण किया तथा इस क्षेत्र को सैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र बनाया । कुठाड़ का किला ऐतिहासिक दृष्टि से अतुलनीय है । यह वास्तुकला का नमूना ही नहीं उपयुक्त पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित है।

बेजा – रियासत

'शिमला हिल्स' की 12 ठकुराइयों में बेजा रियासत 4 वर्गमील में फैली सबसे छोटी रियासत थी। परम्पराओं के अनुसार समीपवर्ती रियासतों की तरह इसकी स्थापना यहां के स्थानीय निरंकुश शासक 'मावी' को हराकर ठाकुर ढोल पाल के वंशज ने की थी जो राजपूतों की तनवर शाखा का था। यह शासक कुछ लोगों के साथ यहां आया था। लगता है अन्य रियासतों के शासकों की तरह इस ठाकुर को भी यहां कब्जा करने में किसी शासक का सहयोग मिला था। इसे दिल्ली के पास से आया कहा जाता है किन्तु मध्यकाल के इतिहास के अनुसार परमार वंश की शाखा 'तनवर' भी उज्जैन से हिमालयी क्षेत्रों में मुगल आक्रमणों के कारण यहां आये थे। परमार वंश के एक योद्धा गर्व चंद ने उज्जैन से आकर यहां जागीर प्राप्त की थी। मध्यकाल में (1365 ई.) बाघल का शासक राणा अजय देव परमार भी मुगलों के आक्रमणों से त्रस्त सैनिकों सहित यहां आया था। उसी श्रृंखला में गर्व चंद तनवर यहां आया हो, यह स्वाभाविक लगता है। वैसे भी बाघल रियासत के सम्बन्ध कुनिहार को छोड़ कर इन समीपवती रियासतों से सुखद थे। इसका कारण इन स्थानों की संस्कृति – भाषा में ढूंढ़ा जा सकता है। बघाट का शासक भी इसी समय यहां आया था।

बेजा रियासत कुठाड़ के दक्षिण, तथा पट्टा महलोग के पश्चिम में थी। कसौली की उत्तरी ढलान पर यह रियासत घने जंगलों से आच्छादित थी। इसकी सीमाएं दक्षिण – पूर्व में पटियाला रियासत से मिलती थी। बेजा भी समीप वर्ती रियासतों की तरह परगनों में विभाजित था । ये परगने थे – धारटी, बल्ली, गिरदन वार, फेटा। इनका प्रशासन एक जेलदार और चार नंबरदार चलाते थे।

नामकरण :

रियासत को 'कोट – बेजा' के नाम से जाना जाता है। बेजा के स्थान पर किला बनाने के कारण इसे कोट बेजा कहा गया। बेजा

प्रारंभ में बहुत बड़ी रियासत थी जो कसौली के आगे पिंजौर तक फैली थी तथा यहां का शासन भोच से चलता था। वर्तमान बेजा बेमौका जगह थी यानी था बिना मतलब की जगह। अतः सुरक्षा की दृष्टि से ठाकुर ने यहां किला बनवाया होगा। लोक मान्यता के कारण यहां अदरक का बीज होने के कारण इसे बेजा कहा गया है, किन्तु यह तर्क युक्त नहीं लगता है।

बेजा वंशावली के अनुसार राजवंश में गर्व चन्द, पाली चन्द, विशन चन्द, तेग चन्द के नाम मिलते हैं। इसके पश्चात् तेइस्वीं पीढ़ी के पश्चात के शासक इस प्रकार है - जय चन्द (मृत्यु 1773), मान चन्द (मृत्यु 1817), प्रताप चन्द (मुत्यु 1841), उदय चन्द (1841-1905), पूर्ण चन्द (1905-1943), लक्ष्मी चन्द (1943-1949)।

इतिहास

1901 की जनगणना के अनुसार 45 गांवों में फैला कोट-बेजा 5 वर्गमील (13 कि. मी. वर्ग) था। इसकी जनसंख्या 1131 थी। ठाकुर को 3000 रु. प्रिवीपर्स मिलता था। गजेटियर के अनुसार बेजा का पहला ठाकुर ढोल पाल था तथा प्रथम शासक ठाकुर गोवर्द्धन सिंह था तथा इसकी स्थापना 14 वीं शताब्दी में हुयी थी।

प्रमुख शासकों की वंशावली इस प्रकार है।

ठाकुर जय चन्द - 1759-1773 ई.

ठाकुर मान चन्द - 1773-1817 ई. इसने 4 सितम्बर 1815 को अंग्रेजों से राज्य की सनद प्राप्त की। उस समय अंग्रेजों ने गोरखों को यहां से भगा दिया था।

ठाकुर प्रताप चन्द 1817-1841, ठाकुर उद्य चन्द 184-1905, ठाकुर पूर्ण चन्द 1905-1943, ठाकुर लक्ष्मी चन्द 1943-1949 वर्तमान विजय चन्द।

गोरखा-आक्रमण के समय बेजा की रिकार्ड तहस-नहस हो

गया था। अत: परम्परा एवं जनश्रुतियों से इतिहास संकलन करना पड़ा। शिमला गजेटियर के अनुसार यहां का इतिहास ढोल पाल की 37वीं पीढ़ी के ठाकुर शमशेर चन्द से मिलता है जो एक योद्धा था। 12 वीं शती में वह दिल्ली से हरिद्वार के कनखल में आया और दो पीढ़ियों तक वहां रहा। ऐसा लगता है कि साधनहीन परमार वंश का यह सगा सम्बन्धी परिवार सहित हरिद्वार में रहने को मजबूर हुआ होगा, जैसा मध्य भारत से प्राय: पलायन करने वाले शासक धार्मिक स्थानों – ज्वालाजी, हरिद्वार, बद्री नाथ आदि स्थानों पर शरण लेते रहे हैं। शमशेर चंद के पौत्र राम चन्द ने कनखल से उतरी भाग में सिरमौर राज्य में प्रवेश करना चाहा, किन्तु सफल न हुआ । उसने सिरमौर के समीप मंजना पहाड़ी पर अपना महल रुपी निवास बनाया। वहां उसने कई मन्दिर भी बनाए।

गर्व चंद :

रामचन्द्र की मृत्यु के बाद गर्वचन्द ने बघाट के भोच क्षेत्र पर हमला किया तथा वहां के स्थानीय शासक को पराजित कर अधिकार कर लिया। इस क्षेत्र में उस समय पिंजौर तहसील ओर बेजा ठकुराई शामिल थे। वास्तव में यही शासक बेजा रियासत का संस्थापक माना जा सकता है। बाद में पिंजौर तहसील इनके कब्जे से छूट गई तथा जंगली क्षेत्र बेजा इनके कब्जे में आया। गर्वचन्द के बाद उसके पुत्र पाली चन्द ने इस क्षेत्र को अपने अधिकार में रखा।

ठाकुर विशन चन्द :

विशन चन्द एक निरंकुश और कठोर शासक था। इसके कहीं बाहर जाने पर प्रजा में विद्रोह हो गया तथा पिंजौर का क्षेत्र इससे छूट गया। केवल बेजा क्षेत्र इसके पास रहा। बेजा कई वर्षों तक कहलूर का करद् राज्य अर्थात कर देने वाला राज्य रहा। यह स्थिति 1790 ई. तक रही । जब हिण्डूर राजा ने कहलूर पर आक्रमण किया तो बेजा ने कहलूर के आधिपत्य से छुटकारा पाया।

मान चन्द (1773 – 1817) :

इसके शासन में 1790 ई. में हिण्डूर के राजा रामसरन सिंह ने कहलूर पर आक्रमण किया। इस से लाभ उठाकर मान चंद ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इसने 1817 तक राज किया। इसके समय में गोरखों का आक्रमण हुआ जिससे बेजा पराधीन हुआ। बाद में अंग्रेजों ने मानचंद को बेजा गोरखों से छीनकर मानचन्द को लौटा दिया क्योंकि उसने गोरखा - युद्ध में अंग्रेजों की मदद की थी। किंवदन्ती है कि मानचन्द एक अच्छा वैद्य था । कुछ गोरखों का इलाज करने के कारण गोरखों ने इसे बेजा की ठकुराई लौटा दी थी।

उदय चन्द (1841 – 1905) :

अंग्रेजो ने इसके शासन - काल में 1842 में नरी और चलहान के गांव बेजा से निकालकर कसौली तहसील में मिला दिये। इसके बदले बेजा को 80 रूपये प्रति वर्ष कर के रुप में देना स्वीकार किया ।

पूर्ण चन्द (1839) :

1905 ई. में बाल्यावस्था में होने पर काम चलाने के लिए एक काऊंसिल बनाई गई जिसके सदस्य अमर सिंह, देवी सिंह, वजीर तथा वख्शी बनाये गये। 1921 ई. में उसे अधिकार मिले। 1939 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

लक्ष्मी चन्द (1839) :

1839 में बेजा का ठाकुर बना। इसका विवाह दरकोटी में ठाकुर की पुत्री से हुआ था। इसने 9 वर्ष राज किया 15 अप्रैल में बेजा ठकुराई हिमाचल प्रदेश की महासू जिले में समाहित हो गई।

मांगल – रियासत

'मांगल' अर्थात चारों दिशाओं में गगन चुम्बी शिखरों से घिरा आरक्षित क्षेत्र। एक ओर कठपोल सिद्ध की चोटियाँ बाघल (अर्की) से इसकी सीमा बनाती हैं, तो दूसरी तरफ सतलुज नदी के तल से इसकी सीमाएं बिलासपुर (कहलूर) को स्पर्श करती हैं। पश्चिम उत्तर की ओर सतलुज नदी सुकेत (बटवाड़ा) मण्डी क्षेत्र से इसकी सीमाएं स्पर्श करती हैं। इस लघु पहाड़ी रियासत में सदैव एक स्वतन्त्र राणा शासन करता रहा है।

अपने प्रारम्भिक समय से यह रियासत 5 कोस चतुर्दिशाओं में फैली थी। राज वंश के अनुसार स्वतन्त्रता - प्राप्ति के आस - पास इसका क्षेत्रफल 336 वर्ग कि. मी. था तथा 1901 ई. की जन गणना के अनुसार आवादी 1227 थी। राजभत्ता 3000 रूपये वार्षिक था। रियासत की कुल आमदनी 700 रू. वार्षिक थी।

रियासत की स्थापना :

रियासत की स्थापना के विषय में दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं हैं। जनश्रुतियों में मांगल रियासत की स्थापना के विषय में मनोरंजक विवरण मिलता है। मांगल राजवंशावली के अनुसार पुराने समय का जिक्र है कि महाराज सुकेत और महाराज मण्डी का आपस में सीमा विवाद पर झगड़ा हुआ। इस झगड़े के लिए राजा मान चन्द गुलेरिया को फैसले के लिए बुलाया गया। उसने दोनों का तसबीहा करा दिया। एक दिन मान चंद गुलेरिया सैर करते - करते बटवाड़ा की राजधानी के पास सेरी मांगल पहुंचे। वहां राणा मंगल चंद शासन करता था। उसका एक भाई था जिसका नाम था टीटो । टीटो ने मान चंद गुलेरिया से मिलकर मंगल चंद के विरुद्ध षड़यन्त्र रचाया और कहा कि यहां ''रुण्ड'' (निरंकुश अत्याचारी सामन्त) रहता है। राजा मानचन्द ने कंवर टीटो की सहायता से शाम के वक्त मंगल चंद पर हमला किया और मार डाला।

मंगल चंद के पुरोहित सालिग्राम भट्ट को जब यह मालूम हुआ

कि राणा मारा गया तो वह रानी तथा टीके के पास ठाकुर द्वारे में गया। जहां वे पूजा कर रहे थे। उसने सब हाल रानी से कहा और तत्काल वहां से भाग चलने को कहा। टीका रघुनाथ चंद डेढ़ बरस का बालक था। वे तीनों भागकर अगली धार में मांगता (मंगला मुखी) संत के घर पहुंचे। तब मांगता और मांगती भी उनके साथ भागने को तैयार हो गये। चलते-चलते वे बीहड़ जंगल के पार ''गहरु की धार'' पहुंचे। रात का अन्तिम प्रहर था। वे सुस्ताने के लिए एक चट्टान पर बैठे थे कि पीछे से सिपाही आ गये। राजा मानचंद को कंवर टीटो से खबर मिली थी कि रानी टीके को साथ लेकर भाग गई है। सिपाहियों ने मांगते संत से पूछा कि टीका कहां हैं? मांगते ने टीके को अपने ढोल में छुपा रखा था। उसने अपने डेढ़ बरस के लड़के की ओर इशारा किया जो एक चादर में लिपटा सो रहा था। सिपाहियों ने उसे एकदम तलवार से मार डाला और लौट गये।

शालिग्राम भटूआ, मांगता संत, मांगती, रानी और टीका एक कन्दरा (गुफा) में घुस गये। यह कंदरा बाडू नामक स्थान पर थी। वे उस बियावान जंगल में 18 दिन छुपे रहे। मांगता इधर-उधर से थोड़ा बहुत खाने की सामग्री छुपा कर लाता रहा।

उसके बाद वे सुकेत छोड़कर बेरल के पास सतलुज से पार हुए। वे कन्धर पहुंचे। यह एक सुरक्षित गोपनीय घाटियों से घिरा खड्ड का किनारा था। वे कई दिनों तक कन्दराओं में छुपते रहे इसलिए इस जगह का नाम आज तक कन्धर चल आ रहा है। कुछ समय बाद राजा कहलूर ने रानी की मदद की और टीका रघुनाथ चंद को इस 5 कोस क्षेत्र का 'ठाकुर' घोषित किया।

कालान्तर में रघुनाथ चंद ने रियासत का नाम अपने पिता की स्मृति में 'मांगल' रखा तथा रियासत की राजधानी का नाम 'कन्धर' रखा। रघुनाथ चंद को बचाने के उपलक्ष्य में मांगत संत को ''सासण'' (जागीर) प्रदान की गई। सालिगराम भट्ट को भी भूखण्ड प्रदान किया गया।

यह गाथा जनश्रुतियों पर आधारित है। ऐतिहासिक प्रमाणों के अनुसार 1240 ई. में सुकेत में राजा मदन सेन राज्य करता था। उसने

सतलुज की तरफ भज्जी, शांगरी और कुमार सेन को जीत कर अपने अधीन कर लिया था और कर देने पर बाध्य कर दिया था। कुछ समय के पश्चात बटवाड़ा के शासक ठाकुर श्री मंगल ने कहलूर से सन्धि करके मदन सेन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और वार्षिक कर देने से इन्कार कर दिया। मदन सेन ने उसे भगाकर सुकेत से बाहर कर दिया। उसने सतलुज को पार किया और 5 कोस रियासत की नींव डाली और उसका नाम रखा 'मांगल'! यहां बिलासपुर के राजा ने श्री मंगल की बहुत मदद की।

एक अन्य सोत के अनुसार एक अत्री वंश के मारवाड़ से आये राजपूत युवक ने कहलूर के राजा के पास नौकरी की। वह सूबेदार के पद तक पहुंच गया। इसी की सेवाओं के बदले इस मांगल की सूबेदारी प्रदान की गई।

वास्तव में राजवंश के लोग अपने को बंगाल से आये वीरसेन नामक पराक्रमी राजा को अपना पूर्वज मानते हैं, जो सुकेत का मूल-संस्थापक था और जिसकी पहली राजधानी पांगणा (मण्डी) के दुर्गम क्षेत्र में थी, जहां इसके किले तथा लोक कथाएं आज भी वर्तमान हैं। राजा वीरसेन एक देवता के रुप में मण्डी, सुकेत, अर्की, कहलूर आदि क्षेत्रों में पूजा जाता है। इसके रथ- मन्दिर आदि अनेक स्थानों पर हैं। मूल मन्दिर 'बाड़ू' (बटवाड़ा क्षेत्र-सुकेत) में है जहां मांगल का पहला शासक एक गुफा में छुपकर जान बचा सका था। मांगल का राजवंश इसे 'दादू' कहकर पुकारता है। सेन वंश अपने को पाण्डव-सहदेव का वंशज मानता है अत: देवता को पाण्डव कहकर पूजा जाता है।

एक मनोरंजक लोक कथा के अुनसार किसी समय सुकेत के राजा ने एक जादूगर से जादू का खेल दिखाने को कहा अद्भुत चमत्कारों से प्रभावित होकर राजा ने उसे दूर दराज का पिछड़ा क्षेत्र मांगल जागीर के रुप में प्रदान किया। यूं भी सुकेत-मांगल के शासकों का मूल-स्थान बंगाल होने के कारण इसे क्षेत्र को अनुश्रुतियों में वर्णित किया गया लगता है।

परवर्ती शासक :

श्री मंगल चंद के बाद रघुनाथ चंद ने सफलता पूर्वक क्षेत्र का प्रबन्ध किया। राजा बिलासपुर ने उसकी भरपूर मद्द की। उसके पश्चात प्रतापचंद, कृपाल चंद, सरताज चंद, मान चंद, गुलाब चन्द, तारा चन्द, संसार चंद जय सिंह, चित्र सिंह, इन्द्र सिंह, वीर सिंह, अमर सिंह, कर्म सिंह, भादर सिंह, पृथ्वी सिंह, जोध सिंह, जीत सिंह, त्रिलोक सिंह, शिव सिंह, रणवीर सिंह, क्षेत्र के शासक रहे,

श्री मंगल की दसवीं पीढ़ी में जयसिंह ने अपने नाम के साथ ''चंद' के स्थान पर 'सिंह' लगाना शुरु किया। इसका कारण सिक्ख गुरुओं की वीरता का प्रभाव रहा।

बहादुर सिंह :

गोरखा आक्रमण (1803 - 1815) के समय मांगल रियासतों में ठाकुर बहादुर सिंह शासन करता था। बिना संघर्ष के गोरखे ठाकुर से कर लेने लगे। गोरखों की पराजय के बाद अंग्रेजी सरकार ने बहादुर सिंह को स्वतन्त्र सनद प्रदान की तथा राणा का खिताब प्रदान किया। 1812 ई. में इसकी मृत्यु हो गई।

राणा पृथ्वी सिंह : - 1812 में पृथ्वी सिंह गद्दी पर बैठा।

राणा जोध सिंह : - इनकी मृत्यु 1844 ई. में हुई।

राणा जीत सिंह : - 1844 - 1892 ई. इनके समय में 1857 का विद्रोह हुआ। इन्होंने अंग्रेजों का साथ दिया।

राणा त्रिलोक सिंह :

(1892 - 1930) राणा तिलक सिंह 1892 में गद्दी पर बैठा। उस समय रियासत की कुल आय 7000 रू. वार्षिक थी। राणा को 72 रू अंग्रेज सरकार को वार्षिक करके रूप में देने पड़ते थे। इन्होंने अपने भाई कंवर निहाल सिंह को अपना वजीर बनाया। इनकी मृत्यु 1930 ई. में हो गई।

राणा शिव सिंह :

इनका जन्म 1888 ई. में हुआ तथा 15 फरवरी, 1920 को इन्हें राजगद्दी प्राप्त हुई। इनके समय में मांगल की वार्षिक आमदनी 3600रू. थी तथा खर्च 3200 रू. था। एक ऐतिहासिक दस्तावेज के अनुसार क्षेत्रफल 14 वर्गमील था। अव्यवस्था के कारण इनके शासक के अधिकार छीन लिए गये थे तथा बंगाल के लाला भगवान दास को मांगल का वजीर बनाया गया।

राणा रणवीर सिंह (1953 – 1973)

मांगल का अन्तिम राणा रणवीर सिंह था । इनके पुत्र राणा सुरेन्द्र सिंह हैं जो 'कोल कंपनी इण्डिया लिमिटेड' में डाइरेक्टर हैं। स्थानीय स्रोत के अनुसार स्वतन्त्रता – प्राप्ति के समय सरकारी भंडार में प्रत्येक घर से कर के रुप में एक सेर घी, चावल 10 बीघे पर एक मन, कणक 17 सेर मक्की 1 मन लिया जाता था। प्रत्येक घर से क्रम से शिमला, देलठ, कहलूर बेगार के लिए जाना पड़ता था। कर से प्राप्त अन्न, पैसा भंडार में जमा होता था। यह कार्य नंबरदार करता था।

राजवंश में मृत्यु होने पर सारी जनता इक्ठ्ठी होती थी तथा शोक प्रकट करती थी। हाट – घराट बन्द हो जाते थे। कोई भी शादी एक वर्ष तक नहीं हो सकती थी। यदि आवश्यक हो तो राणा की आज्ञा से रियासत से बाहर शादी करवाई जा सकती थी । लहसुन, प्याज, हींग खाना बन्द हो जाता था।

शिकारी को जंगल में जानवर को मारने पर दो जांघे (चड़याठियां) भंडार को भेजनी पड़ती थी। केवल बाड़ूबाड़ा देव के मेले (जिसे राजवंश दादू मानता था) कंधर में फागुन में मनाये जाते थे।

प्रारंभ में यह रियासत बिलासपुर की ट्रिब्यूटरी रहा । गोरखों के निष्कासन के पश्चात यहां के राणा बहादुर सिंह को स्वतंत्र सनद अंग्रेजों द्वारा प्रदान की गई ।

15 अप्रैल, 1948 को इसका विलय हिमाचल प्रदेश में हो गया ।

हिण्डूर (नालागढ़) – रियासत

वर्तमान स्वरुप :

सोलन का नालागढ़ क्षेत्र प्राचीन काल में 'हिण्डूर' रियासत के नाम से एक स्वतन्त्र राज्य था। यह रियासत शिमला हिल्स की 30 ठकुराई रियासतों से अलग थी। 15 अगस्त, 1947 को भारत की आजादी के समय नालागढ़ का स्वतन्त्र अस्तित्व बना, किन्तु 2 मई, 1948 को कलसिया और नालागढ़ को पूर्वी पंजाब में मिलाया गया 15 जुलाई, 1948 मो इसे पेप्सू राज्य राज्य में मिलाया गया।

1 नवम्बर, 1966 को इसे हिमाचल प्रदेश में मिलाया गया। 25 जनवरी, 1972 को इसे जिलों के पुनर्गठन के समय सोलन जिले का भाग बनाया गया। हिण्डूर का आधा भाग शिवालिक पहाड़ियों तथा आधा भाग पंजाब से लगते समलत इलाके में फैला था।

हिण्डूर राज्य की सीमाएं पूर्व में महलोग-बाघल, पश्चिम में अम्बाला की रोपड़ तहसील, उत्तर में बिलासपुर और होशियारपुर दक्षिण में पटियाला राज्य को स्पर्श करती थी। इसके समलत भाग को 'दून' नाम से पुकारा जाता था जिसे स्थानीय भाषा में देश कहते थे। यह लोग क्षेत्र अधिकांश सिरसा नदी की घाटी में स्थित था। दो प्रकार की भूमि के कारण इसे देश और पहाड़ कहा गया।

यह रियासत 250 वर्गमील में फैली थी। राजकीय विवरणों के अनुसार आजादी के समय इसका क्षेत्र 715 वर्गकिलोमीटर था तथा 1901 की जनगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या 52551 है। राजा का प्रिवीर्पस 60000 रूपये था।

इतिहास :

'हिण्डूर' रियासत का नाम हाण्डू नामक ब्राह्मण के नाम पर पड़ा था। अन्य पहाड़ी रियासतों की तरह यहां मावी निरंकुश शासक थे जो हरियाणा (प्राचीन पंजाब) के दुर्गम क्षेत्रों से यहां आये थे। हिण्डूर की स्थापना के विषय में अनेक जनश्रुतियां मिलती हैं। इतिहासकारों के अनुसार हिण्डूर की स्थापना 'कहलूर' के राजवंश ने की थी जो

चन्देरी (राजस्थान) से आये चन्देला राजपूत थे। चन्देल राजपुत्र अजय चंद ने हाण्डू को हराकर हिण्डूर की नींव रखी थी। कहलूर के ऐतिहासिक दस्तावेजों में इसका विस्तृत विवरण मिलता है।

पराक्रमी चन्देल :

उत्तरी भारत में चन्देरी के चन्देल राजपूत शक्तिशाली राजवंशों में गिने जाते हैं। इन शासकों ने 10वीं शती से 13वीं शती के मध्य बुन्देलखण्ड में सैंकड़ों वर्ष सफल राज किया तथा समीपवर्ती राज्यों पर भी अधिकार किया। चन्देरी का किला इसका प्रमाण है। 11 वीं शती के प्रारम्भ में चन्देल राजपूत शासक विद्याधर ने महमूद गजनवी के आक्रमणों को भी असफल कर दिया था। विद्याधर वास्तुकला का प्रेमी था। इसने विश्व प्रसिद्ध खजुराहों के मन्दिरों का निर्माण करवाया तथा सुदृढ़ कालिंजर के किले का निर्माण करवाया। मुसलमानों के आक्रमणों के मध्य इस वंश के शासक हिमालय के पहाड़ी क्षेत्रों कहलूर, हिण्डूर, कोटी, मधान, मांगल सुकेत आदि क्षेत्रों में राज्य स्थापित करने में सफल हुए।

चन्देल वंश में राजा शीलचंद्र नामक शासक प्रसिद्ध हुआ। वह धार्मिक तथा प्रजा पालक था। उसकी दो रानियां हेमवती और देवमति थी। राजा की मृत्यु के बाद उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम था चन्द्रवर्मा। श्रुतियों के अनुसार हेमावती के पुत्र उत्पन्न हुआ। हेमावती बनारस के गड़हवाल राजा इन्द्रजीत के राज पुरोहित हेमराज की पालित पुत्री थी। चन्द्र के समागम से चन्द्रवर्मा पैदा हुआ। उस लोकाचार से बचने के लिए उसे 'बन्ध्य-यज्ञ' करने को कहा गया । यज्ञ के पश्चात उसे विद्वान-ब्राह्मणों-संतो का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। चंद्रवर्मा प्रतीभाशाली और बहादुर था। उसने 16 वर्ष की आयु में शेर को मारा था। अतः उसे महोबा (महोत्सव नगर) का राजा बनाया गया।

कहलूर और हिण्डूर के इतिहास और मान्यताओं के अनुसार हिण्डूर की स्थापना 11वीं शती में राजा काहन चन्द (काहल चन्द) के पुत्र अजय चन्द ने की थी। काहन चन्द के दो रानियां थी। एक कुल्लू और दूसरी बाघल से थीं । ये दोनों रानियां एक साथ गर्भवती हुईं । इन दोनों ने राजकुमारों को जन्म दिया। काहन चन्द राजधानी से बाहर हथनीगढ़

किले में गया हुआ था। पहले कुल्लू वाली रानी के पुत्र हुआ, फिर बाघल वाली रानी के। कुल्लू वाली रानी के कर्मचारी खुशियां मनाते रह गये। बाघल वाली रानी के कर्मचारियों ने हथनीगढ़ जाकर राजा को पहले सूचना दी। कुल्लू वाली रानी के पुत्र का समाचार बहुत बाद मिला। राजा ने बाघल वाली रानी के पुत्र को राजकुमार मानने की स्वीकृति दे दी थी। लोगों ने राजा को बधाइयां दीं। राजा ने उसे अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी स्वीकार कर लिया।

बाद में राजा अपने वचन को न मोड़ सका। उस पुत्र का नाम अजीत चन्द रखा गया। कुल्लू वाली के पुत्र का नाम अजय चन्द रखा गया । जनश्रुतियों में इनके विषय में विसंगतिया मिलती हैं।

अजय चन्द (1100 – 1171) :

हिण्डूर राज्य के स्रोतों के अनुसार हिण्डूर का प्रथम राजा काहन चन्द का बड़ा पुत्र अजय चन्द था। कहलूर का राजा न बनने के कारण उसने अपने पिता के राज्य में ही एक छोटी सेना बनाई और हिण्डूर पर आक्रमण कर दिया। वहां के हाण्डू नाम के ब्राह्मण राजा को मारकर राजा बना। हाण्डू निरंकुश राजा था अतः लोगों ने अजय चंद को सहर्ष राजा स्वीकार किया । अजय चन्द ने ब्राह्मण-हत्या के पाश्चाताप स्वरूप सम्मान के साथ हाण्डू का दाह संस्कार किया और उसके परिवार को जीवन-यापन के हिण्डूर के बाद अजय चन्द ने समीपवर्ती इलाकों में भी राज्य का विस्तार किया। उसने कहलूर पर भी आक्रमण किये, किन्तु उसके भाई अजीत चन्द ने उसे कहलूर में प्रवेश नहीं करने दिया। अजय चन्द अच्छा शासक था। उसने प्रजा के लिए कार्य किये। 1171 ई. में उसकी मृत्यु हो गई।

राजा विजय चन्द (1171 – 1201) :

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात विजय चन्द केवल 4 मास का बालक था, अतः उसकी मां ने राज्य का कार्यभार संभाला। किन्तु स्थानीय कनैतों (जागीरदार) ने रानी का विरोध करना शुरु किया। इन्हीं ताकतवर कनैतों ने पूर्वशासक हाण्डू को भी पराजित करवाया था। रानी ने यह देखकर रियासत के प्रमुख राजभक्त कर्मचारियों को शासन में

सहयोग देने एवं शासन में भाग लेने को कहा। अधिकांश लोग राजभक्ति के कारण रानी की ओर हो गये। अब कनैतों से कर्मचारियों की झड़पें होने लगीं। अंत में कनैतों की हार हुई। बड़ा होने पर विजय चन्द ने कनैतों का दमन किया। इस राजा ने राज्य को समृद्ध बनाया । लेकिन 30 वर्ष की उम्र में इसकी मृत्यु हो गई।

धाम चन्द (1201 – 1236) :

इसके समय में कनैतों ने फिर विरोध करना शुरु किया, किन्तु राजा ने उसे दबा दिया अतः यह प्रजा में लोक प्रिय हो गया।

राजा वैराग चन्द (1236 – 1276) :

इसके समय में मैदानी भागों से लड़ाई से भागकर अनेक मुसलमान शासकों ने शिवालिक की घाटियों में शरण ली।

लछमण चन्द (1276 – 1306) :

ग्यारह वर्ष की आयु में राज्यारोहण होने के बाद रियासत के लोगों ने इसका विरोध किया तथा अराजकता फैलाई। बड़ा होने पर उसने उन्हें काबू कर दिया।

उत्ताल चन्द (1306 – 1316) :

इनकी छोटी आयु में मृत्यु हो गई ।

जयमल चन्द (1316 – 1338)

दिल्ली के शासक मुहम्मद बिन तुगलक ने छोटे - छोटे राज्यों को जीतने के बाद 1337 ई. में कांगड़ा पर आक्रमण किया तथा लूटमार की। हिण्डूर के रास्ते में पड़ने के कारण तुगलक ने रियासत से राजकर वसूल किया होगा।

अमर चन्द (1338 – 1356) :

आलम चन्द (1356 – 1406)

1398 ई. मंगोल शासक तैमूर लंग ने भारत पर आक्रमण किया

और दिल्ली पर अधिकार कर लिया। वहां से वह मेरठ, हरिद्वार, क्यार दा दून को जीतता हुआ वापिस मुड़ा। शिवालिक की तलहटियों से होता हुआ फरवरी मास में हिण्डूर की सीमा पर पहुंचा और वहां पड़ाव डाला । आलम चन्द ने दयनीय स्थिति देखते हुए तैमूर को खाद्य सामग्री देकर प्रसन्न कर दिया अत: वह आगे निकल गया। कुछ अगले शासक इस प्रकार थे -

उधम चन्द (1406 - 1421 ई.), विक्रम चन्द (1421 - 1435 ई.) नालागढ़ का किला बनवाया, केदार चन्द (1435 - 1448), जय चन्द (1448 - 1477), नारायण चन्द (1477 - 1522), राम चन्द (1522 - 168), संसार चन्द (1568 - 1618), धर्म चन्द (1618 - 1701), हिम्मत चन्द (1701 - 1705), भूप चन्द (1705 - 1756)

मान चन्द (1756 – 1761) :

मान चन्द के राजा बनते ही हिण्डूर में षड़यंत्रो का दौर चला। मान चन्द धार्मिक व्यक्ति था। सदा पूजा - पाठ में लगा रहता था। इसका लाभ उठाकर उसके चाचा पद्म चन्द ने कनैतो का साथ लेकर पूजा में बैठे मान चन्द की 1761 ई. में हत्या कर दी। उसकी रानी और पुत्र को भी मार दिया और स्वयं गद्दी पर बैठ गया। परन्तु राजा के समर्थक मतियाना के कनैतों ने पद्म चन्द को भी मार दिया। राज परिवार से मियां गजे सिंह बचा था। वह हिण्डूर से भाग कर गुरू खड़क सिंह के पास हरिपुर चला गया। हरिपुर उस समय महलोग राज्य में था। मान सिंह की हत्या के बाद हिण्डूर में अराजकता फैल गई।

गजे सिंह (1762 – 1788) :

अराजकता दूर करने के लिए हरिपुर के गुरू खड़क सिंह ने हिण्डूर के सभी गुटों में समझौता करवा कर मियां दान सिंह के पुत्र गजे सिंह को 1762 ई. में राजा बनाया । वैसे नालागढ़ के लोगों ने राजवंश की समाप्ति पर कहलूर के राजा देवी चन्द से शासन ग्रहण करने को कहा किन्तु देवी चन्द ने नालागढ़ राजवंश के ही गजे सिंह को जो गुरू खड़क सिंह का भाई था, राजा बनने को मनाया। इस कार्य में गुरू खड़क सिंह का विशेष हाथ था ।

इसके समय में हिण्डूर के आलमपुर, आवानकोट, गुलरवाला, आदि क्षेत्र सिक्खों के अधिकार में थे। गजे सिंह के समय (1761 - 1768) पड़ौसी राज्य बाघल में भूप चन्द पंवर का राज्य था। भूप चन्द की (1743 - 1778) हिण्डूर और कहलूर के साथ कई लड़ाइयां हुई। इसी दौरान हिण्डूर के राजा राम सरन सिंह ने बघाट के कई सैनिक महत्व के ठिकानों पर कब्जा किया। उस समय बघाट का राजा दलील सिंह था जो हिण्डूर के साथ लड़ाई में मारा गया। राम सरन सिंह ने धर्मपुर क्षेत्र और कुठाड़ को भी अपने अधीन किया। सभवतः इसी दौरान बाघल से भी कहलूर ने कर लेना शुरू किया था ।

राम सरन सिंह (1775 – 1823) :

राम सरन सिंह बहादुर राजा था। इसके समय में कहलूर में महान चन्द का राज था जो आलसी और निकम्मा था। इस कमजोरी का लाभ उठाकर रामसरन सिंह ने राज्य से लगते कहलूर के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया और कांगड़ा के राजा ने 1795 ई. में सतलुज के दाहिने किनारे पर अधिकार कर लिया। अब राम सरन सिंह कहलूर का साथ छोड़कर संसार चन्द के साथ हो गया। यह देखकर महान चन्द ने आनन्दपुर साहिब के सरदार गुरदीत सिंह और देसा सिंह की सहापता मांगी किन्तु वे रामसरन सिंह के हाथों पराजित हुए। अब रामसरन सिंह ने बिलासपुर नगर पर आक्रमण किया और बहादुरपुर, फतेहपुर, रत्नपुर किलों को जीता और बिलासपुर नगर को जलाया।

महान चन्द की हार से 12 ठकुराइयों ने कहलूर को कर देना बन्द किया और मुक्त हो गई। उसने अपने राज्य का विस्तार किया तथा हिण्डूर की सीमांए पलासी से मतियाना तथा अजमेरगढ़ से यमुना तक स्थापित कीं। उसने सिरमौर की ओर बढ़ना चाहा, किन्तु सफल नहीं रहा। उसके अधिकारी धर्मा नेगी ने सपाटू जीत कर सीमाओं को बढ़ाया।

राम सरन के कांगड़ा के राजा संसार चन्द से अच्छे सम्बन्ध थे। उस समय कहलूर को अपने छीने हुए इलाके वापिस लेने के लिए हिण्डूर पर आक्रमण के लिए गोरखों को बुलाया । गोरखों ने यमुना को पार कर हिण्डूर की सेना को अजमेरगढ़ किले में पराजित किया। साथ ही कांगड़ा

पर आक्रमण किया। रामसरन सिंह ने कांगड़ा के राजा संसार चन्द की सहायता की। गोरखों ने उसे खदेड़कर मैदानी भाग में शरण लेने को मजबूर कर दिया । वह दस वर्ष तक पलासी किले में रहा। गोरखों ने हिण्डूर के सारे पहाड़ी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। राजा के पास केवल मैदानी भाग तथा बद्दी और गुलरवाला के किले रहे। गोरखों ने रामसरन सिंह द्वारा हथियाये इलाके महान चन्द को लौटा दिये और बारह ठकुराइयों का अधिपत्य भी उसे सौप दिया।

नवम्बर, 1814 को अंग्रेज सरकार ने गोरखों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। डेविड औक्टर लोनी ने 6000 सैनिकों के साथ नालागढ़ और तारागढ़ को जीत लिया। 11 फरवरी, 1815 को रामगढ़ जीत लिया। इस समय अमर सिंह थापा का मुख्यालय बाघल की राजधानी अर्की में था। वह 300 सैनिक लेकर रामशहर और मलौण चला गया। हिण्डूर के राजा राम सरन सिंह ने 200 सैनिकों को लड़ने भेजा। पहली अप्रैल, 1815 को मलौण किले पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों ने भारी तोपों से आक्रमण किया। इससे गोरखा सेना कमजोर हो गई। भक्ति सिंह थापा की लड़ाई में मृत्यु हो गई। इससे गोरखा सेना को बहुत आघात पहुँचा। उधर कुमांऊ भी गोरखों के हाथ से निकल गया। थापा के आदमी भी उसका साथ छोड़ भागने लगे। स्थिति को हाथ से निकलता देख अमर सिंह थापा ने अंग्रेज सेना के आगे आत्म-समर्पण कर दिया। 15 मई, 1815 को गोरखों के जीते समस्त क्षेत्र अंग्रेजों के अधीन आ गये।

गोरखा आक्रमण से पूर्व हिण्डूर की आय मैदानी भाग से 30000 रुपये और पहाड़ी भाग से 15000 रूपये थी। गोरखे हिण्डूर से 40000 रुपये वार्षिक राजकर वसूल करते थे। राजा गजे सिंह और राजा राम सरन सिंह के समय नालागढ़ में चित्रकला का विकास हुआ। पलासी का किला इसका उदाहरण है। अंग्रेजी सरकार ने 1846 में रामसरन सिंह के व्यवहार से खुश होकर उसे मलौण का किला और साथ लगते 6 गांव, 18 पाउण्ड की दो तोपें तथा किले की युद्ध सामग्री राजा को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रदान कीं। इस राजा ने 60 वर्ष तक राज किया। 1848 ई. में 84 वर्ष की आयु में इसकी मृत्यु हो गई ।

विजय सिंह (1848 – 1857) :

इसके समय में अंग्रेज सरकार ने हिण्डूर पर अपना आधिपत्य बनाये रखा। इसका कारण 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों को राज्य से कोई मदद् न मिली। इसके शासन में राज्य में अराजकता रही। अमर सिंह को 1860 ई. में ब्रिटिश सरकार ने गद्दी पर बिठाया ।

ईश्वर सिंह (1877 – 1912) का विशेष विवरण नहीं मिलता।

जोगेन्द्र सिंह (1911 – 1946) :

राजा ईश्वर सिंह को हिण्डूर का राजा बनाया गया। पहले वह वजीर के रूप में कार्य कर चुका था। उसने सर्वप्रथम नालागढ़ को अपनी राजधानी बनाया। इसने मियां इन्द्र सिंह की अध्यक्षता में एक तीन सदस्यीय समिति द्वारा शासन चलाया। बाद में उसे भंग कर शिमला के उप तहसीलदार चौधरी रामजीलाल को हिण्डूर का बजीर बनाया गया। प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजी सरकार (1914 - 1918 ई.) को 220 सैनिकों की सहायता देने पर सरकार ने उसे उचित सम्मान दिया उसके समय में 1918 ई. में प्रजा ने विद्रोह किया जिसे दबा दिया गया।

राजा सुरेन्द्र सिंह :

इसके समय में अंग्रेजी सरकार ने नालागढ़ को पटियाला राज्य के अधीन कर दिया। राज्य में प्रजामण्डल का आन्दोलन शुरू हुआ इस आन्दोलन में भगोटा के गंगाराम, मंधाला के जयन्ती प्रसाद गर्ग, कोटला के चन्दू लाल ने बढ़चढ़ कर भाग लिया। 2 मई, 1948 को नालागढ़ को पूर्वी पंजाब में मिलाया गया जिससे यह अखण्ड भारत का भाग बना। कालांतर में यह अम्बाला जिले की एक तहसील बनी। 1 नवम्बर, 1966 को यह हिमाचल की सोलन जिले की एक तहसील बनी।

लोक – संस्कृति

लोकनाट्य – करयाला एवं बरलाज

सभ्यता के प्रारम्भ से ही मानव अपने मनोभावों को संकेतों एवं ध्वनियों के माध्यम से प्रकट करता रहा है। इन संकेतों और ध्वनियों से ही भाषा का जन्म हुआ था। मानव विकास के साथ सामाजिक व्यवस्था में विकास के लिए दूसरों का सम्मान तथा परोपकार आवश्यक गुण थे, अतः सीधी भाषा द्वारा दूसरों को बुरा न लगे, इसलिए विरोधी भावनाओं को प्रतीकों अथवा अप्रत्यक्ष प्रसंगों द्वारा समझाने का प्रयास हुआ। लोक – साहित्य मानव सभ्यता एवं संस्कृति के क्रमिक विकास का प्रतिरुप है। समाज में जियो और जीने दो के लिए जीवन – मूल्यों को लोक कथाओं, वीर गाथाओं, जन श्रुतियों, ढकोसलों एवं लोकगीतों के माध्यम से अतिरंजित रुप से मौखिक लोक – साहित्य में व्यक्त किया जाता रहा है।

राज – व्यवस्था में मौखिक लोक – साहित्य को व्यस्थित रुप देना प्रारंभ हुआ। यह राज – व्यवस्था के नियम – कानूनों को समझाने के लिए भी आवश्यक था। राजसत्ता के पक्ष में काव्य रचने वाले कवियों कलाकारों को राजकीय सम्मान एवं अनुदान मिलता था। काव्य अथवा साहित्य स्वस्थ मनोरंजन, सामाजिक भावना और आमोद प्रमोद के साधन के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा।

प्राचीन संस्कृत – साहित्य में राज – दरबारों में नाट्य गृहों क्रीड़ालयों, नाट्य – शालाओं एवं रंगशालाओं का उल्लेख मिलता है। सम्राट विक्रमादित्य, राजा भोज, सम्राट हर्ष आदि शासक साहित्य प्रेमी और कला प्रेमी थे। उनके दरवारों में विद्वान कवि, कलाकार नवरत्नों के रुप में राज – सभाओं को अलंकृत करते थे। कविता के अतिरिक्त नाटकों की रचना में भी उस समय के लेखकों का विश्व में कोई सानी नहीं था। कालिदास के नाटकों का ऐतिहासिक और राष्ट्रीय महत्व तो है ही, अन्य नाटककार अश्वघोष, भास, भवभूति उस समय के महान नाटककार थे। आज भी उन महान नाटकों का उतना ही साहित्यिक

महत्व है। अभिज्ञान शाकुन्तल, वेणी संहार, माल विकाग्निमित्र, मुद्राराक्षस आदि इसी प्रकार की युगीन रचनाएं हैं।

संस्कृत के नाटक सम्भ्रांत वर्ग एवं विद्वानों के मनोरंजन की दृष्टि से लिखे गये। आम नागरिकों के लिए इन नाटकों का कोई महत्व नहीं रहा। एक वर्ग विशेष जो राजसत्ता के आस-पास था, इन नाटकों एवं काव्यों का रसास्वादन कर सकता था। सम्राट अथवा राजा प्रोत्साहन के लिए काव्यकारों को पुरस्कृत करता था और भूखण्ड प्रदान करता था। संस्कृत नाटकों का विधान शास्त्रीय था। उनमें विद्वता का प्रदर्शन होता था। संस्कृत नाटक प्रेक्षालयों एवं क्रीड़ालयों में उद्घोषक नाट्य-अभिनय के साथ पार्श्व से मंच की गतिविधियों को संचालित करता था। जो दृश्य अभिनीत नहीं हो पाते थे, उन्हें उद्घोषक या सूत्रधार आकाशवाणी या वर्णन द्वारा दर्शकों को सुनाता था। संस्कृत नाटकों का स्वरुप विशुद्ध शास्त्रीय एवं अभिजात्य वर्गानुकूल था।

जन साधारण में इसके समान्तर एक अलग नाटक की धारा थी जो जनभाषा में प्रदेशों में विकसित होती रही। इन्हें लोक नाटकों का नाम दिया गया है। भले ही लोक-नाटकों का शास्त्रीय आधार नहीं था, किन्तु इनकी संरचना शास्त्रीय आधार की प्रतिक्रिया के स्वरुप अस्तित्व में आई।

संस्कृत में 'नाटक' विधा "रुपक" का एक प्रकार है। प्राचीन राजदरबारों में (11 वीं सदी तक) रंगमंच पर रुपकों का मंचन किया जाता रहा। रुपक को दृश्य काव्य कहा जाता था और अन्य को श्रव्य काव्य। रुपक के 10 भेद थे-नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन।

इनमें प्रकरण, भाण, व्यायोग, अंक, वीथी और प्रहसन में एक ही अंक होता था। समवकार में तीन अंक, डिम, और ईहामृग में चार अंक और नाटक में पांच से दस तक अंक होते थे। संस्कृत की इन नाटक विधाओं में कथानक की भिन्नता के अनुसार इनका वर्गीकरण किया गया था। इनकी कथावस्तु में ऐतिहासिक कथाएं, पौराणिक कथाएं एवं वीर सम्राटों से सम्बंधित कथाएं रहती थीं। इनके नायक देवता, गन्धर्व,

यक्ष, राक्षस आदि हो सकते थे। प्राय: सामयिक समस्याओं को वर्तमान की तरह चित्रित नहीं किया जाता था। कल्पना एवं अतिरंजना का पुट नाटकों में प्रचुर मात्रा में रहता था । इन नाटकों का काव्यमय होना कवि - नाटकार की योग्यता का मापदण्ड भी था। रंग मंच पर प्राकृतिक दृश्यों एवं युद्ध के दृश्यों को काव्यमय वाचन से प्रदर्शित किया जाता था।

इन्हीं नाटकों की प्रतिक्रिया के रुप में जनसाधारण हेतु लोक नाटकों की परम्परा विकसित हुई। पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में राजनीतिक परिवर्तन 11 - 12 वीं शताब्दी में मुगलों के मध्य भारत में आक्रमणों एवं राज्य - स्थापना के कारण हुआ। अनेक रजवाड़े, सामन्त, राजकुमार मुगलों के आक्रमणों से पराजित होकर हिमालय की ओर सेनासहित एवं माल असबाब सहित हिमालय के क्षेत्रों में छोटे - छोटे राज्य स्थापित करने में समर्थ हुए। इन क्षेत्रों के छोटे - छोटे निरंकुश शासकों ने उनके आगे घुटने टेके अथवा अपने क्षेत्रों से दूसरी जगह भाग गये। मध्यभारत एवं दक्षिण भारत के उन योद्धा राजकुमारों के पास आधुनिक अस्त्र - शस्त्र थे जबकि पहाड़ों में लड़ाई के हथियार नाम - मात्र थे। हिमाचल की संस्कृति एवं धर्म 11 - 12 वीं शती में स्थापित रजवाड़ों, ठाकुरों एवं राणाओं के संरक्षण में विकसित हुए। दरबारों में राम, कृष्ण एवं पौराणिक - ऐतिहासिक कथाओं का मंचन होने लगा। प्राय: दरबारों में नृत्य - नाटकों का मंचन होने लगा। 9 - 10 वीं शती में नाथ - पंथ के साधुओं का समस्त देश के सामाजिक जीवन को प्रभावित कर रहा था। नाथों, सिद्धों, और विभिन्न धार्मिक मतो के साधुओं द्वारा तंत्र - मत्र, अभिचार आडम्बरों एवं चमत्कारों से भोली जनता त्रस्त थी। किन्तु कुछ स्वतंत्र साधुओं, संतों ने रुढ़ियों, परम्पराओं का विरोध करना शुरु किया। तत्कालीन साहित्य इसका प्रमाण है।

इसके परिणाम स्वरुप जनसाधारण में इन ढोंगी साधुओं संतों के विरुद्ध आक्रोश पैदा हुआ। यह तत्कालीन संत - काव्य में देखा जा सकता है। भारतीय साहित्य में कर्मकाण्ड, आडम्बरों का घोर विरोध मिलता है। लोक नाटकों में साधुओं के स्वांग का विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त पहाड़ी लोकनाटकों में राजाओं के शोषण, निरंकुश, व्यभिचार एवं

तत्कालीन विसंगतियों का चित्रण मिलता है। लोक नाटकों का प्रारम्भ रजवाड़ों के पहाड़ी प्रदेशों के राज - व्यवस्था करने से माना जा सकता है, क्योंकि इससे पूर्व यहां कोई व्यवस्थित राज्य नहीं थे।

हिमाचल की 18 ठकुराइयां एवं छोटी 12 ठकुराइयां उसी समय स्थापित हुई। इन्हीं रियासतों में लोक नाटक करयाला दहाजा (धाजा) चन्द्रौली (चन्द्रावली), बरलाज एवं रास लीला की परम्परा मिलती है। ये विधाएं तत्कालीन प्रारंभिक हिमाचल की परम्परा में मिलती है जिनमें 30 रियासतें सम्मिलित थीं। इनके अतिरिक्त इनकी पड़ौसी रियासतों सुकेत सिरमौर, मण्डी, कहलूर, नालागढ के क्षेत्रों में भी इनका प्रचलन मिलता है।

प्राचीन काल में राजदरबारों में नृत्यांगनाओं के लिए रंग - शालाएं अथवा रंगमहल होते थे। धार्मिक - ऐतिहासिक रुपकों को भी रंगमंचों, क्रीडालयों, नाट्य शालाओं में अभिनीत किया जाता था। ये आयोजन राजमहलों के प्रांगण तक सीमित थे।

शास्त्रीय परम्परा के इन नाटकों - नृत्यों से प्रभावित विभिन्न क्षेत्रों में अपनी भौगोलिक और धार्मिक परिवेश के अनुसार लोकनाटकों का उद्‌भव एवं विकास स्वाभाविक रुप से हुआ। हिमाचल प्रदेश के करयाला, बरलाज, चन्द्रौली, दहाजा, स्वांग, बांठड़ा, बुढड़ा, भगत, रासलीला, रामलीला, हरणांतर आदि लोकनाट्य मध्ययुग से हिमाचली क्षेत्रों में प्रचलित रहे हैं।

हिमाचल के शिवालिक क्षेत्र के आंचल के सोलन जनपद में लोक नाट्य करयाला, बरलाज, दहाजा, चन्द्रौली, आदि की समृद्ध परम्परा रही है। इस क्षेत्र के ठोडा, धूप्पू, नुआला, जगराता आदि लोक नाट्यों की विधा में नहीं आ सकते। ये नृत्यगीत, लोकगाथा गीत अथवा ऐतिहासिक खेल के रुप में परिगणित किये जा सकते हैं। इनमें नाटकों की कथा वस्तु एवं शिल्प का तारतम्य नहीं रहता है।

"करयाला" लोक नाट्य :

करयाला लोकनाटक सोलन, क्षेत्र के समस्त क्षेत्रों में मध्यकाल

15-16 वीं शताब्दी से प्रचलित रहा है। इसका विकास भज्जी क्षेत्र में अधिक रहा। सिरमौर क्षेत्र में भी सुकेत क्षेत्र की तरह करयाला समान रुप से प्रचलित रहा है । इसी प्रकार समीपवर्ती शिमला के क्षेत्रों ठियोग, कोटी, मधान, क्योंथल, धामी, कोटखाई, आदि रियासतों में करयाला की समृद्ध परम्परा रही है।

''करयाला'' शब्द ''क्रीड़ालय'' शब्द का अपभ्रंश है- क्रीड़ालय, करिआला, करियाला आदि के स्वाभाविक वाचिक परिवर्तन से 'करियाला' का स्वरुप बना है। भाषा शास्त्र एवं विद्वानों के अनुसार भाषा जटिल से सरल की और स्वाभाविक रुप से परिवर्तित होती रहती है। प्राचीन दरबारों में 'क्रीड़ालय' होते थे जिनमें रुपक, नृत्य आदि आमोद-प्रमोद की गतिविधियां होती थीं। 'क्रीड़ालय' का अभिप्राय है। आमोद-प्रमोद के खेल, हास-विलास एवं मनोरंजन का स्थल या कक्ष। लोकनाट्य करियाला प्रकृति के खुले आंगन में लोक कलाकारों द्वारा खेला जाता है। सम्पूर्ण करियाले में हास्य-विनोद एवं मनोरंजन का कथानक होता है। स्थानीय भाषा की प्रधानता रहती है किन्तु उसमें पंजाबी, उर्दू और मनघडंत भाषा का प्रयोग होता है। इसका आयोजन गांव के बीच, किसी बड़ के अथवा बड़े पेड़ के नीचे, देव-चबूतरे के पास अथवा बिल्कुल खुली जगह होता है। करयालची चादरों के तम्बू नुमा प्रसाधन कक्ष में विभिन्न हास्य मुद्राओं के परिधानों में तैयार होकर बाहर आते हैं।

करियाला स्थल के मध्य में एक बड़ा 'अलाव' जलाया जाता है जिसके चारों तरफ धूमते हुए करयालची अभिनय करते हैं। करयाला के स्थल को 'अखाड़ा' कहा जाता है। करियाला कक्ष के सामने केले के चार तनों से एक तोरण-द्वार बनाया जाता है जिसे पीपल, आम पाजा आदि के हरे पत्तों से आच्छादित किया जाता है। अखाड़े के चारों ओर गेंदे के फूलों की मालाएं बांधी जाती हे। अखाड़े में अभिनय क्षेत्र के चारों ओर करयालचियों द्वारा एक सीमा रेखा खींची जाती है जिसके अन्दर करयाला खेला जाता है। इसे 'अखाड़ा' बांधना कहा जाता है।

करयाला ग्रामीण क्षेत्रों में मनोरंजन का प्रमुख साधन था। थके-हारे किसान अच्छी फसल घर आने के पश्चात अपने इष्ट को प्रसन्न करने

के बहाने एवं देवताओं की पूजा के बहाने मनौती स्वरुप करयाले का आयोजन करके आनन्द प्राप्त करते थे। करयाला खरीफ की फसल के पश्चात दीवाली के पश्चात समस्त क्षेत्र में मनाया जाता रहा । प्राय: दीवाली के 20 दिन बाद 'देवठन' (देवोत्थान) एकादशी के दिन करयाला, अर्की, भज्जी, क्योंथल, बघाट, चण्डी, ठियोग, कोटी, सलोगड़ा आदि क्षेत्रों में आवश्यक रुप से मनाया जाता रहा। वैसे दीवाली के पश्चात कभी भी कर्तिक मास में करयाले का आयोजन शुभ माना जाता था। करयाले का आयोजन रात्रि के 10 बजे से प्रात: काल तक होता था कहीं - कहीं इन क्षेत्रों में आज भी करयाले की परम्परा है।

करयालची :

करयाला में भाग लेने वाले कलाकारों को 'करयालची' कहा जाता है। ये 7 - 8 कलाकार होते हैं। कहीं - कहीं इनकी संख्या 15 तक होती थी। प्रारम्भ में करयाले में दलित वर्ग, अनुसूचित जाति तथा तूरी जाति के लोग भाग लेते थे किन्तु बाद में इसमे कनैत, ब्राह्मण लोग भी भाग लेने लगे।

करयाले के वाद्य – यन्त्र :

करयाले में कुछ निश्चित वाद्य - यन्त्र होते हैं। साधारणतय ढोल, नगाड़ा, करनाल, हारमोनियम, नरसिंहा और शहनाई इसके प्रमुख साज - बाज हैं। इनमें संगीत के ताल जंग, कहरवा, और दादरा प्रमुख हैं। इन साजों का पंचम - स्वर में उद्घोष रात्रि भर चलता है जो मधुर एवं सम्मोहित करने वाला होता है। लोग यन्त्रवन्त कार्यक्रम को देखते रहते हैं।

चन्द्रौली से करयाला का श्रीगणेश :

करयाले के दृष्य से पहले अदृष्य - शक्ति की स्तुति के लिए खुले प्रांगण में बने अखाड़े में चन्द्रावली का प्रवेश होता है। चन्द्रावली स्त्री - वेश में सुन्दर साड़ी में सुसज्जित एवं मालाओं द्वारा अलंकृत अखाड़े में प्रारम्भिक - शास्त्रीय नृत्य करती है जो 10 बजे से प्रारम्भ होकर आधे घण्टे से एक घण्टे बाद तक शहनाई और ढोले - नगाड़ों के घोष के

बीच संगीतमय वातावरण बनाता है और करयालचियों को तैयारी का समय देता है।

चन्द्रावली को कृष्ण की सखी माना जाता है जिसे धार्मिक भावना से लक्ष्मी का रुप माना जाता है। चन्द्रावली के हाथों में एक थाली में एक दीपक जला होता है जिसके साथ वह नृत्य करती है। चन्द्रावली के नृत्य के बाद लक्ष्मी स्तुति एवं आरती ''जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे'' गाई जाती है।

इसके पश्चात कृष्ण का दो - तीन सखियों के साथ मुकुट आदि के साथ अखाडा - मंच पर प्रवेश होता है। जो कृष्ण के रुप में सुसज्जित होता है। उसे ''कान्ह'' कहा जाता है। प्रत्येक सखी कोई न कोई भजन सुनाती है । ये भजन स्थानीय परम्परा एवं ब्रह्मनन्द भजनावली के होते हैं।

कांस्य थाली में जलते दीपक को चन्द्रावली - नृत्य के बाद एक करियालची लोगों की भीड़ में आशीर्वाद को ले जाता है। लोग श्रद्धा से उसमें पैसे, सिक्के आदि भेंट करते हैं। भजनों से प्रसन्न होकर लोग जब रुपये दान देते है तो कृष्ण की सखियां बने करयालची गाकर आशीर्वाद देते हैं -

''जय जननी ज्वालामुखी खूब रचाइयो खेल
एक रुपैया श्री अमरु ने दिया, उनकी बधावे बेल ....
मैया जी खूब बधावे बेल।''

इस गेय आशीर्वाद को 'बेल' कहा जाता है। इस मध्य सभी साधु 2 - 3 भजन सुनाते है। करयाला में प्रमुख रुप से साधुओं का स्वांग, नट नटणी का स्वांग, सामयिक प्रेम प्रसंग अथवा (व्यंग्य - घटना) सभी कलाकारों द्वारा लोकगीत एवं फिल्मी गीत। गाये जाते हैं।

इस प्रकार 3 - 4 अंकों में विभाजित करयाला में दर्शकों को भरपूर व्यंग्य एवं मनोरंजन मिलता है। इस क्रम में करयालची स्थान विशेष के अनुसार सामग्री सम्मिलित करते रहते हैं। विभिन्न भगवा लम्बे - चौड़े वस्त्रों एवं हाथों में सामग्री लिए साधुओं का जमघट मंच पर बम - बम भोले अथवा अन्य उच्चारण करते प्रवेश करते है।

साधुओं का स्वांग :

चन्द्रावली और साधुओं के भजन के बाद करयाले के अखाड़े में अदभुत जटाधारी एवं लम्बे-लम्बे चोगों अथवा केवल लंगोट पहने दो-तीन साधु बाहरी खेतों की दिशाओं से 'अलख-निरंजन' 'बम-बम भोले' करते प्रवेश करते हैं। कोई चीखता है, कोई अजीब आवाजें निकालता है, कोई जंगली जानवरों, भालू, शेर, और भेड़िये की आवाजें निकालते हैं। विभिन्न मुद्राओं को देखकर लोग हंस-हंस कर लोट-फोट हो जाते हैं। अखाड़ा मंच पर पहुंचने से पहले वे पर्दे के पीछे से कुछ भजन भी गाते हैं -

"पहले गणपत पूजिये पीछे करिये काम
सभा बेगानी बैठ के लाज रखे भगवान"

एक साधु — साधो की नगरी बसे न कोय जो बसे सो साधो होय।

दूसरा साध — जोगी की नगरी बसदा न कोय
जो ही बसे सो ही जोगी होय

तीसरा साधु — दो-दो बार ऐसे दोहों का उच्चारण करते साधु अखाड़ा मंच प्रवेश करते हैं। एक दम कहरवा ताल में डंका, ढोल, करनाल, नगाड़ा और शहनाई का संगीत गूंज उठता है। सभी करयालची साधु वाद्य-यंत्रों को प्रणाम करते है। एक प्रमुख करयालची ग्राम मुखिया सब को सम्बोधित करते पूछता है -

"नमो नारायण बाबा, तुम कहां से आये हो बाबा ?"

"बेटा हम ऋषिकेश, बद्रीनाथ, गया, चार धाम करके आये हैं।"

मुखिया :- बाबा, तुम से हम ज्ञान ध्यान की बात पूछेंगे, क्रोध तो नहीं करोगे?

एक साधु :- नहीं बेटा, ज्ञान-ध्यान की बात बताएंगे।

एक अन्य मसखरा साधु एक दम जवाब देता है 'क्रोध तो नहीं करेंगे बेटा लोभ करेंगे।'

लोग हंस पड़ते हैं।

मुखिया : - किधर देश से तुम जोगी आये, कहां तुम्हारा गांव -
कहां तुम्हारी बहन भानजी, कहां धरोगे पांव।

साधु : - पूरब से हम जोगी आये पच्छम हमारा गांव -
धरती हमारी बहन भानजी, यहां धरेंगे पांव।

मसखरा साधु: - नौखूओ रे घराटे मुआ एसरा बाओ
मेरा भी लग्या बोलणे रा दाव।
लोग हंस पड़ते हैं।

मुखिया: - किस ने दी ये टंडक - मंडक, किसने दी ये जग माला -
किसने दिया ये भगुआं वस्त्र, किसने दी ये मृग छाला?

साधु: - गुरु ने दी ये टंडक - मंडक, गुरु ने दी जगमाला
गुरु ने दिया यह भगुआं वस्त्र, गुरु ने दी ये मृगछाला।

मसखरा साधु: - मैं भी शेले - ठंड का मारा घर को चला।

मुखिया: - कौन तपस्वी तप करे, कौन नित उठ नहावे ?
कौन अमृत रस उगले, कौन इस रस को खाये?

एक साधु: - सूर्य तपस्वी तप करे, ब्रह्म नित उठ नहाये।
इन्द्र इस रस को उगले, धरती सब कुछ खाये।

मसखरा साधु: - जप - तप मुआ एसरा जाणो बाओ
जेती एसरखे खाणे खे मिलो, तेती ये रोज आओ।
सब हंस - हंस के लोट - पोट हो जाते हैं।
साधु अखाड़े में फिरते रहते हैं और विभिन्न हास्य चेष्टाएं करते रहते हैं। दृश्य में आगे साधुओं का वार्तालाप चलता रहता है।

मुखिया: - माता थी गर्भ में, पिता थे कंवारे, तब कहां थे जन्म तुम्हारे?

मसखरा साधु: - माता थी गर्भ में, पिता थे कंवारे, था यह उस वक्त घर में तुम्हारे।

साधु: - ना बच्चा ना, ज्ञान - ध्यान की बातें करो, सुनो

मसखरा: - सुनाओ।

साधु: - तो सुनो - माता थी गर्भ में पिता थे कंवारे
पिता के मस्तक पर, थे जन्म हमारे।

मसखरा साधु: - धन्य हो महाराज, आपको शत - शत प्रणाम।
अगले दृश्य अन्तराल मैं दो तीन साधुओं द्वारा इसी प्रकार हास्य वार्तालाप होता है।

एक साधु: - जय - जय शिव शंकर कांटा ना लगे न कंकर

दूसरा साधु: - अरे दरिद्री, कुछ खाने - पीने का ढंग कर।

पहला साधु : - बम - बम भोले, बम - बम भोले

दूसरा साधु: - देख रहा मैं लाट साहब के उड़न खटोले

तीसरा साधु: - एक मछेरन सागर तट पर डाल रही थी कांटा

पहला साधु: - अरे, मुझे भी लगा ज्ञान का चांटा।

दूसरा साधु: - चरपट हो तुम बड़े रसीले, एक आंख से लगते भोले

तीसरा साधु: - तन के खोटे, मन के भोले, नाड़े के तुम ढीले।

पहला साधु: - तेरे मन पर काई छाई, पहले इसको धोले भाई,
बम - बम भोले, बम - बम भोले।

दूसरा साधु: - सारी उम्र कट गई मरघट में, घूनी बन गई कोले
बम - बम भोले, बम - बम भोले।

तीसरा साधु: - भांग - धतूरे की यह माया

पहला साधु: - जोगी इसमें क्यों भरमाया।

दूसरा साधु: - अन्त समय कुछ हाथ न आया

सभी साधु: - (समवेत) - छूटे कुटुम्ब कबीले, बम - बम भोले, बम - बम भोले।

एक अन्य कथानक में साधु फिर ज्ञान - ध्यान का वार्तालाप शुरु करते हैं।

मुखिया साधु: - एक का मतलव क्या है?

मसखरा साधु: - जिसको कोई न हो

दूसरा साधु: - नहीं बच्चा, तुम अभी अक्ल के कच्चे हो।

मसखरा साधु: - फिर आप बताइये, एक क्या होता है?

दूसरा साधु: - एक हैं ओंकार, दो चांद-सूरज, तीन त्रिलोक, चार दिशाएं, पांच पाण्डव, छ: ऋतुएं, सात ऋषि, आठ अष्ट भुजाएं, नौ ग्रह।

मसखरा साधु: - (बीच में) दश हुए दशांग, सोलहवे दिन सोला, दरवाजे पादे फोड़ा ठूठा, सतारवें दिने देख्या गूठा।

पहला साधु: - आसन बांधू, पासन बांधू, बांधू कांचन काया,
चार ऊंगल तेरा सिर का खोपड़ा, जटा कहां से लाया।

मसखरा साधु: - आसन खोलूं पासन खोलू, खोलूं कंचन केरी काया
चार ऊंगल एसरा खोपड़ा, जटा उधार है लाया।

पहला साधु: - आसन के मंत्र बोलो रे बेटा।

मुखिया: - आसन बिन्दा आसन बिन्दा आसन बैठे गुरु गोविन्दा
जो जाने आसन की बात, उनके कटे जन्म के पाप।

मसखरा साधु: - आसन बिन्दा, आसन बिन्दा आसन गुरु-गोविन्दा।
सात भारे लकड़िया रे खाड्डा खे कऊं नी नींदा।

पहली साधु: - अरे भाटड़े, यहां ज्ञान की बात हो रही है। ठीक बात करो।

मसखरा साधु: - आले दीत्ती छवाल पताले जम्या,
बहुए दीत्ती धूब साथे सौरा जम्या।''

फिर मुखिया साधु गंभीर होकर संस्कृत के श्लोक गाता है -

''नाहम वसामि बैकुण्ठे, योगिनाम् हृदये न च मम भक्तया यत्र गायन्ति, तत्र तिस्ठामि नारदा।'' और -

माता शत्रु पिता वैरी येन बाले न पाठयन्ति
शोभन्ते सभा मध्ये यथा काकव: ।

कुछ साधुओं का स्वांग आधे घण्टे से डेड घण्टे तक चलता रहता है। इसके कथानक कम-ज्यादा हो सकते हैं। इस अंक में 'जोगण का स्वांग' भी बहुत लोकप्रिय है।

दूसरा स्वांग या अंकः

नट और नटणी का स्वांग बहुत रोचक होता है। इसे बंगाला-बंगालिन का स्वांग भी कहते हैं। इसमें नट कुछ अद्भुत करतब दिखाता है। इसमें तीन करयालची होते हैं जो रंग-विरंगे लम्बे-लम्बे कुर्ते, फटे कुर्ते, पटटू और बड़ी-बड़ी पगड़ियां पहने होते है एक पुरुष नटण बनती है जो साफ सुथरे कपड़े और भारी भरकम आभूषण-हार आदि पहने होती हैं। नटों के हाथों में बड़े-बड़े डंडे होते हैं। कभी-कभी ये करयालची नेवला, गोह या कुत्तों को भी साथ लाते हैं। वास्तव में ये नट उस सुन्दर नटनी को प्राप्त करने को लड़ते हैं और मजाक करते हैं। अखाड़े में पहुंचते सभी नट गणेश की स्तुति गाते हैं-

''गणपति गणेशा बनाइयो मोरी देवा रानी।''

यह स्तुति करयाला दलों की अलग - अलग होती है। नट गाने लगता है- ''बंगाले दी बंगालण नाची मेरी उद्धो''। फिर एक मुखिया करयालची पूछता है-

मुखिया: - तुसी केड़े देश ते आये? केड़ा तुहाडा जिला?

नट: - साडा जिला हिसार।

मुखिया: - तुहारी जात की हैगी?

नट: - साडी जात नट हैगी।

मुखिया: - तुसी मुसलमान जट होंदे?

नट: - नहीं, नहीं भरावां, असी मुसलमान नी होंदे। असी हिन्दू होंदे हन।

मुखिया: - तुहाड़ी पोशाक मुसलमान दी हैगी?

नट: - ये नशाणी मार्शले दी है, असी उदी समय लुटीये है। उदों अस्सी हिन्दू होंदे ह न।

मुखिया: - ये नट्टण की दी है?

नट: - ये मेरी ऐ, ये मेरी ए, सभी नट लड़ते हैं।

इस लड़ाई में मुखिया फैसला करता है कि नटण जिसे

पसंद करेगी, उसकी बन जाएगी। नटण कहती है कि जो नट उसे अच्छे गाने सुनाएगा, वह उसी की हो जाएगी। अन्त में नट विभिन्न प्रकार के पहाड़ी, फिल्मी गीत गाते है जो एक घण्टे तक चलता है। नटण एक नट की हो जाती है।

प्रेम प्रसंग का स्वांग:

पढ़ी-लिखी लड़की का मां-बाप की इच्छा के विरुद्ध शादी करना, विजातीय लड़के से प्रेम करना। किसी घटना का चित्रण- मुंशी और दीवान का प्रसंग जिसमें मुंशी किसी अन्य युवती से प्रेम करता है। दीवान फैसला सुनता है। इसी प्रकार मुनीम और रोलू का प्रसंग जिसमें रोलू को मुनीम की पत्नी प्रेम करने लगती है। इसके पश्चात नाटियां, गंगी, पुराने लोकगीत पर्याप्त संख्या में गाये जाते हैं। यह क्रम सुबह चार बजे तक चलता है। इन प्रसंगों के पश्चात हिमाचल की पहाड़ी प्रेम गाथाएं भी करयाले में लोकप्रिय रही है- राजू, फूल्मू, कुंजू-चंचलों, राजा और गद्दन आदि। करयाला मनौतियों के कारण भी लोगों द्वारा व्यक्तिगत रुप से आयोजित किया जाता है।

लोक नाट्य 'बरलाज':

लोक नाट्य ''बरलाज'' सोलन क्षेत्र का प्राचीन लोकप्रिय लोकनाट्य रहा है जो धार्मिक-दृष्टि से पारम्परिक रुप में आज भी अनेक क्षेत्रों में आयोजित होता है। 'बरलाज' का सम्बन्ध बलि राजा से है जो स्वर्ग पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु विष्णु के पांचवे अवतार वामन ने उसका धरती का राज्य भी छीन लिया था।

'बरलाज' शब्द 'बलिराजा' शब्द का उपभ्रंश शब्द है। बलिराजा, बलराज, बरलाज । भाषा की स्वाभाविक प्रवृति है कि भाषा जटिल से सरल की ओर चलती है। राजा बलि असुरों का अधिपति था। वह विरोचन का पुत्र था तथा पराक्रमी एवं दानी था। उसे अपने सम्मान का अहंकार हो गया था। उसे अपने दान का अहंकार था, अत: विष्णु ने वामन साधु के वेश में उससे दान मांगा। वामन ने बलि से 3 कदमों के बराबर

धरती मांगी। बलि तैयार हो गया। वामन दिखने में तो बौने थे और उनकी टांगे भी छोटी – छोटी थी, किन्तु उन्होंने एक कदम में विराट रुप दिखाते हुए सारी धरती नाप ली, दूसरे कदम से पाताल नापा, फिर बलि से तीसरे कदम के लिए पूछा कि उसे कहां रखे ?बलि ने अपनी छाती की ओर संकेत किया। वामन ने बलि की दान वीरता पर उसे आशीर्वाद दिया। इसीलिए बलि को 'देवता' का रुप मिला।

बरलाज में बलिराजा की कथा के अतिरिक्त महाकाव्य रामायण महाकाव्य के प्रमुख प्रसंगों को संगीत – रामायण की तर्ज पर अभिनय सहित सुनाया जाता है। बरलाज में चार पात्र पारम्परिक साधु वेश में कथा का गायन करते हैं। इनके हाथों में लम्बी छड़ियां होती है और वे विशेष मुद्राओं में खड़े होकर कथा – वाचन करते हैं।

बरलाज के तीन कथा भाग होते है – रमैण, रथौल और 'छोकड़ा'। देवस्थलों में बरलाज रात्रि से प्रातः तक गाया जाता है। बरलाज दयोठन, एकादशी, शरद पूर्णिमा अथवा अमावस्या आदि पर्वों पर आयोजित किया जाता है। प्रायः यह करयाले का पूर्व – धार्मिक – रुप है। करयाले से पूर्व दीवाली के पश्चात इसे मनाने की परम्परा रही है। बरलाज सोलन के प्रायः समस्त क्षेत्रों में प्रचलित रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार दशरथ को यज्ञ समाप्ति पर ऐसा 'वर' मिला था कि उनके ऐसा प्रतापी पुत्र पैदा होगा जो अत्याचारी युग में मर्यादा की 'लाज' रखेगा – इसलिए 'बरलाज' नाम पड़ा है। पहाड़ी साहित्य में बरलाज के अंतर्गत बाघली और धमयाणी बोलियों का मूल रूप वर्तमान है। वर्तमान समय में बरलाज अर्की, धामी, बायचड़ी, माइली, सुन्नी, करसोग, सोलन तथा शिमला के अनेक क्षेत्रों में प्रचलित है। बरलाज को पहाड़ी लोक रामायण कहा जा सकता है।

लोकनाट्य – 'धाज्जा' एवं 'ठोडा'

हिमाचल प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तरह सोलन जनपद में भगत, बांठड़ा, स्वांग, चन्द्रौली, हरण, बुढ़ड़ा आदि के समान्तर 'धाज्जा' लोकनाट्य ठाकुर – राणों के प्रारम्भिक समय से प्रचलित रहा है। धाज्जा लोक नाट्य वैसे तो अनुसूचित जाति के लोगों से सम्बन्धित है किन्तु इस नाटक का प्रमुख नायक क्षत्रिय चाणूर है जो पौराणिक मान्यताओं के अनुसार क्षत्रिय से चर्मकार बन गया था। धाज्जा लोकनाट्य मनौतियों के रुप में दलित समाज द्वारा प्रति वर्ष निर्धारित तिथियों में आयोजित होता हैं किन्तु अभिजात्य वर्ग के लोग भी सिद्ध चाणूर अथवा चानो को देवता के रुप में पूजते हैं।

'धाज्जा' अथवा 'ताज्जा' का मूल – कथा कंस के पहलवान चाणूर से जुड़ी हुई है। भागवत पुराण के अनुसार कृष्ण के मामा कंस ने कृष्ण को अपनी मृत्यु का कारण समझकर उसे मारने के लिए कई षड़यन्त्र किये थे। कंस ने कुवलय नामक हाथी को कृष्ण को मारने के लिए भेजा था, जिसे कृष्ण ने बड़ी वीरता और कौशल से मार कर मथुरा की तंग गलियों में फेंक दिया था। कुवलय हाथी को नगर से बाहर फैंकने के लिए कंस ने चाणूर के दो भाइयों सुवाहु, और चाण्डूल को आदेश दिया जो बलवान पहलवान थे। उन दोनों ने यह समझकर कि मृत – जानवर को बाहर फेंकने पर उन्हें क्षत्रिय बिरादरी से बाहर कर दिया जाएगा उन्होने उसे फेंकने में असमर्थता दिखाई।

पहलवान चाणूर ने अन्त में कुवलय हाथी को मथुरा नगरी से बाहर फेंक दिया, परिणाम स्वरुप उसे बिरादरी से बाहर कर दिया गया। जब कंस के सारे प्रयत्न निष्फल हो गये तो उसने कृष्ण को मारने के लिए चाणूर (चानो) को मल्ल युद्ध के लिए भेजा। कृष्ण और चाणूर का घोर युद्ध हुआ। जनश्रुति के अनुसार चाणूर की मृत्यु तभी हो सकती थी यदि अखाड़े के पास के पीपल के पत्तों को सुखा दिया जाए। जब कृष्ण चाणूर को दो प्रहर तक नहीं हरा सके तो कृष्ण ने छल का सहारा लिया। कृष्ण ने छाया युद्ध का सहारा लिया। वेश बदलकर कृष्ण ने चाणूर की पत्नी से चाणूर की मृत्यु का रहस्य जान लिया।

कृष्ण ने अपनी माया से पीपल की जड़ो को सुखवाने को पीपल की जड़ों में दीमक भेज दी। चाणूर ने यह देखकर दीमक को नष्ट करने के लिए मुर्गा भेजा। कृष्ण ने मुर्गे को मारने के लिए बिल्ली भेजी। चाणूर ने बिल्ली को मारने के लिए चमगादड़ पैदा किया। कृष्ण ने मायाजाल से दिन में देखने की चमगादड़ की आंखों की शक्ति छीन ली। अन्त में दीमक ने पीपल की जड़ों को काट डाला। पीपल के पत्ते सूखने लगे। कृष्ण ने चाणूर को मरणासन्न कर डाला परन्तु चाणूर की वीरता से बहुत प्रभावित हुए। चाणूर ने अपने उद्धार हेतु प्रार्थना की।

कृष्ण ने चाणूर को वरदान दिया कि वह 'चानो सिद्ध' के रुप में याद किया जाएगा और पूजा जाएगा। उसके साथ सदैव सौ सान्याल, 12 जाति, 84 सिद्ध, 64 जोगणियां, 52 वीर, पंज प्यारे और 360 सिरकियां पूजी जाएगी। 'धाज्जा' या 'ताज्जा' का अभिप्राय है सिद्ध चानो (चाणूर) को ताज पहनाना। धाजा नाटक मंडली में चानो सिद्ध को मोरकुकुट पहनाया जाता है जो तीर - कमान चलाने की मुद्रा में होता है। यह कृष्ण का वरदानी प्रतिरुप बन जाता है।

धाजा में डमरु, नाद, ढोल, छैणा, हारमोनियम आदि वाद्य यंत्र कथागायन में प्रस्तुत होते हैं। इनके बारहसिंगे के सींग से बने नाद को बहुत पवित्र माना जाता है। दहाजा या धाजा मण्डली में 12 - 15 तक कलाकार होते है जो विभिन्न स्वांग करते हैं। इन्हें भगत कहा जाता है। 'बारु' नामक भगत को प्रथम सारवी माना जाता है। धाजा के दौरान सारी रात मशाल जलाई जाती है। यदि यह उलट जाए तो बीमारी फैलने का अंदेशा होता है। फिर धाजा करवाकर ही बीमारी दूर हो सकती है। करयाले की तरह धाजा में भी बीच प्रांगण में आग जलाई जाती है। उसमें घी, शक्कर और तेल के छींटे बार - बार डाले जाते हैं।

धाजा में विभिन्न स्वांग दिखाये जाते हैं। इसमें कृष्ण गोपियों का स्वांग चन्द्रौली द्वारा कृष्ण का वेश धारण कर बांसुरी लिए पुरुष द्वारा प्रदर्शित होता है। इसमे तीन कलाकार होते है। नाद, डोरी, लम्बी सफेद दाढ़ी धोती और जनेऊ धारण किये नारद का पात्र आता है। नारद और सखी घुंघरु पहने होते हैं। वे कृष्ण सम्बन्धी तालों में निबद्ध सुन्दर भजन गाते हैं। इसमें नारद विदूषण की भूमिका भी निभाता है।

धाजा में दूसरा स्वांग बांवरे का है। जो माता के शाप से अधपगला है। वह अंगारो पर चलता और आग खाता है। इसमे करतब की प्रधानता रहती है। हास्य विनोद की प्रधानता के लिए इसमें दो पात्र वार्तालाप करते रहते हैं । इनमें लोकगीतों का संगीत भी चलता रहता है।

इसमें करयाले की तरह नटणी का स्वांग होता है जिसमे भानुमति के खेल और करतब दिखाये जाते हैं। जैसे मुकुट लगाकर, घुंघरु बांधे नारी वेशधारी पुरुष कलाकार तलवार पर पांव और पेट के बल चलता है। अथवा ज्योति की थाली घुमाकर तलवार लेकर शक्तिरुप में ताल पर नाचना है। डाऊ - चेला का स्वांग भी काफी रोचकता से प्रस्तुत होता है।

धाजा में अन्य लोक नाट्यों की तरह गायन की अधिक प्रधानता रहती है। हनुमान - भैरो का स्वांग, गद्दी - गद्दण और पहाडिया देव के स्वांग दर्शकों का मन मोह लेते है। प्राचीन समय में घोड़े का स्वांग और बाबा हस्त बली का स्वांग भी दिखाया जाता था।

धाजा की एक विशेषता है कि इसमें धार्मिकता की अधिक प्रधानता रहती है। धाजा के अन्त में आमन्त्रित देवताओं को वापिस भेजा जाता है। ये कार्यक्रम प्रात: तक चलते रहते है। वस्तुत: सोलन जनपद के सभी लोक - नाटयों में कृष्ण गोपियों के प्रसंग को एक समान प्रधानता मिली है।

इनके अतिरिक्त चन्द्रौली के माध्यम से स्वांग नाट्य भी सोलन जनपद में प्रचलित रहा है। बघाट, बाघल, हण्डूर आदि राजदरबारों में रासधारियों द्वारा रासलीला के आयोजन भी राजमहलों में होते रहे हैं। इन कार्यक्रमों में कृष्ण लीला, गोपियों के विरुद्, दानलीला तथा पूर्णिमा का रास आदि दृश्य संगीत के माध्यम से प्रदर्शित किये जाते रहे हैं।

'ठोडा' खेल जो संगीत एवं अभिनय के साथ प्रस्तुत होता है उसे भी कुछ विद्वान नाट्य मानते हैं, किन्तु यह विशुद्ध रूप से खश जाति का परंपरागत स्मृति खेल है। इसे नाट्य के अंतर्गत लेना उचित नहीं है।

पहेलियाँ एवं लोकोक्तियाँ

पहेलियाँ – (पोलणियाँ)

1. ओ गई, ओ आई !	नजर
2. नालीए जाऊं नालीए आऊं, डाग नी मिलो तो माणुआं खाऊं !	बन्दूक
3. एत्ती रा धागा, मंडीया लागा !	सड़क
4. माए जम्मी नी, पूत लादे रीये !	धूआं
5. जक्कड़ – मक्कड़ का बीन्ना आगी जलो ना पणीए सीन्ना !	परछाई
6. सूइने रा सरु, एठे पड़ो तो आऊं क्या करुं ?	हीरं
7. अलणीए नी मलणीए, मल्या सारा देश आपू बैठी शुकीया धारा पूत खेलो सारे परदेश	अखरोट
8. एक स्याणी जी रांड, तेसा रे शिरो पांदे पांड	घोंघा
9. धारा पोरो ते आया एक ऐड़, आगे खुटटू न पीछे पैड़	बादल
10. धारा पोरो ते आया एक स्वामी आपू छोटा दाढ़ी लाम्बी ।	जौ
11. काठो रा कठेरड़ा, लोहे रा बवाण तेत पांदे नाचो घूड़ीया मशाण !	घराट
12. एक ऊख, तेदे कोणे रा दुख !	केला
13. चार घड़े शरबत भरे, बिना टकणीए मूंदे धरे।	थन
14. चान्द – सूरज की लगी लड़ाई कुन्ता पैण छड्वाणे आई।	चाबी
15. चीट्टी चादर चार कनारे एडी दिल्ली दो बणजारे।	चांद – सूरज
16. चार खड़ीया चार फेटीया चार सूरमादानिया, धींग तोता बोलदा जे काल फौजा आणिया।	बेदी
17. चांगड़े रहूं चांगड़े चांगड़े लाऊं ताणा जो नीं बूझो मेरी बुझाणी तेस रा बाओ लबाणा ।	मकड़ी
18. पैडीए – पैड़ीए छप्पर छवाया चंगा लाया दार। सात करोड़ देवता बस्या फूला बराबर भार।	मधुमक्खी का छता
19. धरत कांबे, धरतोला कांबे बैठा राजा पाणी मांगे।	घराट
20. आले दीत्ती छवाल पताले जम्या, बहुए दीत्ती जूब, शौरा जम्या।	कचालू
21. अम्बाले बजी ढोलकी प्याले लग्या ब्याह, पूछो इन्ना स्याणेया – स्याणेया बिना ब्यूए क्या ?	मशरुम
22. तुम्हारे नी हमारे नी, राजे रे भंडारे नी, राजे दित्या धरना, आसा केता मरना ?	बर्फ
23. वार छलाका पार छलाका मंझ नालीया जंभूरु पाका!	मक्खन

24. हरी थी, जब भरी थी, हरे वन में रहती थी, आ गया
जट्ट, ले गया फट्ट, मैं क्या कर सकती थी ? — मक्की

25. एक कौड़ी, सारे भीतरो दे ओड़ी । — लट्टू - बल्ब

26. पहाड़ी एठे एक बाकरी तेसा रा पेट गया आफरी । — फुल्का

27. एक ओड़ू, तेदे काला जा कलोड़ू । — डोडा

28. हूँ पड़ूं चूं पड़ूं, काठो रो गुड्डी, लोहे रा मुंह । — लुहार - खाल

29. कटोरे पे कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा । — नारियल

30. धग - धग दाता, धरती खणाता, दस खूटीया दो पैर चलाता । — हलबाई - बैल

31. घाढ़ी पांदे एक पठार, क्वाड़ुवो तो क्वाड़, नहीं तो आपणे
माया बावा पक्वार । — टौंर की टाट

32. चील्ली कुत्ती चील्ले तेरे कान, मां नी खाया कुत्तीये
आंऊ तेरा जजमान — बिच्छू - बूटी

33. इतनी की तीतनी की, ती त्याओ बढ़दी जी आऊं । — मिर्च - पिपली

34. इतनी की तीतनी की, पिंगा झूटदी, शैरा देखदा तो
केड़ी मेकद्दी। — ककड़ी - खीरा

35. बणे जाई बणे आई सिर गन्दवाया, घरो खे आई। — बग्गड़ घास

36. एक ऊई, से सारा बण ल्याई पचरुई । — कंघी

37. खाल, खालो पांदे डाल, डालो पांदे डिबड़ी, डिबड़िया
पांदे साग, सागो पांदे आग । — चिलम

38. मढ़ा जा गूगनू, बड़ा जा पेट, चल मेरे गूगनू,
मण्डी - सुकेत । — नरेलू

39. पारीये गया एक चमचम्याक आठ खूटीया, चार नाक। — पालकी

40. अटक - पटक टेबुआं टैं, पात बड़ा तो चींडूआ नैं । — पटवांडू - पात

41. ऐणा - सैणा बाकरीये जित्या बकरवाल,
जोरुए जित्या खसम आया डूबण - काल। — (दारू हल्दी)

42. आला - माला, तीन पलोटीया एक्खे थाला । — कशमल कांटा

43. एक एड़ी रस्सी, से दिनो खे भरी राती खे खाली । — (अलगनी)

44. चार चलन चले, दो दीपक जले पीछे चौंरे झूले । — हाथी की सूंड

45. वार - पार भीत, मंझे सुइने री रेल — आग

लोकोक्तियां – (रव्वाणे)

1. स्याणेया समां पछ्याणेया	बुद्धिमान सामर्थ्य के अनुसार बात करतें हैं।
2. नभाग बी जम्मया रात बी प्याई	बड़े दुःख के बाद कुछ प्राप्त होना ।
3. बशर्मा डाल जमेया मेरे छायां के ऊआ ।	बहुत बेशर्म
4. जूआं पीछे रवींटू नी फुकणे	समस्या से घबराना जिसका समाधान हो सके।
5. सूतेया देया रे काटे ई जमोए ।	बैठे हुए को कुछ नहीं मिलता ।
6. मांगनी आई पर मीना छाड़ि की ।	बेमौका काम करना ।
7. गाईरीया करवाई और करवाई रीया गाई।	रवानदान में अच्छे – बुरे पैदा होते ही है ।
8. मुचो बीचे माछलिया टोलो ए ।	घटिया आदमी से बड़ी उम्मीद करना ।
9. सन्यारो री टकटक ल्वारो री एरवे ।	बहादुर आदमी एकाएक सफल होते है ।
10. एड़ा नी मनिन्दो जो काल पशिन्दणा पड़ो।	पहले ही ठीक निर्णय लेना ।
11. काला आरवर मैशी बराबर ।	अनपढ़ व्यक्ति ।
12. कांदा पादे जुंगड़ा घरो रवे आका ।	पास वस्तु को दूर ढूंढना ।
13. गाई पीछे बल्द दौड़ो पर मजा नेवेए जो बल्दो पीछे गाए दोड़ौ ।	गुणवान क्या नहीं कर सकता ।
14. जेस रवे रवड़े नी दिशुआ नेसरवे बैठी की क्या दिशणा ।	समय पर लाभ न उठा पाना फिर बाद में पछताना ।
15. जेस बाणी नी ओ से कोला रवे देओ पचाके ।	मारने का दिरवावा करना ।
16. गड़ दू करी ती ।	मलिया मेट कर देना ।
17. नाई दी पेड़ दीती चीकड़े	किया काम बिगाड़ना ।
18. आउंलेया री रवट्याई ओर ठगड़या री गलाई बादो ने लगो पता ।	आंवले की रवटाई और बुजूर्गो की बात बाद में मीठी लगती है।
19. पारिये जांदिये बलाई तू मेरेयागे लेया आइ	दूसरे के झगड़े घर लाना ।
20. बिना पैसेया रा वकील ।	बेमतलब पक्ष लेना ।
21. बेवकूफ बणजारा आपू चको ब्याजू लोका रवे देयो त्वारा ।	मुर्रव व्यापारी ।
22. सरादी कुड़ी डुमणेया रे तूरी ।	अधिक प्रशंसा से आदमी बिगड़ जाता है।
23. भई नाईया बाल कितने ए भई सामणे ई पड़ने ।	मेहनत के विषय में पहले ही पूर्वानुमान लगाना ।
24. माथे री आओ क्याड़िया तेवे बाट नी दिशो त्याड़िया।	भाग्य विपरित हो तो सब गलत हो जाता है ।

25. जेवे दिन आओ बांगे तेबे टूंडा लओ डांगे ।	विपरीत भाग्य में हरेक हानि पहुंचाता है ।
26. सावण मीने घर जले, भई सूई मैश मर जाये । विपदा दे दिन आ पड़े, भरी चिलम डिग जाए ।	विपरीत और दुर्भाग्य में सब उल्टा हो जाता है।
27. राडे मारे सेओ मुऐ बिन बल्दे करसान, आधिया क्वालिया सेओ मुऐ जिना री जांगा दे नी प्राण ।	बदचलन स्त्री वाला पति बिना बैलों के किसान और चढ़ाई में कमजोर आदमी मृत प्रायः ही होते है ।
28. जीभे वे लटबावलिये जपे आल पताल जीभ गई टाटुवे नो, जूता सहे कपाल	गन्दी वाणी वाला मार खाता है ।
29. रंडिया रा पूत, सौदागरो रा कोड़ा खाए बौत कमाये थौडा ।	वैश्या पुत्र औ सौदागर का घोड़ा मुफ़त का खाने से बेकार हो जाते हैं ।
30. जेती देखी तवा-परात तेती कटी सारी रात	घुम्मकड़ जिन्दगी ।
31. डाले राती कदी नी प्यांदिया ।	घर बनाना जरुरी हैं ।
32. कूफरी मैशी कदी नी डूबिया ।	छोटी अड़चनो से घबराना नहीं चाहिए ।
33. गलो दे पड्या ढोल बजाना ई पड़ो ।	जिम्मेदारी निभानी पड़ती है ।
34. काडेया रे मूंह कोई नी पल्यांदा ।	होनहार विरवान होत चिकने पात ।
35. शेरा रे मुंह कोई नी त्वांदा ।	स्वाभाविक सौन्दर्य ।
36. माथे री कोई नी छुडवाई सकता ।	भाग्य कोई छीन नहीं सकता ।
37. बाल संवारी की कदी नी ऊंदे मुर्दे हल्के ।	मामूली क्षति पूर्ति की सोचना ।
38. जदुओ खे फाला तपणा, तदुओ खे सूई गली जाणी।	देर का उपचार ।
39. बाड्या दा घा कौ दिन खल्वाणा ।	संचित कमाई देर तक नहीं चलती ।
40. दवाईया रे मड़ ओर दरयावो रीया सलका ।	हवाई किले बनाना ।
41. बोदी नो तेल नी मनसा पकौड़ेया दिया।	सामर्थ्य से बाहर बात करना ।
42. बौत बीती थोड़ी रही ।	अधिक दु:ख काटने के बाद शेष समस्याओं से न घबराना।
43. पाले नी पड़ीया जगर्नाथ जी रीया आड़िया ।	गरीब से क्या मिलेगा ।

44. पाले नी तेला चढ़ना रेला ।

45. नंगे क्या नहाणा क्या नचोड़ना ।

46. नांगेया रे गांव बसेया नेबे से जिऊणा की मरना ।

47. जाये गोरे ओ न्हाये गोरे नी ऊदे ।

48. माया रे पेटो ने कोई शिखी की नी आऊंदा ।

49. सिंहणिया रे जाये दे गीदड़ कदी नी ऊदे ।

50. टूटिया रा कोई दारु नी ।

51. चिन्ना ने बड़ी कोई डायन नी ।

52. वेहमो री कोई दवा नी ।

53. जेती चार पांडे हो सेओ ठणकदे रओ ।

54. चन्दरे रीया पन्द्रा भोले रीया सोला ।

55. आपू खरे तो जग खरा ।

56. रोज ई दयालिया नी ऊंदिया ।

57. ओच्छे रा गोच्छा ।

58. गलिया बी करवाड़ा बी ।

59. चकड्यादी मैश बण बूट छीटो ।

60. झोटे – झोटे गड्डो, बण बूटा रा नाश ।

61. चाबी चाबी की खाणा ओर देखी
    शुणी की गलाणा कदी नी खता खाणा ।

62. धना रा गाओं पराला ने पछयाणुओं ।

63. कोठिया रा पना ड्योढिया ते ई लगो ।

64. करो ते बैरी ओर पिंडे ते व्याध ।

65. मस्त मलंग लड़े नशंग ।

66. बीखा रा कूथ्या दा कोहा खे पड़ो ।

67. गुड़ला नेरे दे बी पछ्याणुओ ।

68. चलदे घराटो दे गट्टी पाणा ।

69. काठो री आंडी बार – बार नी चढ़दी ।

70. सतो रा टापरु ओर मैलो रा टाकरु कदी नी राचदा ।

71. दशा री लाठी एक्की रा बोझ ।

72. नवा नौ दिन परवाणा शौ दिन ।

73. केथी शराणे सौ पैर पांदिया ई आऊणे ।

74. बोलेया रे बोले नी ओ तो बिन्दलू
    तो केथी नी गये ।

75. हीरे री पछ्याण जौरी ई जाणो ।

76. माखिया खे ठूठा दरयाव ।

77. स्नेहे वणज पराए खेती कदी नी ऊंदी ।

78. चांदणी दयाली कदी नी ऊंदी ।

79. ना खांऊ ना खाणे देऊं ।

80. कावा खे कावटू प्यारे रावा खे रावटू प्यारे ।

81. एड़ा पूत न जाया माये, कणक बेच के कोदा खाये ।

82. घी धमाका बूझ बहुए ।

83. जितनी तूं चणी – पणी तितनी मैं शौ मकोड़ी गणी ।

84. आंवले सिर नहाणा ।

85. घरो ते हल्का से बाहरे पौणी की उड्डो ।

86. मकोड़िया खे फांख मरने ई लग्गो ।

87. भूलीगे राग रंग भूलीगी छकड़ी, तीन
    गल्ला याद रईया लूण, तेल, लकड़ी ।

88. गीदड़ो री मौत आओ तेबे से
    बंगाल्या रे डेरे खे दौड़ो ।

89. अलणी कढ़ी से वी छीटो ।

90. मन चंगा तो चोले दे गंगा ।

ऐतिहासिक दुर्ग – सोलन क्षेत्र

हिमालयी क्षेत्रों में वैदिककाल में असुर राजा शम्बर द्वारा सौ दुर्गों के निर्माण का उल्लेख मिलता है। हिमाचल के अन्य क्षेत्रें की तरह सोलन जनपद में गोरखों द्वारा 1805 में अनेक ऊंची पहाड़ियों पर गढ़ों के निर्माण के विषय में जनश्रुतियां मिलती हैं। यहां बड़े दुर्गों में मलौण किला, रामशहर किला, बहादुरपुर किला, बनासर किला, धारों की धार किला, अर्की का किला महत्वपूर्ण हैं। अन्य छोटी रियासतों कुठाड़, बेजा, बघाट आदि में महलों के साथ छोटे – छोटे किले निर्मित किए गए थे।

पहाड़ों के इतिहास में मलौण किला जो बाघल की हंडूर सीमा पर ऊंची पहाड़ी पर निर्मित हिंडूर के राजा भूपचन्द द्वारा 1755 में बनाया गया था बहुत महत्वपूर्ण है, जिसे जनश्रुतियों के अनुसार 'गोरखों का किला' कहा जाता है। गोरखों ने 10 वर्ष तक यहां निवास किया। अन्त में अंग्रेज सेनापति औक्टर लोनी ने पहाड़ी राजाओं की मदद से अमर सिंह थापा के भाई भगत सिंह थापा को मार कर यहां विजय प्राप्त की थी और गोरखों के शासन का अंत कर दिया था। 4500 फुट की ऊंचाई पर निर्मित इस दुर्ग की लम्बाई 400X50 मीटर और ऊंचाई 20 मीटर तक हैं। इस विशाल दुर्ग की दीवारें बहुत मोटी थी जिससे संयुक्त सैंकडों कक्ष थे।

इसमें हजारों सैनिकों के रहने की व्यवस्था थी जिसमें रानीमहल, सभागार, अनाज भण्डार, तालाब, शौचालय सभी कुछ थे। आज इसके खण्डहर इतिहास का स्मरण करवाते हैं।

रामशहर का किला भी अर्की – नालागढ़ मार्ग पर बना एक विशाल किला है जिसे हंडूर के राजा रामचन्द ने 1578 में बनाया था। यहां भी गोरखों ने आवास किया था । बघाट के अणु गांव की पहाड़ी पर निर्मित धारों की धार का किला 'वाचिंग टावर' की दृष्टि से बनाया गया था जिसकी लम्बाई – चौड़ाई 60X60 फुट थी। कहते हैं गोरखों ने इसे अपने रणनीतिक उपयोग के लिए एक दिन में ही पुनर्निर्मित कर दिया था। इसी प्रकार धर्मपुर के पास गोरखों के समय बनासर किले का निमार्ण

किया गया था, किन्तु गोरखों ने कब्जा करके इसे पुनर्निर्मित करके यहां आवास बनाया था। बाड़ीधार अर्की में अर्की के राजा ने 1805 से पूर्व एक लघु किले का निर्माण किया था जिसे कहलूर के राजा ने कब्जे में करके लकड़ी के किले का निर्माण करवाया था। इसके अतिरिक्त रियासतें कुठाड़, बेजा, अर्की, बघाट, महलोग, कुठाड़, क्योंथल आदि सभी में महलों के साथ युद्ध के समय सुरक्षा के लिए लघु किलों का निर्माण किया गया था, किन्तु आज सारे किले ध्वस्त हो चुके हैं।

इमारतों में चित्रकला - रियासती राणा-ठाकुर अपने महलों में चित्रकला को महत्त्व देते रहे हैं। दरबारों में गायक, बजंतरी, कवि-भाट सम्मान पाते थे तथा उन्हें भूखण्ड प्रदान किए जाते थे। रियासतों में महलों में चित्रकला की दृष्टि से राजा किशन सिंह 1845 ने कांगड़ा शैली के चित्रकार देवीदास खत्री को नौकर रखकर दीवान खाने में चित्र बनावाए जो कला की दृष्टि से विश्वप्रसिद्धतथा उत्तम हैं। इसी शैली पर हिण्डूर, बघाट, कुनिहार में शासकों ने 19वीं शती में चित्र बनवाए जो आज धूमिल पड़ गए हैं। इन में बेलबूटे, पौराणिक, ऐतिहासिक देवी देवताओं के चित्र तथा अग्रेजों, मुसलमानों से सम्बन्धित विषय हैं।



अर्की राजमहल एवं दूर्ग

टांकरी लिपि का ऐतिहासिक दस्तावेज़

सोलन के क्षेत्रों में टांकरी लिपि में प्राचीन बहियां तथा राजकीय दस्तावेज़ प्राप्त होते हैं। आज़ादी से पूर्व महाजन, व्यापारी तथा राजकीय लिखा-पढ़ी टांकरी लिपि में होती थी, इससे संबंधित उपलब्ध दस्तावेज़ इसके प्रमाण हैं।

टांकरी लिपि की अर्की शैली (सोलन क्षेत्र) में दाड़लाघाट के छटेरा गांव के अमी चंद गौतम एवं श्रीराम गौतम के संग्रह में प्राचीन बही-खाते उपलब्ध हैं। संवत् 1939, सावन प्रविष्टे 30 के आसपास के टांकरी में लिखित दर्जनों दस्तावेज़ बहियों और राजकीय अभिलेखों के रूप में उपलब्ध हैं।

इस वंश के पं. रामदास बोतलिया बाघल के राजा ध्यान सिंह पंवार के दरबारियों में महत्त्वपूर्ण थे। ये उपाध्यायी के अलावा व्यापार भी करते थे। बाघल रियासत के बाहर भी इनका व्यापार था। सोलन ब्रुअरी की फैक्टरी में प्रारंभ में इनका भी शेयर था। कंपनी को बोतलें उपलब्ध करवाने के कारण इनको बोतलिया खानदान के रूप में पहचान मिली। इनका अनाज और गाय-भैंसों का व्यापार बाहर कहलूर, कुनिहार, हलोग, सुन्नी, क्योंथल आदि रियासतों में भी फैला था।

उपलब्ध बहियों में विभिन्न प्रकार की टांकरी का रिकार्ड मिलता है, क्योंकि टांकरी स्थानीय बोलियों में लिखी जाती है, अतः जो भी मुंशी लेखा-जोखा रखता था वह अपने क्षेत्र के शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक तौर पर करता था। वैसे इस क्षेत्र में टांकरी को 'महाजनी' भाषा कहा जाता था। यद्यपि विद्वान इस लिपि को 'टक्करी', 'टाकरी', 'लंडा' आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, फिर भी दीवारों, पत्थरों, भोज पत्रों, कपड़ों पर टंकित होने से इसे प्रायः टांकरी कहा जाता है।

अर्की की टांकरी में मंडियाली तथा क्योंथली का प्रभाव है। इसका कारण अर्की का इन क्षेत्रों से संबंध भी हो सकता है। अर्की क्षेत्र के अनेक देव-मोहरों तथा वंशवलियों में टांकरी लिपि मिलती है।

प्रस्तुत है दाड़लाघाट के छटेरा गांव की ज़मीन के अस्थाई रूप से बिकने ('वारसी' बनाने अर्थात् ज़मीन का रहन रखना) का राजकीय

अभिलेख। इस लिखा-पढ़ी में लगभग 20 एकड़ ज़मीन जो पं. रामदास बोतलिया के पास थी, उसे रामचरण नाम के ठाकुर को 'वारसी' बना कर दिया गया था। कुछ वर्ष बाद रामदास ने इसके पैसे लौटा कर इसे वापस ले लिया था। यह लिखा-पढ़ी महाराज ध्यान सिंह पंवार के वज़ीर तथा भाई मियां मान सिंह ने 1939 वि. संवत् में अर्की ठाकुरद्वारे में वक्शी जीऊणु राम से लिखवाई: -"ऊँ श्री महाराज ध्यान सिंधे जी बचने प्रती हजूर मींये मान सिंघ ग्रां: एक छटेरा जीमी टके के 30-दी देउठीया दे बामणे नुमाले लटुरीए ज्याले रामदासे राम चरने नो बारसी करी के दीत्ता। जींहा होरी कनैतां बामणे होरी दी बारसी हो, उस ही मुजब छटेरा तुसां नो दीत्ता। इस गराएं पर आए रूपए 1000/- अखरे हजार, श्री सरकार लणा। इस जीमीं दा पहेला मुदाला देखो, धान, कणक सो रामदासे श्री सरकार अरज कीती। जो मुदा नहीं पुगदा धान जुंण 30/- कणक जुंण 9/- फाए सलीण जुदा लंदे खे, सो धान कणक, सलीणा सभ छटेरा दा मुदा माफ कीत्ता। ऊ एक रूपया धाना कणका सलीणे सणे रू 30/- अखरे भी ती रूपए बरशा एक प्रती लेणा। संवत 39 दी खरीफां नो रूपए 20/- सं. 40 दी रबी नो रू. 10/- दुही फसलां बीच वरशा प्रती तीही रोक लेणे। होर धान कणक सलीणा कुछ नहीं लेणा। ती ही रूपए लेणे। जीमीं बारसी होरी खांदे रहेणा। मालके दा भला चाहणा। (संबत 1939 साउण, प्र. 30-शुभं ।।)

ऊँ इसा जीमी साथ डाली बूटीया हौणा सी उबना तुसां बरतदे रहेणा। सं. प्र. 30, लीखा मुकाम अर्की। हुकमे वगसीए जीवणुए दे। दुआं साथे मीले से रद हो। सही ऊणा।"

सोलन क्षेत्र : गुरु-सिक्रव परम्परा

15 वीं शती के आस-पास हिन्दू धर्म की जटिल पद्धतियों के विरोध में एकेश्वर वादी सिक्रव पंथ का प्रादर्भाव हुआ। हिन्दू धर्म के कर्मकाण्ड तथा रीति-रिवाज अंधविश्वास का रूप ले चुके थे। अतः गुरू-नानक देव ने हिन्दू-धर्म के सार-तत्व को लेकर बिना भेद-भाव जाति-पाति रहित सर्वजन-हिताय सिक्रव-पंथ की नीवं रखी। कर्मकांड और वैदिक अनुष्ठानों को छोड़कर सिक्रव धर्म में कीर्तन-भजन, नाम-स्मरण, जपपाठ, भोज, धार्मिक कथाएं, जागरण आदि हिन्दू-धर्म की तरह ही अपनाए गए, गुरू ग्रंथ साहिब के प्रथम रचेता नानक बने।

सिक्रव पवित्र-ग्रंथ 'ग्रंथ-साहिब' में कबीर के 534 पद रविदास के 40 पद नाम देव के 62, त्रिलोचन के 5 भक्त सैण का एक पद, भक्त परमानन्द का एक पद प्रारंभ में लिपिवद्ध किये गये। बाद में भक्त वेणी के 3 पद बंगाल के जयदेव के 2 पद, राजस्थान के धन्ना के 2 पद, पीपा का एक पद, शेरव फरीद के 123 पद सम्मिलित किये गये थे। गुरू नानक जी के स्वरचित 973 पद तथा महापुरूषों के 791 पदों को पोथी साहिब के नाम से पुकारा गया था। कालान्तर में बाद के गुरूओं के पद शामिल करने पर इसे ग्रंथ-साहिब को नाम से पुकारा जाने लगा।

गुरू-परम्परा में इसका प्रचार करने वाले शिष्यों ने सिक्रव पंथ को व्यापक आयाम दिया। इसकी शारवाएं अपने-अपने ढंग से बनती गईं । गुरू नानक ने अपने जीवन काल में अपने 4 शिष्यों के साथ समस्त भारत वर्ष में धर्म प्रचार के लिए 3 यात्राएं की थी, जिन्हें सिक्रव- भाषा, में ''उदासियां'' कहा जाता है। इन उदासियों के अन्तर्गत उनके शिष्य साथ रहते थे। ये थे- झाडू कलाल, सैदो धेये, सीहा छींबा तथा हसू लोहार। ये सभी निम्न वर्ण से थे तथा कारीगरी का काम करते थे, जबकि सभी सिक्रव गुरु रवत्री जैसी जातियों से थे। वस्तुतः वैदिक धर्म की तात्कालीन कर्मकाण्डीय रीतियों से

विमुख होकर तथा अस्पृश्यता से त्रसित निम्न जातियों ने सहज पूजा - पद्धति तथा समानता वाले पंथों को अपनाया।

गुरू नानक देव की धार्मिक यात्राओं अर्थात उदासियों के कारण इनके अनेक शिष्य बनते गये। ये जहां-जहां भी रुके थे वहां सिक्ख-पंथ के गुरूद्वारे निर्मित हुए। इसी प्रकार गुरू गोविंद सिंह जी के हिमालयी क्षेत्रों में पदार्पण के स्थलों पर भी पवित्र स्मृति-स्थल निर्मित हुए। कुल्लू में मणीकर्ण, रिवालसर, पौंटा साहिब, नादौन, ऊना, धर्मशाला, शिमला, नालागढ़ आदि क्षेत्रों के गुरुद्वारे उसी समय की स्मृतियां हैं। अनेक कथांए एवं मान्यताएं आज भी जनमानस की आस्था के आधार बने हुए हैं।

गुरुओं के शिष्यों के नाम पर हिमाचली क्षेत्रों में गुरुद्वारे वर्तमान हैं। गुरु नानक देव के साथ बाला और मर्दाना साथ भ्रमण करते थे। अत: इन्हें भी समान रुप से श्रद्धा विश्वास से देखा जाता है। जवाहर सिंह और खड़ग सिंह इसी प्रकार के शिष्यों में से थे।

गुरु-सिक्ख परम्परा से सम्बन्धित शिष्य बाबा जवाहर सिंह के गुरुद्वारे सोलन जनपद में विशेष महत्त्व रखते हैं। हिन्दुओं का पवित्र हिमालयी तीर्थ मणीकर्ण सिक्खों का भी एक पवित्र धार्मिक-स्थल है। यह शिवस्थली तो है ही यहां अनेक ऋषि-मुनि, सनतकुमार, कार्तिकेय, यमदग्नि तथा परशुराम ने कई वर्षों तक तपस्याएं की थीं। गुरुनानक शिष्य मर्दाना के साथ यहां कई वर्षों तक ठहरे थे। अत: बाद में यहां गुरुद्वारे का निर्माण करवाया गया।

एक दंतकथा के अनुसार उनके शिष्यों ने जब यहां आग उपलब्ध करवाने की अरदास की, तो गुरु नानक ने उन्हें एक पत्थर उठाने को कहा। शिष्य के पत्थर उठाने पर उसके नीचे गर्म पानी का स्रोत फूट पड़ा। गुरु नानक के आदेश पर शिष्य मर्दाना ने कुछ रोटियां बनाकर जब स्रोत से निकालनी चाही तो वे डूब गईं। तब नानक जी ने मर्दाना से कहा कि अकाल पुरख के आगे हाथ जोड़कर अरदास करे कि

भोजन से पहले ''पहली रोटी'' आपके नाम पर चढ़ाऊंगा। मर्दाना के अरदास करने पर रोटियां ऊपर आ गईं। तब से यहां सदावर्त लंगर की परंपरा चली। यहां के गुरुद्वारे में भक्तों तथा सैलानियों के लिए आज भी अखंड लंगर चल रहा है।

मण्डी नगर में ऐतिहासिक गुरु द्वारे की स्थापना सिक्ख गुरुओं में कलम और तलवार के धनी गुरु गोविन्द सिंह जी से सम्बंधित है। इस गुरुद्वारे को 'दमदमा' साहिब के नाम से जाता है। दमादमा गुरुद्वारे में गोविन्द सिंह जी की 5 पवित्र-वस्तुएं रखी हैं-पलंग, तलाई, बन्दूक, और कुम्भी और तलवार। कुम्भी में बारुद रखा जाता था, जिसकी लम्बाई 7 फुट 4 ईंच है। ऐतिहासिक गुरुद्वारे का सम्बन्ध सेनवंश के शासक सिद्धसेन (1684-1727 ई.) के समय से हैं। 1701 ई. में मण्डी से 24 कि. मी. दूर रिवालसर स्थान पर गुरुगोविन्द अपने 500 सैनिकों के साथ आये हुए थे। उन दिनों गुरू का संघर्ष दिल्ली के मुगल बादशाह औरंगजेब के साथ चल रहा था जो बहुत क्रूर और अत्याचारी शासक था। गोविन्दसिंह जी ने रिवालसर में पहाड़ी रियासतों की सभा बुलाकर राजाओं को अत्याचारी और कट्टर पंथी औरंगजेब का नाश करने के लिए ओजस्वी भाषण देकर पहाड़ी राजाओं में जोश भर दिया जिससे उनके मन का डर दूर हो गया। सिद्धसेन भी वहां अपने तीन बेटों के साथ पहुंचा था। वह गुरु से इतना प्रभावित हुआ कि उन्हें अपनी राजधानी मण्डी में आने का निमंत्रण दिया। गुरुजी ने निमंत्रण स्वीकार किया।

सिद्धसेन और उनके बेटों ने गुरु जी की पालकी को स्वयं उठाया। कहते हैं कि यह पालकी सारे रास्ते में राजा और उनके बेटों के कंधों से एक बित्ता (6 ईंच) ऊपर उठ रही थी। मण्डी में जहां गुरुजी की पालकी उतारी गई उस स्थान पर गुरुद्वारा बना इसे ही आज दमदमा साहिब कहा जाता है।

गुरु जी 2 दिन सिद्धसेन के मेहमान रहे। फिरआज जहाँ दमदमा साहिब है वहां अठारह दिनों तक मण्डी रियासत की सुख समृद्धि के लिए

अखण्ड कीर्तन किया गया। 500 भक्त सैनिकों के साथ से राजा के मन में आत्मविश्वास पैदा हुआ । उन्हें ही नहीं, तमाम पहाड़ी शासकों को लगा कि अब क्रूर औरंगजेब का सामना मिलकर किया जा सकता है।

मण्डी छोड़ने से पूर्व राजा ने मण्डी की सुरक्षा के लिए गुरुजी से प्रश्न किया तो गुरुजी ने अपनी बन्दूक से व्यास नदी की तेज लहरों पर एक मिट्टी की हांडी फेंककर उस पर निशाना साधा। निशाना अचूक था, पर आश्चर्य कि बन्दूक से निकली गोली से मिट्टी की हांडी में खरोंच तक नहीं आई। वह तैरती रही ।

इस पर गुरु जी ने राजा से कहा – 'जैसे बची यह हांडी, वैसे बची रहेगी मंडी, जो मण्डी को लूटेंगे, आसमानी गोले छूटेंगे ।'' गुरु जी के आशीर्वाद से मण्डी पर कोई संकट नहीं आया। चमत्कारी घटनाओं और गुरु जी के व्यक्तित्व के कारण दमदमा सहिब श्रद्धालुओं के लिए तीर्थ ही बन गया। कहते हैं राजा सिद्धसेन ने आज के गुरुकोठा में दुर्ग की नींव रखी थी जिसे 'गुरुकोट' कहा जाता था। बाद में यही गुरुकोठा बन गया। गुरु जी की लिखी कुछ पुस्तकों की पाण्डुलिपियों को राजा ने कमलाह के दुर्ग में सुरक्षित रखा था।

नादौन और महल मोरियां में गुरु गोविन्द सिंह ने बहुत दिन विश्राम किया था, अतः यहां पवित्र गुरुद्वारे का निर्माण किया गया। उन्होने यहीं अपने ग्रंथ ''विचित्र नाटक'' की रचना की थी।

सिरमौर के अनेक स्थानों पर गुरुद्वारों की स्थापना मिलती है। इनमें सर्वप्रसिद्ध यमुना के किनारे स्थित गुरु द्वारा है। यहां पर गुरु गोविन्द सिंह ने यहां के शासक भीम चन्द को हराया था। इसे 'कलगीधर गुरुद्वारा' भी कहते हैं। इस गुरु द्वारे की नींव स्वयं दशमी पात शाही ने 1685 ई. में रखी थी। यहीं गुरु गोविन्द सिंह जी ने सुप्रसिद्ध 'दशम ग्रंथ' की रचना की थी।

पौंटा साहिब में प्रतिवर्ष 27 मार्च को मेला लगता है। गुरुग्रंथ साहिब की शोभा यात्रा नगर में निकाली जाती है। निशान साहब का वस्त्र बदलना और बाजार का सजना इसके मुख्य आकर्षण हैं।

पौंटा साहिब से 20 कि. मी. दूर भंगाणी नामक स्थान में भव्य गुरु द्वारा है। इस स्थान पर गुरु गोविन्द सिंह ने 22 पर्वतीय राजाओं को परास्त किया था। यहां युद्ध में मारे गये राजाओं के स्मारक हैं। इसके अलावा कवि दरबार अस्थान, किला लोह गढ़, त्रिलोकपुर, बड़ू साहिब खैरी, राजगढ नाहन और सरांहा में भी ऐतिहासिक गुरु द्वारे हैं। चौकी भनोग में दिवाली के बाद पंचमी को मेला लगता है। यहां गुरु को 'भल्ला' कहते हैं। मण्डी में जहां गुरुजी की पालकी उतारी गई उस स्थान पर गुरु द्वारा बना इसे ही आज 'दमदमा साहिब' कहा जाता है।

सोलन के दाड़लाघाट क्षेत्र के डुगली नामक गांव की चोटी पर ऐतिहासिक गुरु द्वारा है जिसे उदासी सम्प्रदाय के बाबा चीमनू (चिन्मय) के साथ जोड़ा जाता है। अन्य सिक्ख - शिष्यों की तरह बाबा चीमनू भी निम्न जाति कोली से सम्बन्धित थे। कहते हैं ये यहां के प्रारम्भिक शासक गूंगा राणा की पहाड़न की रानी के साथ सेवक के रुप में आये थे। ये इस क्षेत्र में ये अपने सद्कार्यों और चमत्कारों के कारण मृत्यूपरांत पूजे गये। ये आधि - व्याधियों के इलाज जड़ी - बूटियों से करते थे। राणा को भी इन्होने ठीक किया था।

इस गुरुद्वारे की एक विशेषता है कि इसे लक्ष्मण धूनी मंदिर भी कहते हैं। कहते हैं यहां एक गुफा में जहां चीमनू बाबा की गाय लुप्त हो गई थी, वहां लक्ष्मण यति के दर्शन हुए थे। अतः गुरु द्वारे में लक्ष्मण की पिंडी भी रखी गई थी।

यहां 'सिद्ध - डवारी' में बाबा बालक नाथ ने निवास किया था, अतः इसे सिद्ध डवारी कहते हैं। चीमनू बाबा की स्मृति गरु द्वारा - मंदिर शिखर शैली में बना एक लघु मंदिर है। इसमें चूना - सुर्खी का प्रयोग किया गया है। 16 X10X7 फुट गुम्बदाकार मंदिर में एक बड़ा प्रांगण है। मंदिर के पश्चिमी दीवार के साथ आठ मढ़ियां है जो यहां रहने वाले महंतो की है। मढ़ियां चूने पत्थर से निर्मित छोटी - छोटी मंदिर नुमा आकृतियां है। एक मढ़ी किसी पुजारिन की है। मंदिर का दरवाजा 3 x 2½ लम्बा चौड़ा

शीशम की लकड़ी का बना हुआ है। इसमे सुन्दर नक्काशी - की गई है। मंदिर के अन्दर एक लकड़ी की चौकी पर एक सूफी शैली की सूती टोपी रखी है जो त्रिशंकु की शक्ल की है। टोपे के बाहर गोटे से कशीदाकारी की गई है जिसके अन्दर मलमल लगाया गया है। इसे चांदी के खोल में मढ़कर रखा गया है। टोपी 150 वर्ष पूर्व की लगती है।

लोग छमाही पर चीमनू बाबा को टोपियां चढ़ाते हैं। चौकी पर 3 फुट लम्बी तलवार को लोग पवित्र मानते हैं। गुरु द्वारे के प्रांगण में एक लम्बे बांस में झण्डा गाड़ा गया है।

चीमनू बाबा की स्मृति में यहां अश्विन मास में सायर मेला मनाया जाता रहा है - यह 1910 में जनगणना विवरण में भी उपलब्ध है। वास्तव में यह गुरुद्वारा - मंदिर सैंकड़ों वर्षों से हिन्दू - सिक्ख धर्म - परम्परा का समन्वय भी प्रस्तुत करता है।

गुरु जवाहर सिंह बाबा एक प्रसिद्ध सन्त अनुयायी थे। उनकी स्मृति में सोलन के क्षेत्रों में गुरु द्वारे पाये जाते हैं दाड़लाघाट - तेली - गांव में 150 वर्ष पूर्व एक स्थानीय श्रद्धालु गुसाऊं राम ने अमृतसर स्वर्ण मंदिर से गुरु की हस्तलिखित जन्मसाखी गुरुग्रंथ साहिब की 'बीड़' तथा निशान - ध्वज लाये थे। इस यात्रा में वे नंगे पांव यात्रा पर गये थे। उनके साथ इस क्षेत्र के बणी - मलावण, मांडी गांव तथा मांगू गांव के तीन श्रद्धालु भी गये थे। अंत: इन तीनों गांवो में सुन्दर गुरुद्वारों का निर्माण किया गया। बाद में बणोगी, बडोग, डुमैहर, कांगू पडयाल - गंभरपुल, रौड़ी कालीहट्टी आदि स्थानों पर भी गुरु द्वारे निर्मित हुए।

दाड़ला गुरुद्वारे में जोहड़ साहिब वाले संत ने ध्वज निशान चढाया था। 400 वर्ष होने पर सिक्ख - पंथ की एक बड़ा उत्सव भी यहां मनाया गया था। यहां के गुरु द्वारे में शरद - पूर्णिमा एवं वैसाखी को सिक्ख - परम्परा में भजन - कीर्तन, जप पाठ तथा भंडारे होते हैं।

गुरु द्वारे के एक श्रद्धालु के अनुसार दलित वर्ग के साथ

अस्पृश्यता तथा कर्मकाण्डों की जटिलता के कारण गुरु-परम्परा में लोगों का ज्यादा ध्यान आकृष्ट हुआ। दाड़ला गुरुद्वारे की श्रृंखला में ही रौड़ी गांव में गुरुद्वारे की स्थापना की गई।

अम्बुजा सीमेंट कारखाने को स्पर्श करती एक छोटी पहाड़ी टेकरी पर बाबा जवाहर सिंह की स्मृति में सुन्दर लघु गुरु द्वारा है जिसकी स्थापना पचास वर्ष पूर्व पंचायत प्रधान गीन्नू राम ने ग्रामवासियों के सहयोग से विधिपूर्वक की थी। हरिपुर साहिब गुरुद्वारे से बाबा के प्रतीक चिन्ह पिंडी, झण्डा, तथा तलवार लाये गये थे। हरिपुर वाले बाबा ने इसमें विशेष सहयोग दिया था।

गुरु द्वारे में अपने ही प्रकार से तीन मूर्तियां स्थापित हैं जो अन्य कहीं नहीं देखी जाती ग्रंथ साहिब गुरु द्वारे के मध्य में विराजमान है। पीछे गुरु - नानक की आदमकश मूर्ति तथा दायें बायें बाला जी और मर्दाना की मूर्तियां स्थापित हैं। गुरु द्वारा 15 बाई 15 फुट लम्बाई-चौड़ाई में एक चबूतरे पर निर्मित है। गुरु द्वारे की विशेषता है कि यहां से अम्बुजा नगर के अलावा चारों ओर के प्राकृतिक दृश्यों को देखा जा सकता है।

गुरु द्वारा स्थापित होने के पीछे जनश्रुतियां प्रचलित हैं। कहते हैं इस उपजाऊ जमीन में चूहों का बहुत आतंक था । किसानों की सारी फसलें चूहे चट कर जाते थे और पहाड़ी पर अति वर्षा और बिज़ली गिरती थी । अत: किसी उदासी सम्प्रदाय के संत ने यहां गुरु द्वारे की स्थापना की सम्मति दी थी। इसीलिए यहां डुगली दाड़ला और रौड़ी गांवों में गुरु द्वारों की स्थापनाएं हुईं।

वस्तुत: हिमालयी क्षेत्रों में सिक्ख-संतों के निवास करने तथा देवभूमि की नैसर्गिक सुन्दरता के कारण यहां के प्रत्येक क्षेत्र में गुरु-परम्परा के धार्मिक-स्थल मिलते हैं।

त्यौहार एवं मेले

बाड़ा देव मेला : बाड़ी धार

पाण्डवों से सम्बन्धित मेले और त्यौहार पूरे हिमाचल में मनाये जाते हैं। सोलन जनपद में अर्की क्षेत्र में बाड़ा देव का मेला अर्थात ''बाड़ी मेला'' पाण्डवों से सम्बद्ध पारम्परिक उत्सव है।

अर्की से लगभग 25 किलोमीटर दूर 7000 ऊँची बाड़ीधार पर बाड़ा देव का मन्दिर है। सदियों से इस रमणीय धार पर आषाढ़ सक्रांति को समीपवर्ती गांवो से पांचों पाण्डवों की सजी पालकियां बाड़ा देव मन्दिर के प्रांगण में मिलन हेतु एकत्रित होती हैं। कहते हैं वनवास के समय पाण्डव दूर दूर घूमने के पश्चात नियत दिन यहां एकत्रित होते थे।

बाड़ा देव कौन है?इससे सम्बन्धित जन श्रुतियां प्रचलित है। ''बाड़ी'' का अर्थ है- एक सुरक्षित वन वाटिका अथवा आरक्षित क्षेत्र। आदिकाल से यहां शिव स्थली रही है। इसे शिव की बाड़ी भी कहा जाता है। किसी ऐतिहासिक राजा की मूर्ति की स्थापना से इसे ही 'बाड़ी देव' और फिर 'बाड़ा देव' कहा जाने लगा।

शिमला की ऊंचाई के बराबर होने के कारण बाड़ीधार की विस्तृत घाटी में देवदार, बान तथा चील के मोहक जंगल हैं । शरद ऋतु में बर्फीली घाटियां उच्च हिमालय का स्मरण करवा देती है। कहते हैं अंग्रेज सर्वप्रथम यहां गर्मी की राजधानी बनाने लगे थे किन्तु बाड़ा देव के प्रकोप से ऐसा न करसके। बाड़ीधार से शिमला तक फैला विस्तृत क्षेत्र बिलासपुर नगर सुकेत, नालागढ़ तथा कालका तक का क्षेत्र दृष्टिगोचर होता है । प्राचीन शासकों को यह स्थान सुरक्षित और सुन्दर लगा। इसी लिये यहां किले का निर्माण भी किया गया था जिसे 'बहादुरपुर गढ़' के नाम से जाना जाता था। गोरखों ने इसे बिलासपुर नरेश से छीनकर यहां कब्जा किया था। यहां अर्की क्षेत्र की सीमाएं कहलूर से मिलती थी। यह रियासत अर्की राज़ा द्वारा किसी रानी के साथ बिलासपुर राजा को दहेज में दिया गया था।

बाड़ादेव से सम्बन्धित यहां यह लोक विश्वास प्रचलित है - कहते हैं कि पाण्डव महाभारत युद्ध में बन्धु - बान्धवों के विनाश के पश्चात प्रायश्चित के लिये हिमालय क्षेत्र में मानसरोवर तक आये थे। वे इस क्षेत्र से होकर गुज़रे थे। बाड़ीधार पर इन्होंने शिवस्थली के साथ असुर राजा 'बारबरिक' की मूर्ति स्थापित की थी। बर्बरिक हिडिम्बा - भीमसेन का पौत्र था जो पैदा होते ही युवा हो गया था।

इस प्रसंग के अनुसार महाभारत से पूर्व जब कौरव पाण्डव सेनाओं का सैन्य विधान हुआ तो समस्त भारत के राजा किसी न किसी पक्ष में मिले थे। बर्बरीक एक ऐसा ही योद्धा था। वह धनुर्विद्या में पारंगत था। उसने गुप्त क्षेत्र में नव दुर्गाओं की तपस्या से वरदान प्राप्त किया था। वह भी महाभारत युद्ध में सम्मिलित होने के लिये कुरुक्षेत्र की तरफ चला। मार्ग में उसकी भेंट श्री कृष्ण से हुयी। कृष्ण ने उस तेजस्वी युवक से पूछा कि तुम किस पक्ष से लड़ोगे? बर्बरीक ने उत्तर दिया कि जो योद्धा सबसे बलवान होगा मैं उसे मारकर इन्द्रप्रस्थ का राजा बनूंगा। कृष्ण ने उसकी वीरता की परीक्षा लेनी चाही। युवक ने कृष्ण के पराक्रम तथा योग विद्या के विषय में सुना था। कृष्ण ने बर्बरीक ने आत्म विश्वास से कहा मैं कर सकता हूं।

कृष्ण ने चुपके से एक पत्र तोड़कर अपने पांव के नीचे छुपा दिया और युवक को तीर छोड़ने को कहा। बर्बरीक ने शरसंधान किया। तीर प्रत्येक पत्ते को छलनी करता कृष्ण के पांवों के नीचे दबे पत्ते को भी छेदता हुआ बर्बरीक के पांवों के पास लौट आया।

कृष्ण हतप्रभ हो गये। कृष्ण ने जान लिया कि यह युवक राक्षसी माया से अर्जुन को भी आहत कर सकता है। उन्होंने कूट नीति से युवक से पूछा - 'वीर, तुम महाभारत युद्ध में क्यों लड़ना चाहते हो? अभी तुम नादान युवक हो। इस महायुद्ध में बड़े - बड़े महारथी, अतिरथी और रथी आये हुये हैं।'

वीर युवक ने उत्तर दिया - पराक्रमी कृष्ण मैं भी तुम्हारी तरह समर भूमि में प्राण त्याग कर स्वर्ग जाना चाहता हूं। और उससे बढ़कर

महाभारत के समस्त योद्धाओं का पराक्रम देखना चाहता हूं। कृष्ण बोले – वीर युवक, यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो तुम्हें मैं अपने योगक्षेम से सारा महाभारत का युद्ध दिखा दूंगा। किन्तु एक शर्त है।

'क्या शर्त है महाराज?' बर्बरीक ने उत्सकता से पूछा – 'इस युद्ध में भारत के अतिरिक्त दूसरे राष्ट्रों के वीर भी सम्मिलित होंगे। भारत का ऐसा कोई नरेश नहीं है जो युद्ध में भाग न ले रहा हो। बर्बरीक, मैं बिना शस्त्र उठाए सत्य की रक्षा के लिये पाण्डवों को विजयी बनाऊंगा। किन्तु एक वीर की बलि युद्ध से पूर्व यमराज को देनी आवश्यक है। उसके लिये मैं, अर्जुन या फिर तुम ही हो।'

बाड़ीधार से 3 किलोमीटर नीचे नाले में राक्षस देवों की गुफाएं है। राक्षस गुफा में भैरो तथा रक्षिण (राक्षिणी) की प्रस्तर मूर्तियां विद्यमान है। भैरो संभवत: घटोत्कच एक शेर के गले में जंजीर डाले भयानक आकृति वाला देव है। शेर के नाक में लोहे का कड़ा है। मेले वाले दिन इसे बलि अवश्य देनी पड़ती है। रक्षिण भी इस बंद गुफा में भैरो के साथ विराजमान है। ये देवता मेले के दिन मश्वाड़ी देव द्वारा पत्थर की शिला हटाने पर गुफा से बाहर निकलते हैं। इनके साथ अन्य राक्षस दल भी बाहर निकलता है। इन असुर देवों का इस क्षेत्र में इतना आतंक रहा है कि गुफा वाली तलहट्टी में कोई अकेला व्यक्ति नहीं जा सकता था। इन्हें विधिवत बलि देने के बाद ही यहां घास अथवा ढोर डंगर चराने जाना पड़ता था।

आषाढ़ संक्रान्ति के दिन अर्जुन के निवास स्थान अन्दरौली घणाघुघाट की बावड़ी से एक लोटा पवित्र जल लेकर देव का पुजारी बाड़ी प्रस्थान करता है। यह स्थान बाड़ीधार से लगभग 15 कि. मी. दूर है। पुजारी जब ब्यूला (भीम सेन के निवास) लोटा लेकर पहुंचता है तब जन समुदाय देव रथ के साथ बाड़ी प्रस्थान करता है। लोटे के पहुँचने का अभिप्राय अर्जुन के पहुंचने से हैं देव वाद्य ढोल, नगाड़े, रणसिंहा तथा टाकुली के घोष से घाटियां गूंजती चलती हैं। जब यह यह पूजा बाड़ी से करीब एक कि. मी. नीचे मश्वाड़ी देव की काढ़ (घाटी) में पहुंचती है तो नीचे नाले में स्थित राक्षस देवों को बाड़ी यज्ञ में आने के निमन्त्रण के रुप

में देवता का आदमी ऊँची - ऊँची आवाजें लगाता है। इन आवाजों के मध्य देवता के बाजे जोर - जोर से बजाये जाते हैं। ऐसा विश्वास है कि यदि कोई इन आवाजों को सुन लेता है तो तत्काल मर सकता है। कहते है दो तीन मांगते (वादक) इससे पूर्ण मर चुके हैं। ये आवाजें पहले दिन रात्रि को भी निमन्त्रण के रुप में इन राक्षसों को लगाई जाती हैं।

देवथल (जिसे सहदेव का स्थल माना जाता है) वाली पूजा तब बाड़ी प्रस्थान करती है जब ब्यूला वाली पूजा के वाद्यों की आवाजे सुनाई देती हैं। यह स्थान इस घाटी से 2 कि. मी. दूर है। भेल गांव (यानी नकुल का स्थान) वाली पूजा देवथल की पूजा के साथ बाड़ी पहुंचती है। कोयला स्नोग (यानी युद्धिष्ठिर का स्थल) जो बाड़ी से लगभग 8 कि. मी. दूर है, वाली पूजा प्रात: चलकर दोनों पूजाएं 3 बजे सांय बाड़ादेव स्थल पर पहुंचती है जहां सजी पालकियों में तेजपूर्ण पाण्डवों के मोहरों के समक्ष असंख्य नर नारी देवता का खेल खेलते हैं। इस देवता के खेल में देवता की छाया व्यक्ति के तन मन पर इस प्रकार प्रभावी होती है कि उसका प्रत्येक अंग कांपता है तथा वह पछाड़े खाकर सिर बाजू को झटकता है। चीखों तथा ढोल नगाड़ों की आवाजों से वातावरण गूंज उठता है। लोग नतमस्तक होकर देवता को भेंट चढ़ाते हैं।

सन 1956 तक हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की तरह देव को भैंसे की बलि दी जाती थी। बलि के पश्चात कोई भी व्यक्ति देव की परिधि स्थल में नहीं ठहर सकता कहते हैं रात्रि को यहां राक्षसी माया फैल जाती है। इसके बाद यह स्थान बिल्कुल निर्जन हो जाता है। लोग संतुष्ट होकर विभिन्न वन वीथियों से अपने घर की तरफ लौट जाते हैं।

आदिकाल से यह मेला परम्परागत ढंग से मनाया जाता रहा है। पशु बलि के अतिरिक्त यह मेला अपनी प्राचीन स्मृति को संजोए इसी प्रकार मनाया जाता है। लोक बाड़ा देव को अपनी फसलों का रक्षक तथा इष्ट समझते हैं। बदलते युग के मानव मूल्यों तथा विश्वासों के बावजूद भी बाड़ी मेला अपनी ऐतिहासिक स्मृति राक्षसों द्वारा पाण्डवों का युद्ध में साथ देना प्रतिपादित करता है।

अर्की (बाड़ीधार) के अतिरिक्त शिमला जिले के शौल्ली गांव के ऊपर जंगल में 'कोट पर्वत' पर बर्बरीक का प्रतीक चिन्ह एक लकड़ी का लम्बा दण्ड है। शौल्ली ननखड़ी से लगभग 12 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। शौल्ली से बर्बरीक के देवस्थान तक पहुंचने के लिए चढ़ाई के रास्ते डेढ़ घण्टे का समय लगता है।

लकड़ी के दण्ड में बर्बरीक का मुखौटा है। लोगों के अनुसार बर्बरीक का धड़ बाड़ीधार (अर्की) में तथा सिर यहां स्थित है। मुखौटे की एक आंख कौरवों की तथा दूसरी आंख पाण्डवों की है। महाभारत युद्ध में अर्जुन ने बर्बरीक को यहां दण्ड सहित फेंका था।

यहां कोट पवर्त पर हर 12 वर्ष बाद भूण्डा यज्ञ होता है। भूण्डा यज्ञ में यहां 101 बकरों की बली बर्बरीक को दी जाती थी जबकि बाड़ीधार में भैंसे का रक्त चढ़ाया जाता था। बर्बरीक राक्षसी-पुत्र था अत: इस प्रकार की बलियां प्राय: सभी राक्षस देवों को दी जाती रही हैं। आज भी यहां बकरों की बलि देने का ढंग बड़ा अनोखा है। देवता का देऊंवा (पुजारी) काटे हुए बकरे को दोनों पैरों से उठाकर पहले मुंह से उसका खून पीता है फिर खम्बे की ओर एक-एक कदम चलता है। वह प्रत्येक कदम पर बकरे का खून पीता है। जब तक वह खून पीकर बेहोश न हो जाए तब तक वह बकरों का खून पीता रहता है।

अदिकाल में भूण्डा-यज्ञ की परम्परा पूरे क्षेत्र में चली आ रही है। पिछला भूण्डा 24 वर्ष बाद हुआ था। किसी परिस्थिति में 20 वर्ष बाद भी 'भूण्डा-यज्ञ' होता है। यह देवता की वाणी पर निर्भर करता है। आश्चर्य तो यह है कि बर्बरीक के खम्बे के पास सूर्योदय के समय आना वर्जित है। भूण्डा-यज्ञ के अवसर पर पुलिस का प्रबन्ध होता है। कहते हैं सूर्योदय के समय देवता के पास आने वाले अनेक लोग पागल हो गये है या मर गये हैं।

बाड़ा देव का मेला रामशहर (नालागढ़) क्षेत्र में भी इसी परम्परा की कड़ी है जो आषाढ़ मास में धार्मिक उल्लास से मनाया जाता है। रामशहर की पहाड़ी से बाड़ीधार की पहाड़ी के बिल्कुल सामने उत्तर दिशा में स्थित है।

बणिया देवी मेला – अर्की

हिमाचल प्रदेश के प्रत्येक भाग में मैदानों से आए शासकों के वैष्णव – देवी देवताओं के असंख्य मन्दिर यहां मिलते है। ऐसा माना जाता है कि इनसे पूर्व हिमाचल एवं शिवालिक क्षेत्रों में शिव एवं स्थानीय देवताओं के मन्दिर तथा पूजा – पद्धतियां प्रचलित थीं। वैष्णव – परम्परा में सोलन जनपद के अर्की क्षेत्र में अर्की – भराड़ी घाट रोड पर अर्की से 15 कि. मी. दूरी पर एक सुरम्य पहाड़ी की तलहटी में महामाया बणिया देवी – जिसे इस क्षेत्र में माता जालपा का रूप माना जाता है जो अर्की बिलासपुर, सोलन व कुनिहार आदि क्षेत्रों के लोगों की आस्था एवं श्रद्धा का केन्द्र है। अद्‌भुत विश्वास यह है कि यह देवी अष्ट भुजा की बजाय दशभुजा वाली देवी है। बणिया देवी मंदिर गूंगा राणा (14 वीं शती ई.) द्वारा निर्मित माना जाता है जो अपने आवास राजधानियां विभिन्न – स्थानों दाड़ला – सरडमरास, घोघर दाड़लाघाट तथा फिर धुन्दन में बनाता रहा। सम्भवत: यह काल मुस्लिम आक्रमणों एवं समीपवर्ती कहलूर शासकों के धावों का समय था। यह मन्दिर राजपूत शैली के मंदिर की तरह निर्मित हुआ है।

यह मन्दिर वास्तुकाल का एक अद्‌भुत नमूना है व शिखर – शैली का है। गुम्बदाकार मंदिर का निर्माण चूने – मिट्टी (सुर्खी) का है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें एक विशेष पत्थर कोऊ (छिद्रदार पत्थर) का प्रयोग किया गया है। साढ़े तीन फुट पाषाण की भव्य देवी की मूर्ति है जिसकी दस भुजाएं एवं सभी प्रकार की रूप – सज्जा है। लगता है धारा नगरी (उज्जैन) से लाते समय इसकी भुजाएं खंडित हो गई थीं जो अब पूर्ण हैं।

अर्की के प्रतापी राजा गूंगा – राणा को अपनी अर्की यात्रा के दौरान सपने में देवी के दर्शन इसी स्थान पर हुए थे। देवी ने प्रकट होकर कहा था राणा, मैं तुम्हारी कुलजा हूं। मेरा मन्दिर इसी स्थान पर बनाओ। मैं तुम्हारी रक्षा यहीं से करूंगी। राणा ने इसलिए यहां माता जालपा का निर्माण करवाया। इसी काल से यहां बणिया देवी का मेला ज्येष्ठ संक्रान्ति

को मनाया जाता है। पहले यहां बाघों का जंगल था। चारों ओर लहराते हुए जल स्त्रोत। वास्तव में जालपा-माता के मंदिर पानी के स्त्रोतों के पास ही मिलते हैं छामला देवी मंदिर धुन्दन जालपा मन्दिर, बिलासपुर का सगीरठी देवी मन्दिर, कुनिहार का बणिया देवी मन्दिर व दाड़ला का जालपा मन्दिर इसी प्रकार के देवी मन्दिर है। जालया का मूल अर्थ है-जल से उत्पन्न देवी। नव दुर्गाओं में मां कात्यायनी ज्वालाजी का रूप मानी जा सकती है। घने वन में स्थापित मन्दिर के कारण इसी देवी को 'बणिया देवी' अथवा 'वन देवी' कहा जाता है।

अर्की के चन्देल वंश के लोग देवी को कुलजा के रूप में पूजते हैं। बणिया देवी मन्दिर के साथ गांव घरनों में जेठ-संक्रान्ति के बाद पहले मंगल को ग्यासियों का मेला लगता है। ये ग्यासियां राजवंश की सतियां है अथवा कुंवारी कन्यांए हैं जिनकी स्मृति में इस स्थान पर मेला लगता है। ये ग्यासियां बच्चों की रक्षिणाएं मानी जाती है, तभी इनकी पूजा होती है। हर संक्रान्ति को लोग दूर-दूर से यहां बच्चों को नहलाने लाते है ताकि चर्मरोग व फोड़े-फुंसियां ठीक हो जाएं। ग्यासियों की मूर्तियां छोटे-छोटे गोलक पत्थरों के रूप में विद्यमान हैं। मान्यताओं के अनुसार इन्हें आकाश की देवियां भी माना गया है।

मन्दिर परिसर प्राकृतिक सुषमा से भरपूर है, अतः सैलानियों के लिए भी सैर-सपाटे के लिए अनुकुल है। वस्तुत यह प्राकृतिक-स्थल अर्की-रिसायत के इतिहास का प्रथम पड़ाव माना जा सकता है जहां से बाघल रिसायत अस्तित्व में आने के पश्चात एक समृद्ध रियासत के रूप में विकसित हुई।

बणियां देवी मेला परम्परा से राजकीय स्तर पर मनाया जाता रहा है। आज इसके परिसर में सुन्दर धर्मशाला तथा अन्य हिन्दू- मन्दिरों का निर्माण किया गया है।

दानोघाट मेला

सोलन जनपद के प्राचीन मेलों में अर्की के दानोघाट घाटी में मनाया जाने वाला दानोघाट मेला बाघल रियासत के प्रारम्भिक शासकों से सम्बंध रखता है। यह मेला राजकीय – स्तर पर मनाया जाता था जो आज भी परम्परागत रूप से ज्येष्ठ मास की पन्द्रहवी तिथि को धार्मिक आस्था के साथ – साथ आधुनिक तौर – तरीकों से आयोजित होता है। शिमला – बिलासपुर राष्ट्रीय मार्ग पर शिमला से लगभग तीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित दानोघाट गांव में मेला दानो देव के पूजन – नर्तन से प्रारम्भ होता है। दानोघाट मेला वास्तव में दानों देओ को समर्पित मेला है। दानो देव के रथ – चक्र के साथ बाघल रियासत के दो अन्य ऐतिहासिक देव – रथ हरसंग देव एवं मढोड़ देव के रथ भी दानोघाट उत्सव में पधारते हैं तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अनुसार देव – स्थल में उपस्थित रहते हैं। लोग अपनी मनौतियों के अनुसार देवताओं को अन्न – धन भेंट करते हैं। शेष हिमाचल की तरह देवताओं से 'पूछ' आदि के साथ लोग बकरे – भेडू की भेंट करते हैं, यह रिवाज आज बहुत कम दिखाई देता है।

दानो का अभिप्राय :

दानों का साधारण अर्थ स्थानीय भाषा में 'दान करने वाला' 'दाता' अथवा बड़े जीवट का व्यक्ति है। दानों देव त्रेता युग के पराक्रमी महिष्मति के राजा सहस्रबाहु की स्मृति तथा 'देव – रूप' है जिसने विष्णु के अवतार परशुराम से युद्ध किया था। दानो देवस्थल इसी गांव में पुराने समय से एक विशाल पेड़ के नीचे बने खुले चबूतरे पर निर्मित था, जहां देवता की प्रस्तर मूर्तियों के साथ अन्य देवी – देवताओं की मूर्तियां भी स्थापित थीं, किन्तु आज देवता के धातु के मोहरों के साथ देवस्थल का सुन्दर निर्माण किया गया है। मेले के अवसर पर मंढोड़ देव का रथ मांगू गांव से सजी पालकी में भक्तों के समूह के साथ मेले में पहुंचता है, इनके साथ चनौग गांव के शिखर पर स्थित हरसंग देव (ऋषि दामोदर) की सजी पालकी में भक्तों के समूह के साथ मेले में पहुंचता है, इनके साथ चनौग गांव के शिखर पर स्थित हरसंग देव (ऋषि दामोदर) की सजी

पालकी भी मेले की शोभा बढ़ाती है। रमणीक पहाड़ी घाटी में चीलों के जंगल के मध्य दानोघाट एक सुन्दर स्थल है जहां वाहन द्वारा आसानी से पहुंचा जा सकता है। शिमला-मण्डी राष्ट्रीय मार्ग बनने के बाद मेले का स्थान संकुचित हो गया है।

पौराणिक सन्दर्भ :

दानो देव (पौराणिक सहस्रबाहु) की लोकगाथा मूल-रूप से सुन्नी-तत्तापानी में सतलुज नदी के किनारे गर्म जल के स्रोतों तथा देवस्थल से प्रमुख रूप से जुड़ी हुई है। यहां का सम्बंध ऋषि जमदग्नि से भी जोड़ा गया मिलता है। लोक गाथाओं के अनुसार जमदग्नि की पत्नी रेणुका और सहस्रबाहु राजा की पत्नी रेणुका सगी बहनें थीं। एक बार सहस्रबाहु ने ऋषि जमदग्नि को अपनी राजधानी महिष्मती पुरी में यज्ञ में उपस्थित होने का निमन्त्रण दिया। वेणुका अपने पति के साथ यज्ञ में पहुंची तो राजकीय वैभव देख कर अवाक रह गई। ऊंचे-ऊंचे महलों, महारानी वेणुका के अमूल्य सोने-चांदी के गहनों तथा राजधानी की सुख-सुविधाओं को देखकर रेणुका का मन अवसाद और ईर्ष्या से भर उठा। इस पर वेणुका अपने वैभव का बखान बड़े अभिमान से करती रही। रेणुका सोचती कि वह एक योगी ब्राह्मण की पत्नी है जो आश्रम में कर्म-धर्म करते हुए जीवन बिता रहा है। वह अपनी बहन को अपने घर कैसे बुलाए?जब वह अपने पति के साथ लौट कर आश्रम में आई तो उसने पति जमदग्नि से अपने मन की बात कही। जमदग्नि ने बह यह सुनी तो बोले, ''प्रिये, मैं अपने यौगिक-बल से सहस्रबाहु की सारी सेना और अतिथियों को महाभोज का प्रबंध कर सकता हूं।'' रेणुका बहुत प्रसन्न हुई। उसने निश्चित तिथि को किसी पवित्र नदी तट पर बेणुका तथा सहस्रबाहु को यज्ञ का आयोजन कर निमंत्रण देने का निर्णय किया। उन दिनों ऋषि जमदग्नि रेणुका (सिरमौर) तीर्थ में एक आश्रम बना कर निवास कर रहे थे।

एक दिन रेणुका ने अपनी बहन वेणुका को यज्ञ में आमंत्रित कर ही दिया। यज्ञ का आयोजन वर्तमान सुन्नी क्षेत्र के सतलुज नदी के तट

पर स्थित आश्रम में किया गया। यह एक रमणीक प्राचीन देवस्थल था, जहां एक राजा के अतिथ्य को भली - भांत से प्रायोजित किया जा सकता था। सहस्रबाहु तथा वेणुका इस निमंत्रण से आश्चर्यचकित थे। भला एक ऋषि राजा का सत्कार कैसे कर सकेगा?सहस्रबाहु प्रसिद्ध पराक्रमी राजवशं हैहय वंश का राजा था जिसे उसने भगवान शंकर के अंशावतार दत्तात्रेय की उपासना से वरदान में एक सहस्र भुजाएं प्राप्त की थीं, अत: वह देवताओं और दानवों के लिए दुर्जेय बन गया था। सहस्रबाहु को अपने बल का बड़ा घमण्ड। था। वह अपने क्षत्रिय - धर्म से पतित हो चुका था। ऐसी ही एक घटना में उसने अहंकारपूर्वक दशानन रावण को पकड़कर कैद कर लिया था।

यज्ञ में निमन्त्रण मिलने के पश्चात सहस्रबाहु पूरे दल - बल के साथ यज्ञ - स्थल में पहुंचा। यज्ञ के विराट आयोजन को देखकर सहस्रबाहु हतप्रभ हो गया। तरह - तरह की सामग्रियां जमदग्नि कामधेनु गौ से प्राप्त कर ऋषि ने राजा और उसके सैनिकों की सेवा की। इस प्रकार की सामग्रियां और पकवान वह भी नहीं जुटा सकता था। यह सब उस कामधेनु गौ का चमत्कार था जो जमदग्नि को देवताओं से मिली थी। सहस्रबाहु का मन वितृष्णा से भर गया। उसने सोचा वह राजा होकर भी रंक है। वह सत्कार से संतुष्ट न हुआ।

उसने ऋषि से कामधेनु गौ को मांगा और कहा कि इसके बदले वह कितना भी धन मांग ले। ऋषि ने कहा कि,''राजन, कामधेनु मेरी पूजा की गौ है और देवताओं की है। इसे देने में मैं असमर्थ हूं।'' इस प्रत्युत्तर से सहस्रबाहु क्रुद्ध हो गया। उसने सैनिकों को को आदेश दिया कि जबरदस्ती गौ को छीनकर ले चलो। सैनिक गौ को घसीट कर महिष्मति पुरी की आरे ले जाने लगे। अचानक गौ उनके हाथों से छूट कर आकाश मार्ग से उड़ते हुए देवलोक चली गई। इसी मध्य जमदग्नि पुत्र परशुराम जी ललकारते हुए वहां पहुंचे। कार्तवीर्य सहस्रबाहु की विशाल वाहिनी के साथ उनकी जबरदस्त मुठभेड़ हुई। परशुराम ने कुछ समय में ही संपूर्ण सेना को मृत्युलोक भेज दिया। तभी सहस्रार्जुन भी सामने आया। परशुराम जी ने देखते ही देखते अत्यन्त फुर्ती से उसकी

सहस्र भुजाएं काट कर उसका सिर भी धड़ से अलग कर दिया। परशुराम का रौद्र - रूप देख कर राजा के दस हजार पुत्र (सैनिक) युद्ध स्थल से भाग खड़े हुए। पुराणों के अनुसार परशुराम कामधेनु को साथ लेकर आश्रम लौट आए। तत्पश्चात पिता की आज्ञा से सम्राट वध के पाप से निवृत होने के लिए वे तीर्थ यात्रा के लिए चले गए। एक वर्ष तक तीर्थों में भ्रमण करके वापस आश्रम आए। एक दिन सहस्रार्जुन के दस हजार पुत्र बदला लेने के लिए ऋषि आश्रम आए। परशुराम समिधा के लिए जंगल में गए थे। अचानक उन दुष्टों ने ऋषि का सिर काट लिया और भागने लगे। मां रेणुका विलाप करने लगी,''हा राम ...... हा ..... राम।'' रुदन सुनकर परशुराम आश्रम पहुंचे। पिता की दशा देखकर वे अपना दिव्य फरसा लेकर सहस्रार्जुन के पुत्रों का पीछा करते हुए महिष्मति पुरी पहुंचे। वहां उन्होंने सहस्रार्जुन के हजारों पुत्रों का वध कर डालां। सहस्रबाहु का वध तो हो गया, किन्तु उसका सम्बन्ध परशुराम से सदा के लिए जुड़ गया।

लोक आस्था का रूप :

दानोघाट मेले एवं दानो देव की यह सांस्कृतिक गाथा हिमालयी एवं शिवालिक क्षेत्रों में पौराणिक ऋषि मुनियों के गौरवशाली अतीत को अभिव्यक्त करती है। आज भी रेणुका मेला जमदग्नि - रेणुका की स्मृति बना है दानों मेला और तत्तापानी के गर्म पानी के सोते सहस्रबाहु की गाथा से जुड़े हैं। ये बुराई पर अच्छाई की जीत का बखान भी करते हैं। इन क्षेत्रों में 'पत्थरों के खेल' 'ठोडे का मेला' परशुराम सहस्रबाहु कथा को प्रतिपादित करते हैं। ठोडे का खेल धामी, कुनिहार, मैहली, ठियोग आदि में आज भी परम्परागत रूप से आयोजत होता है। दानो देव बाघल क्षेत्र के अतिरिक्त शिमला, बिलासपुर, मण्डी क्षेत्रों में भी पूजनीय हैं। इसके मेलों में हिमाचल के अन्य लोक देवताओं की तरह पूजा - पद्धतियां, मनौतियां, लोक विश्वास विद्यमान है। आज इस मेले ने आधुनिक रूप ग्रहण कर लिया है।

प्राचीन मेला : बातल – दशहरा

स्वतन्त्रता – पूर्व की तीस छोटी – बड़ी ठकुराइयों में बाघल रियासत (अर्की) का ऐतिहासिक उत्सव बातल – दशहरा हिमाचल प्रदेश (ऐतिहासिक शिमला – हिल्स – स्टेट) का प्राचीन मेला है जो परम्परा से आज भी अपनी पहचान बनाये हुए हैं। इस उत्सव का प्रारम्भ अर्की को राजधानी बनाने वाले प्रथम शासक राणा सभाचंद परमार (1640 – 1670 ई.) के समय को माना जाता है। राणा सभाचंद राजधानी धुन्दन को छोड़कर 1643 ई. में यहां आए थे तथा वर्तमान 'गौशाला' के पास कच्चे – पक्के महलों का निर्माण किया था। इस शासक ने अपने पूर्वजों (राणा अजय देव परमार 1265 ई.) द्वारा धारा नगरी से पलायन करने के बाद साथ लाई गई अपने इष्ट देवता ''लक्ष्मी नारायण'' की मूर्ति, खाण्डा, मुकुट, छड़ी तथा नगाड़ा स्थापित किया था जो मन्दिर के आज भी वर्तमान है।

प्रारम्भिक राणा के साथ मालवा – देश – धारानगरी से राजवंश के पुजारी, पुरोहित, रसोइये, गायक, ज्योतिषी तथा कलाकार आये थे। अर्की को राजधानी बनाने पर इन्होने उन विशिष्ट लोगों को 'बातल' गांव में बसाया था जिसका मूल नाम पड़ा ''वातालय'' अर्थात खुला – स्वच्छ हवा का क्षेत्र। कुछ लोगों का मानना है कि अर्की राज्य से पूर्व यहां भाट लोग रहते थे तथा इसका मूल नाम 'भाटालय' था, जो अपभ्रंश बनकर बातल हो गया। पहाड़ी क्षेत्रों में भाट ब्राह्मणों को कहा जाता है। ये पूजा – पाठ करने वाले भाट – परिवार मन्दिरों में आज भी पूजा करते हैं। बातल नामक गांव कुल्लू, शिमला, मण्डी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ये ब्राह्मण भाट प्रायः पुजारी हैं। पुजारी – पुरोहितों की वजह से यदि 'बातल' नाम पड़ा हो तो अतिशयोक्ति नहीं लगती।

परम्परा से बातल को 'छोटी – काशी' कहा जाता है। इसका कारण वैष्णव – धर्म के अनुयायी राजाओं द्वारा बसाये गये विद्वानों का यहां बसाया जाना रहा है। वैसे भी वैष्णव – मत के सभी पर्व – त्यौहार व्रत यज्ञ

आदि की परम्परा यहां मिलती है। इसीलिए इसे 'छोटी -काशी' या 'पंडितों का गांव' कहा जाता है।

बाघल (अर्की) के मेलों-जरबौली मेला (भद्रकाली) बणिया देवी (दुर्गा-जालपा) दानोघाट-मेला (सहस्रबाहु) बाड़ी-मेला (पांडव-बर्बरीक), सायर-मेला (फसल-पर्व), गणदेव-उत्सव (दाड़ला-घनागूघाट) सिद्ध मेला सर डमरास (सायर) का सम्बन्ध अर्की के प्रारंभिक शासकों से है जिन्होंने समय-समय पर राजधानियां बदलने के साथ इन मेलों को प्रारम्भ करवाया।

दशहरा उत्सव राजकीय-स्तर पर विशाल-आयोजन के साथ आयोजित होता था। ऐतिहासिक दस्तावेजों बन्दोबस्त कानूनी रियासत-बाघल-1907-मियां शेर सिंह साहिब के अनुसार अर्की के राजवंश द्वारा दशहरे के अवसर पर व्रत रखकर लक्ष्मी नारायण की मूर्ति को सर्वप्रथम नहला धुलाकर पूजा-अर्चना करने के पश्चात पालकी में सजाकर रखा जाता था। उसके साथ अन्य ठाकुरों देवताओं (राम-क्षत्रिय का पर्याय-'ठाकुर') को भी सजाकर रखा जाता था। लक्ष्मी नारायण की पालकी को सर्वप्रथम राजा हाथ लगाकर उठाते थे, फिर उसे एक फर्लांग दूर पुजारियों के गांव बातल से भजन-कीर्तन करते, एक विशाल जलूस में शंख-घंटियां बजाते ले जाया जाता था। राज-परिवार स्वयं इस आयोजन में सम्मिलित होता था। रिपोर्ट के अनुसार ''बरोज दशहरा अर्की में दरबार होता है। मुलाजमीन नजरें देते हैं और रईस शाम को मय ठाकुरान व जुलूस बातल जाकर 'घड़ा' गोली तोड़कर रस्म फतेह-लंका अदा करता है व कार्तिक बरोज पूर्ण मासी रात को खास दरबार में कृष्णलीला कराई जाती है। इन मेलों में मामूली खरीदो-फरोख्त होती है और गैर अलाका से भी मरद व जनाना आते है।'' दरअसल रियासत का दशहरा राजवंश का धार्मिक-उत्सव था। लंका दहन के रुप में बातल के 'हार' उपजाऊ खेतों के मध्य तीन डंडों के ऊपर रावण के प्रतीक ''घड़े'' को रखा जाता था, जिसे सर्वप्रथम राणा निशाना लगाकर तोड़ता था। उसे ही लंका दहन कहा जाता था। मेलों से लौटकर राजा गरीबों को दान तथा रईसों-कलाकारों को भेंटे

अथवा जागीरे देता था।

बातल को 'छोटी काशी' नामकरण के पीछे यहां बसे प्रसिद्ध विद्वान रहे हैं। इनमें पं. हरिनन्द प्रसिद्ध गायक पं. सुदामा राम श्याण पं. शिवराम, पं. भजन दास गायक, पं. सिरबलिया बलभद्र सितार वादक, पं. समलिया राम (कथावाचक) तथा पं. सहाइया राम पाठक, पं. अमरनाथ प्रसिद्ध रहे हैं।

ये कलाकार – विद्वान विभिन्न रियासतों में अपने ज्ञान का प्रकाश करते थे तथा ज्योतिष के ज्ञाता थे। पं. सहाइया राम के बारे में ज्योतिष के अनेक किस्से है जो आज भी सुनाये जाते हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से 124 वर्गमील में फैली यह रियासत, कुनिहार (8 वर्गमील) कुठाड़ (20 वर्गमील) बेजा (4 वर्ग) बघाट (36 वर्गमील) महलोग (43 वर्गमील) मांगल (12 वर्गमील) सब से बड़ी तथा सांस्कृतिक और अर्थिक दृष्टि से सम्पन्न थी। इन छोटी रियासतों पर बाघल का वर्चस्व तथा प्रभाव था। सांस्कृतिक दष्टि से भोज परमार- खानदान के बाघल राजवंश की समृद्ध वैष्णव-शैव धार्मिक परम्पराएं थीं, जो विरासत में ये लोग साथ लाये थे। यही कारण था कि बातल क्षेत्र की धार्मिक सांस्कृतिक-परम्पराओं की नकल अथवा अनुकरण साथ लगी रियासतों ने किया। उदाहरण के लिए बाघल के सायर, बणिया देवी, दानो मेला, लूटरु गुफा मेला की तर्ज पर सभी मेले कुनिहार में मनाये जाने की परम्परा चली। अन्य समीपवर्ती रियासतों महलोग, कुठाड़, बेजा, बघाट आदि पर इस प्रभाव को देखा जा सकता है। मांगल एक दुर्गम क्षेत्र था तथा कहलूर के राजवंश के सम्बन्ध में था अत: वहां बाघल के सांस्कृतिक प्रभाव कम पड़ा। इस बात की पुष्टि वहां से मेलों त्यौहारों से होती है।

कुल्लू का दशहरा उत्सव भी वहां के 1637-1672 ई. के शासक राजा जगत सिंह के समय प्रारम्भ हुआ। लगभग उसी समय अर्की के राणा सभाचंद ने लक्ष्मी नारायण मन्दिर की स्थापना की। ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार कुल्लू का राजा जगत सिंह बहुत वीर, प्रतापी और

लोकप्रिय राजा था किन्तु वह कान का कच्चा था। विरोध का कारण यह था कि दुर्गादत्त नाम का ब्राह्मण जो मणिकर्ण के निकट टिपरी गांव में रहता था बड़े नेक स्वभाव का विद्वान तथा सदाचारी था। किसी दरबारी ने चुगली की कि ब्राह्मण बहुत अमीर है तथा राजा का विरोधी है। राजा ने ब्राह्मण को दरबार में बुलाकर और उससे एक 'पत्था' मोती लाने को कहा। ब्राह्मण मोती कहां से लाता। राजा के दंड और अपमान से घबराकर उसने अपना गला काटकर आत्म हत्या करली। राजा को जब पता चला तो पछताया। उसे पाप - स्वरुप भोजन में कीड़े दिखने शुरु हुए। वह बहुत दिनों तक परेशान रहा।

प्रायश्चित के लिए राजा के गुरु फुहारी बाबा ने ब्रह्म - हत्या के प्रायश्चित के लिए अयोध्या से रघुनाथ जी की मूर्ति लाने को कहा और रघुनाथ मन्दिर बनाने को कहा। राजा ने तुरंत दामोदर दास ब्राह्मण को भेजकर अयोध्या से रघुनाथ जी की मूर्ति मंगवाई। जिस दिन मूर्ति पहुंची उस दिन अश्विन शुक्ला दशमी थी। रघुनाथ को स्वागत के कुल्लू के सारे देवता उपस्थित हुए।

तब से कुल्लू - दशहरे की शुरुआत हुई। कुल्लू में रघुनाथ जी की मूर्ति अयोध्या से आई जबकि अर्की में लक्ष्मी नारायण की मूर्ति धारा नगरी - उज्जैन से लाई गई थी। अर्की दशहरे के अनुकरण पर समस्त पास वर्ती क्षेत्रों में भी दशहरे के अवसर पर 'रामलीला नाटक' तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के आयोजन गत 3 - 4 दशकों से प्रारम्भ हुए हैं।

बातल दशहरे की एक अन्यत्तम विशेषता रही है दशहरे के अवसर पर संगीत - सम्मेलन दशहरे की पूर्व - संध्या पर बातल में राष्ट्रीय - अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के गायकों वादकों के कार्यक्रम रहे हैं जिनकी व्यवस्था बिना सरकारी - सहायता के ग्राम वासी करते रहे हैं भारत वर्ष के महान गायक वादक नर्तम कलाकार बातल दशहरे पर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुके हैं। इनमें प्रमुख रहे हैं - उस्ताद अल्ला रखां, शोभा गुर्टू, लल्लू कव्वाल, चतुर लाल तबला वादक, अहमद हुसैन, मुहम्मद हुसैन, इला पांडे, चंदन दास, (गजल गायक) शर्मा बन्धु आदि। आकाशवाणी

शिमला, जालन्धर, दिल्ली के कलाकारों ने यहां कार्यक्रम प्रस्तुत किए हैं। बातल के संगीतज्ञ एस-शशि, जगन्नाथ भार्गव, मास्टर परमानंद, प्रो. नारायण इस कार्यक्रम की जान रहे हैं।

इन महान हस्तियों को कार्यक्रमों में निशुल्क लाने का श्रेय इस गांव के महान संगीतज्ञ एस. शशि को जाता है जो आकाशवाणी शिमला, जालन्धर तथा दिल्ली में संगीत निर्देशक रहे हैं। आज भी 'बातल दशहरा' अपनी परम्परिक पहचान बनाये हुए हैं। दो दिवसीय मेले में रात्रि को दोनों दिन राष्ट्रीय-स्तर के संगीत-कार्यक्रम आयोजित होते हैं। 4-5 हजार आबादी वाला गांव मेले के उल्लास में डूब जाता है। देश-प्रदेश से लोग यहां आकर अपने को कृतार्थ समझते हैं। कहा जा सकता है कि बातल दशहरा बाघल ही नहीं प्राचीन 30 ठकुराइयों की संस्कृति का केन्द्र रहा है तथा उस सांस्कृतिक धरोहर के अवशेष आज भी वर्तमान है।

दुर्गाष्टमी मेला-जरवौली देवी

अर्की का "जरवौली देवी" मन्दिर देवी भद्रकाली का स्थानीय नाम है। यह हिमाचल के प्राचीनतम मन्दिरों में से एक है। यह कलापूर्ण मन्दिर बाघल रियासत की स्थापना 14 वीं शताब्दी से पूर्व का मन्दिर है जो 16 वीं शताब्दी में एक खुदाई में अस्तित्व में आया था। इसीलिए लोक धारणा में इसे "स्वयं उत्पन्न" (अपपन्ना) माना जाता है। लोगों के अनुसार देवी ने इसे स्वयं बनाया था। खुदाई में इसके कलश तथा अनेक मूर्तियाँ खण्डित हो गई थी, जो अपने मूल रूप से मन्दिर में स्थापित अथवा व्यवस्थित की गई हैं। इस ऐतिहासिक भद्रकाली मन्दिर के परिसर में परम्परा से दुर्गाष्टमी के दिन (आठे को) "जरवौली मेला"धार्मिक आस्था-विश्वास से मनाया जाता है। अर्की के राजा यहाँ सर्वप्रथम पूजा करने आते थे। लोग अपनी खरीफ की फसल के नए उत्पादन देवी को भेंट करते हैं। देवी को बकरे की बलि देने की परम्परा है।

जरवौली का शाब्दिक अर्थ है 'यक्ष-अवली' अर्थात यक्षों का सरोवर।' शास्त्रीय धारणा में यक्षों का सम्बन्ध जल स्त्रोतों से जोड़ा गया है।

यहाँ एक बड़े विशालकाय पेड़ के तल से एक छोटी नदी के बराबर पानी गद्‌गद् बह रहा है। इस पानी से जरवौली गांव के अतिरिक्त अनेक गांवों की सिंचाई होती है। इस अथाह स्त्रोत के बारे में यहाँ एक जनश्रुति प्रचलित है - यहाँ के प्राचीन राजा ने एक नटुये के चमत्कारों से खुश होकर नटुये से यह शर्त रखी कि यदि वह यहाँ पानी निकाल दे तो उसे राज्य का एक भूखण्ड ईनाम में दिया जाएगा। नटुये ने पानी निकाल दिया लेकिन राजा ने शर्त पूरी न करके उसे मरवा दिया जिसके कारण पानी निरंतर बहता रहा। कहते हैं राजा को इस पाप के कारण मिरगी की बीमारी लग गई।

दुर्गाष्टमी के अवसर पर राजा अर्की पैदल जुलूस में कीर्तन मण्डली के साथ स्वयं पूजा - अर्चना करने आते थे जिससे मेले का रूप निखर जाता था। आज भी परम्परागत पूजा - अर्चना के अलावा यहाँ अनेक सांस्कृतिक - कार्यक्रम आयोजित होते है। यहाँ का लोक नाटक 'करयाला' बहुत प्रसिद्ध रहा है। मेले का प्रमुख आकर्षण यहाँ के विशालकाय पेड़, झील के रूप में बहता पानी तथा भद्रकाली मन्दिर है। बाद में यहाँ शिव मन्दिर की स्थापना की गई।

वस्तुकला का अद्‌भूत नमूना:- भद्रकाली का यह मन्दिर वास्तुकला - मूर्तिकला की दृष्टि से 11 - 12 वीं शती में निर्मित मध्य भारत में बने मन्दिर की शैली के समान लगता है। मन्दिर की मूर्तियाँ तथा दीवारें प्रस्तर शिलाओं को तराश कर बनाई गई है। पत्थर कहीं दूर से लाया गया था। वास्तुकला का कमाल यह है कि बड़ी - बड़ी लम्बी चौकोर चटटानों को घड़कर तथा चूने - सुर्खी के प्रयोग से तीन लघुमन्दिरों को आपस में जोड़ा गया है ये तीनों मन्दिर एक ही चटटान पर हैं। मन्दिर के कलश नौ फुट ऊँचाई पर स्थापित है। इसकी लम्बाई - चौड़ाई 9'x4½' विस्तार में है। लघु कक्षों में भद्रकाली, गणपति तथा मनसा देवी की तराशी पत्थर की लघु मूर्तियाँ हैं। भद्रकाली की 1½' ऊँची तराशी मूर्ति है जिसका रंग काला है। लघु कक्षों की लम्बाई क्रमण: 3'x1½'x3' है। मन्दिर में पूर्णतया चूने सूर्खी का प्रयोग है किन्तु आश्चर्य यह है कि पत्थरों के जोड़ स्पष्ट नहीं दिखाई देते। अद्‌भुत शिल्प के कारण इसे पाण्डवकालीन युग से इसीलिए जोड़ा जाता है।

भद्रकाली की मूर्ति के पाँव के नीचे शिवजी की जगह एक कंकाल की खण्डित मूर्ति है जो लगता है टूटने की वजह से बाद में लगाई गई है। मन्दिर परिसर में देवियों , यक्षों तथा गंदर्भों की मूर्तियाँ रखी गई हैं जो संभवत: खुदाई में निकली होंगी।

यहाँ ग्वालू के विषय में दंतकथा प्रचलित है। कहते हैं भगवती जब यहाँ मन्दिर का निर्माण कर रही थी तो वह रात्रि में स्वर्ग के लिए पौड़ियाँ बना रही थी किन्तु एक ग्वाले ने रात्रि को यह देखा तो पौड़ियाँ बनानी बंद कर दी। मन्दिर परिसर में पत्थर की संयुक्त तराशी पौड़ियां भी रखी गई हैं। कहते हैं ग्वालू इसलिए देवी के पैरों पर पड़ा है। एक अन्य दंत कथा के अनुसार एक ग्वाला यहाँ के लोगों की गौवें चराया करता था। रोज एक चमत्कार होता था कि उसकी गौओं में एक सफेद गाय चरने आ जाती थी जो शाम के समय रोज पानी के स्त्रोत वाली गुफा में जाकर लुप्त हो जाती थी। एक दिन ग्वाले ने उसका पीछा किया और गुफा में चला गया। वहाँ उसने देखा कि एक साधु समाधि में बैठा है तथा हवन - सामग्री पास रखी है। उसने साधु को प्रणाम किया। साधु ने ग्वाले को कुछ जौ की मुट्ठियाँ प्रसाद में दी, ग्वालू ने उन्हें चादर में रख लिया और प्रणाम कर बाहर चला आया। उसने उन्हें रास्ते में एक खेत में डाल दिया लेकिन घर जाकर जब उसने अपनी चादर में दो तीन दाने चिपके देखे तो वह हैरान रह गया - वे सब सोने की मुद्राओं में बदल गए। इस घटना से लोगों को देवी शक्ति के चमत्कारों का पता चला।

जखौली देवी मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से ही उतम नहीं है, वरना इससे मध्यकालीन इतिहास की परतें भी खुलती हैं। आज मन्दिर के चारों ओर दीवारों तथा छत का निर्माण किया गया है तथा इसके मूल ढांचे से छेड़छाड़ की गई है, फिर भी यह वास्तुकला का अद्भुत नमूना लगता है। सैंकड़ों वर्षों से इसकी स्थानीय पत्थर "कोऊ" से बनी दीवारें इसकी मजबूती का प्रमाण हैं।

जखौली मेले के अलावा वर्ष भर मन्दिर में श्रद्धालुओं का तांता लगा रहता है तथा यज्ञ अनुष्ठान होते रहते हैं। आज यहाँ आवागमन के लिए अर्की से आधे घण्टे में आसानी से पहुँचा जा सकता है।

ठोडे का मेला : कुनिहार

शरद् - पूर्णिमा मेला उच्चा गांव कुनिहार का ऐतिहासिक उत्सव है। यह ऐतिहासिक ताल के विशाल परिसर में माघ मास की पूर्णिमा को आस्था एवं विश्वास से आयोजित किया जाता है। अन्य उत्सवों की तरह यह उत्सव भी हिमाचल के प्रसिद्ध देवता 'सहस्रबाहु' अर्थात दानो देव के नाम पर आयोजित होता है। इस स्थानीय देवता की प्राचीन पीतल की मूर्ति मन्दिर में स्थापित की गई है। देवता का मन्दिर प्राचीन मन्दिरों की शिखर शैली में बना सुन्दर मन्दिर है। पहले यहां केवल पत्थर की मूर्ति थी। इसकी पूजा केवल पूर्णमासी एवं संक्रान्तियों को किसी ब्राह्मण द्वारा की जाती है।

ताल के आस - पास मेला जुटता है जो आधुनिकता लिए हुए है। देवता का रथ सजाकर पूजा - अर्चना के बाद सांय को मन्दिर में रख दिया जाता है। आजादी से पूर्व यहां तीरों के युद्ध के लिए सैन्ज और गलोट - पनेश से धनुर्धरों को बुलाया जाता था। दूसरी पार्टी स्थानीय होती थी। दो दिवसीय मेले के पहले दिन धनुष युद्ध करवाया जाता था, जो सहसबाहु - परशुराम युद्ध की याद दिलाता था। इस दौरान स्थानीय तूरी गायक - वादक ढोल - नगाड़े, और शहनाइयों से वातावरण को संगीतमय बनाते थे।

ठोडे का खेल

इस धनुष युद्ध के अतिरिक्त इस आयोजन में दो भिन्न गांवो के जाति - विशेष के दल आपस में एक दूसरे को घायल करने को कुछ दूरी से पत्थर मारते हैं। जब पत्थर किसी व्यक्ति को घायल कर देता है, तब मेला समाप्त हो जाता है। इसे 'ठोडे का खेल' कहते हैं। 'दानो' देव की स्मृति में यह खेल शिमला जिला, सिरमौर तथा सोलन के अनेक क्षेत्रों में शरद्पूर्णिमा को आयोजित होता है। आज का मेला आधुनिक रंग में रंग चुका है।

बैसाखी मेला – 'लाहल' कुनिहार

कुनिहार के ऐतिहासिक ताल के किनारे बैसाख के दूसरे प्रविष्टे को 'लाहल' का मेला प्रतिवर्ष श्रद्धा एवं धार्मिक भावना से मनाया जाता है। वास्तव में दो गुड्डे – गुड्डियों को सजाकर तालाब में डुबोने की परम्परा राजवंश के राजकुमार और राजकुमारी को श्रद्धांजलि ही है। 'लाहल' यहां का प्रसिद्ध उत्सव है। 'लाहल' (हलाल) का अर्थ है – अंग – भंग से मरना। कहते हैं 17 वीं शती में राजवंश की कोई कन्या यहां डूबकर मर गई थी। उसकी स्मृति में प्रतिवर्ष यह मेला मनाया जाने लगा। इस आयोजन में आज कन्याएं छोटी – छोटी मिट्टी की प्रतिमाएं डुबाकर इस मेले का प्रारम्भ करती हैं।

'लाहल' मनाने के विषय में ऐतिहासिक विवरणों में दो कथाएं प्रचलित हैं – किसी समय कुनिहार के एक राजकुमार को गिल्लड़ (गंडमाला) रोग हो गया था तथा वह बहरा भी था। धोखे से उसका विवाह एक सुन्दर राजकुमारी से कर दिया गया। शादी से पहले लड़की अपने वर के बारे में कुछ नहीं जानती थी। शादी के दौरान जब दुल्हा और दुल्हन दानो मन्दिर में पूजा – अर्चना करने गये तो वहां पहुंचते ही राजकुमारी ने तालाब में छलांग मार दी। जब राजकुमार ने उसे मरते देखा तो उसने भी तालाब में छलांग मारी। दोनों डूब कर मर गये।

दूसरी कथा के अनुसार राजकुमारी का विवाह किसी दूर देश के राजा के साथ जो आयु में अधिक था तथा संभवत: विजातीय था – से करने पर राजकुमारी ने तालाब में छलांग मार दी थी, उसे बचाने के लिए राजा ने भी छलांग मार दी थी। दोनों डूब कर मर गये थे। इन कहानियों से पता चलता है कि मां – बाप उस समय लड़की की इच्छाओं का ध्यान नहीं रखते थे।

इस स्मृति को जीवित रखने के लिए कुनिहार के राणा जोगी ब्राह्मणों को मिट्टी से दो घोड़ों की मूर्तियां बनाकर उन्हें वस्त्र – आभूषणों से अलंकृत कर एक पालकी में सजाने का आदेश देते थे। एक जुलूस की

शक्ल में राजमहल हाटकोट से तालाब तक मूर्तियों को ले जाकर डुबाया जाता था। यह कार्य 2 प्रविष्ट वैशाख को ठीक दिन के 12 बजे किया जाता था। सारे जनसमूह की आंखें नम हो जाती थीं। फिर दानो मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चना कर मेले का आनंद उठाते थे। आज भी यह धार्मिक आयोजन श्रद्धा-विश्वास से मनाया जाता है।

'लाहल' का वर्णन करते हुए हिमाचल के लोक कवि प्रो. नरेन्द्र अरुण ने राजकुमारी का मार्मिक वर्णन किया है -

''राजकुमारी गुलाबी खखलोटू, हिरणी जेड़े नैन,
अंबां दी डाली जियां कूके, कोयल जेड़े मिठड़े बैन
ताला बीचे राजकुमार समाया।
संवा मुल्खो री राजकुमारी पति चरणादे गई समाई।
आज कंवला रे फूल भी राची गयें, राची गई से नशाणी
एक था राजा एक थी राणी, दोनों समाए खत्म कहाणी।''

बणी मेला : हरदेवपुरा

ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार हरदेवपुरा में निर्मित बणी देवी मन्दिर के प्रांगण में बणी मेला पिछली सदी से मनाये जाने की परंपरा रही है। कुनिहार का बणी मेला बाघल के त्यौहारों के समकक्ष बणिया देवी की तरह मनाये जाने की परमपरा मिलती है। दुर्गा के स्थानीय नाम 'बणी देवी' के नाम पर इस स्थान का नाम पहले बणी था। यह स्थान कुनिहार बाजार से 2 कि. मी. की दूरी पर है। यह ज्येष्ठ मास की अष्टमी को मनाया जाता है। देवी के पूजा-अर्चना के साथ अब इस मेले ने आधुनिक रुप ले लिया है।

सायर – मेला अर्की

भारतीय धरा नैसर्गिक सुन्दरता से परिपूर्ण है। यह शस्यश्यामला है। छः ऋतुएं नये – नये बदले हुए परिधानों के साथ इसके कलेवर को सजाती हैं। नाना ऋतुओं की रमणीयता इसकी अपनी महती विशेषता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा, वसन्त मानव मन को ऋतु परिवर्तन के साथ यहां आल्हाद एवम् उल्लास प्रदान करते हैं।

नवऋतु के आगमन पर यहां प्रसन्नता की अभिव्यक्ति पर्वों तथा त्यौहारों के रुप में प्रस्फुटित होती है। वासन्ती वेला में 'बसन्त पंचमी' वैशारव में बैशारवी के उत्सव और सर्दी में शरद् – पूर्णिमा मनाने की परमपराएं है।

हिमाचल की धरा हरी – भरी वादियों से परिपूर्ण विहंसती मालूम होती है। नदियां, खड्डे, प्रपात, ताल इसकी अधित्यकाओं तथा उपत्यकाओं को सरोबार करती हुई इसके कुंजों,निकुंजो और वनस्थितियों को हरियावल प्रदान करते हैं। कृषि प्रधान क्षेत्र हिमाचल में वर्षाकाल का अपना महत्त्व है। यहां पर धुंध से आच्छन्न उतुंग घाटियां और शिखर दृष्टि को संकीर्ण करते है। पहाड़ी मार्ग लता गुल्मों एवं झाड़ – झंखाड़ों से कंटकाकीर्ण हो जाते हैं। तब कोई पर्वत सुता चहक उठती है –

चारों धूरा देखिया चारो दिशशों न्हेरिया
मांऊं मेरी नजरी नी आउंदा जी लोका।

और

'आया महीना सौण, मीठी – मीठी पौण, लसक डरावणी ....
घनियो घोर बिजली दा दौर लसक डरावणी ......
हाथे रहियो तलवार, देख्या किस्से मार दी ....
जिना दे पिये घरे होय, सेयो सब दुख बिसरे।'

इसीलिये एक 'सावनगीत' में परदेस जाते हुये 'पिया' से गोरी कहती है :

'सौण न जायो पिया नदिया चढिया भादू महीने राती न्हेरियां।'

सावन भादों की इस मानसिक मलीनता के कारण जनमानस नयी स्वच्छ शरदऋतु आश्विन मास की सायर सक्रांति की प्रतीक्षा करता है .... नदियों, जलाशयों, तालों का जल स्वच्छ शुभ जो हो गया है। उसमें गंदलापन नहीं रहा। वन वीथियों, पगडंडियों में कीचड़ नहीं रहा। कीट पतंगे भी कहीं खो गये। आसमान निरभ्र एंव नीलाभ! तारावली किसी सरोवर में मुस्कराते कमल दलों की तरह दृष्टिगोचर होने लगी है। घुमड़ती बदलियां क्षितिज में लुप्त हो गई है।

शरद आगमन पर 'सायर के टिड्डे' की चित्ताकर्षक ध्वनि ''सायरो आई, सायरो आई .... आई .... आई .... आई .... सायरो आई'' - सुनने को मिलती है। अश्विनी सक्रांति पर पहाड़ों पर अवस्थित छः माह से सोये लोक देव जाग जाते हैं। वे रंग - बिरंगी पालकियों में गांव गांव नृत्य करने चल पड़ते हैं। सायर को ऋतु पर्व के रूप में पूरे प्रदेश में मनाने की परम्परा है। खरीफ की फसल तथा ऋतु फल अब प्रायः पक कर तैयार हो जाते हैं। मक्की के भुट्टे, दाड़िम निम्बू धान तथा कदली फल और अमरुद सर्वप्रथम देव मन्दिरों में देवता को भेंट किये जाते हैं। देवता को प्रथम बार भेंट करने के बाद ही ग्राम वासी इन्हें चख सकते हैं.....।

सायर के जल को ब्रह्ममुहूर्त में प्रातः ही सर्वप्रथम चखने के लिये ग्राम स्त्रियां जलाशयों एवं सरोवरों की ओर चल पड़ती है। पवित्र स्नान से सारा वर्ष अच्छे स्वास्थ्य की कामना भी तो करनी है। सायर पर मेले जुड़ते हैं। हिमाचल के अर्की, कुनिहार, मशोबरा तथा कांगड़ा के अनेक भागों में फसलों का यह पर्व आदिकाल से परम्परा के रुप में मनाया जा रहा है। चम्बा का मिंजर भी इसकी ही परिणति है। इस अवसर पर ऋतु फलों का क्रय विक्रय होता है। 'झोटों की लड़ाई' इस पर्व की एक परम विशेषता है। रजवाड़ों के समय भैसों की लड़ाई के साथ मुर्गों तथा मेढ़ों की लड़ाई भी होती थी। अर्की में आज भी यमराज के वाहनों का यह युद्ध आयोजित होता है। पारम्परिक गीतों में इस पर्व की शालीनता देखी जा सकती है -

''जागिये गोपाल लाल नंद के पियारे,

सूरमा गौवों का मैं गोवा मंगवाऊं कृष्ण जी आये पहावणे।

जमना जी का 'नीर' मंगवाऊं कृष्ण जी आये पहावणे।''

प्रातः ही प्रौढ़ा एवं युवती महिलाओं की मंगल ध्वनि गूंज उठती है –

''जागिये श्याम सुन्दर पहला दर खोलिये।

जागिये श्याम सुन्दर जमना का नीर लाइये।

जगिये श्याम सुन्दर पहले अंगना अपना बुहारिये।''

देवालयों में रोट कड़ाह एवं अन्न यज्ञ प्रारंभ हो जाते हैं। ग्रामवासी मनौतियों को पूरा कर देवता को घर आंगन में नचाते हैं। सायरपर्व के साथ ही तो देवगण (देवोत्थान) हुआ है। देवता के मन्दिर में कहीं नया अन्न पक रहा है .... कहीं बकरे कट रहे हैं तो कहीं नारियल ....?

इस पावन पर्व पर हिमाचल के अर्की बातल, कुनिहार, बिलासपुर, बघाट क्षेत्रों में किशोर बच्चे रात्रि को झोली लेकर एक अतिप्राचीन लोकगीत दरवाजे पर जाकर गाते हैं।

'सायरो आई रे माठेयो रता पो आई रे

वण खेले गाबर टेबर वण खेले मोरा रे

मोरा खल्यांदडवा तेरी आड्डी छणाक्की रे।

तेरी चोटी फणाकी रे

किरकडुवा पाइडुवा घडोलू दे छाइरा

एडा नांवो लिख्या रे भाइयों, उड्डी बी दशा रे

भरी कटोरा देंदिये, भरी देओ छाज

जीयो तुसा रे बुंगरु, आसे आये आज

चटकणिये नी मटकणिये, रंगी तेरी डोर

भरी पराला ठाकरी पादे पूजू खोड़

देओ भाइयो दाडू खोड़।''

'अरे लड़को, सायर आ गई। हर सुबह शाम रंगीन हो गई। मन में मयूर और ग्वाल बाल झूम रहे हैं। ऐ किरकडू भाई, हमें छाछ का घडोलू दे। हम तो घर आये हैं। ऐसा दान दो कि तुम्हारे खानदान के नाम की लाज रह जाये। ऐ दान देने वाली घर की मालकिन हमें कटोरा और छाज भरकर अन्न धन दो। तुम्हारे बच्चे लाखों वर्ष जीएं। तुम्हारे दही के मटके की डोर रंगी रहे (अर्थात दूध दहीं की नदियां बहे) हमें ऋतु फल दाडू और अखरोट प्रदान करो। पहाड़ों में कहावत प्रचलित है -

तीन महीने गरमियां दे, तीन महीने बरसात
रीति बे करीती फिरी - घिरी आऊंदिया,
मेया नी आऊंदा दूजी बार।''

ऋतुएं तो बदलती हुई आती रहेगी। कोई सुहावनी बनकर कोई मन को मलीन करती हुई .... दु:ख के बाद सुख और सुख के बाद दु:ख .... पर मृत व्यक्ति फिर लौट कर नहीं आता। शरद बीतने पर घाटियों में सायर के टिड्डे के स्वर गूंज उठते हैं -

''सायरो गई - - सायरो गई ....।''

घणागू घाट मेला

ज्येष्ठ मास में 20 प्रविष्टे को देव मंढोड़ के सम्मान में मनाया जाने वाला घणागूघाट मेला आज अपना विशेष स्थान बना चुका है। परम्परा से घणागू घाट में आस-पास के ग्रामवासी देवता की पूजा-अर्चना तो करते ही थे, परन्तु लगभग 3 दशक पूर्व इस देवस्थान में 'देव मेला' ही मनाया जाने लगा। घणागू गाँव दाड़लाघाट से लगती पर्वत श्रेणी पर 5500 की ऊँचाई पर स्थित यह एक रमणीक एवं ठण्डा स्थान है जिसके आस-पास बान, चीड़, पाजा आदि से भरपूर वन-सम्पदा है। यहां अर्की तथा दाड़लाघाट से आसानी से पहुंचा जा सकता है। कराड़ा घाट सुख्य सड़क से यह लगभग 5 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

घनागू मेले से पूर्व दाड़लाघाट के कोटला गांव से हर चार वर्ष बाद गण देवता का रथ घणागू के रास्ते गण देव के प्रथम पड़ाव गांव कल्हारन देव-यात्रा के रुप में लाया जाता था। बीच में विश्राम के लिए गणदेवता की पालकी घणागू में रुकती थी तथा इसकी सार्वजनिक पूजा अर्चना तथा मान-मनौतियां की जाती थी। ऐसी ही एक यात्रा के दौरान स्थानीय लोगों ने इसे मेले का रूप देने का निर्णय किया।

गण देवता के वजीर के अनुसार 'गण देवता' चन्देल वंश के पूर्वजों का इष्ट रहा है जिसे चन्देरी से आने वाले किसी राजकुमार ने इसे यहां स्थापित किया था। गण देवता शिवगण है जिसे नाग का रुप माना जाता है। वस्तुत: यह सती के आत्मदाह के समय शिव की जटाओं से उत्पन्न रुद्रगण वीरभद्र है। इसके प्रमाण मध्य प्रदेश के चन्देरीगढ़ दुर्ग के भीतर दीवारों पर नाग देवता के चित्रों के रुप में देखे जा सकते है। गण देव के गले में नाग, साथ में महाकाली, ज्वालामाई तथा दरवाणी के मोहरे हैं। देवता का मन्दिर भले ही कोटला गांव में है लेकिन मूल स्थान दाड़ला-मुख्य सड़क के साथ बना जालपा माता मन्दिर है जिसके परिसर में यह प्रस्तर मूर्ति के रुप में स्थित है।

गण देव रथ-चक्र के साथ पालकी में सज्जित वाद्यों के साथ प्रात: कोटला से घणागू के लिए यात्रा पर निकलता है और लम्बे जुलूस की शक्ल में घणागूघाट पहुँचता है। देव यात्रा का आयोजन कोटला वाले ही करते हैं। बड़ी संख्या में लोग इक्ट्ठे होते हैं। ढोल, नगाड़े, शहनाई, रणसिंघा, करनाल, घंटियां, छेणे आदि से देवता का नृत्य होता है। देवता को चंवरमुट्ठा झुलाया जाता है। इस बीच खूब गूगल धूप जलाया जाता है।

मंढोड़ देव परिसर में देवता के नृत्य के बाद 'पूछ' मनौतियां अदि ली जाती है। लोग अन्न धन फसलांश अर्पित करते हैं। मंढोड़ देव यहां का ग्राम देव है जिसे 'कुरगण' कहा जाता है। कुरगण प्रकाश सिरमौर राज्य का राजकुमार था जो 12 वीं शती के प्रारम्भ में गिरि नदी की बाढ़ के कारण मंढोड़घाट (सुन्नी) आया था। उसे यहां देवता का दर्जा मिला। यहां से ही इसकी पूजाएं पूरे क्षेत्र में स्थापित हुई।

वर्तमान समय में यह देव पूजा के साथ आधुनिक रंग में रंग गया है। अब सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ राजनैतिक रंग भी मेले पर चढ़ने लगा है। कह सकते हैं कि अर्की के मेलों में इस मेले ने अपना विशेष स्थान बना लिया है।

धारड़ू धार मेला – पलोग

देव धारावाला (जगदेव परमार) की स्मृति में मनाया जाने वाला धार्मिक – मेला है। यह अर्की की पलोग पंचायत में कार्तिक – मास की शुक्ल पक्ष द्वादशी तिथि को आयोजित होता है। इस पहाड़ी की पूर्वी ढलान शिमला जिले में पड़ती है, अत: यहां दूर के क्षेत्रों के लोग भी मेले में सम्मिलित होते है।

मेले का प्रमुख आकर्षण देवता की पूजा – अर्चना है। गांव के चौराहे पर रात्रि को 'बरलाज' का आयोजन होता है जिसमें 'रामकथा' गाई जाती है। चौपाल में बीच में एक जगह लकड़ियों का ऊँचा ढेर लगाकर रात भर आग जलाई जाती है जिसके पास लोक गायक राम कथा स्थानीय भाषा में सुनाते हैं। सुबह बरलाज पूजा कर लोग ढोल नगाड़े बजाते मेला – स्थल की ओर प्रस्थान करते हैं।

आज मेले पर आधुनिक रंग चढ़ गया है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों के अतिरिक्त कृषि प्रदर्शनी भी लगाई जाती है। वास्तव में यह ऐतिहासिक मेला गांव के बसने के इतिहास को अनावृत करता है।

मांजू मेला – 14 नवम्बर

14 नवम्बर 'बाल दिवस' के अवसर पर मनाया जाने वाला मेला हिमाचल के राष्ट्रीय उत्सवों में एक विशेष महत्व रखता है। यूं तो मेले का आयोजन स्थानीय पाठशाला प्रांगण में होता है, किन्तु इसके पिछले भाग में 'मंढोड़ देव' (कुरगण) का प्राचीन मन्दिर है। इस दिन देवता की पूजा अर्चना कर लोग 'बाल दिवस' के सांस्कृतिक कार्यक्रम का आनंद उठाते हैं। हाथों में ध्वज उठाये लोग गांव की परिक्रमा करते हैं तथा देव वाद्यों

के संगीत के बीच देवता की 'थड़ी' पर नतमस्तक होते है।

इस मेले का विशेष आकर्षण रात्रि को होने वाला 'करयाला' लोक नाटक है। भारत के प्रथम प्रधान मंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के जन्मदिन को समर्पित यह मेला देशप्रेम को अभिव्यक्त करता है। इस दिन सांस्कृतिक कार्यक्रम के अतिरिक्त बच्चों की खेलकूद प्रतियोगिताएं इस मेले के प्रमुख आकर्षण हैं।

रियासत के समय से प्रचलित लोक नाट्य 'करियाला' का आयोजन परम्परागत रूप से आज भी आयोजित होता है।

'चण्डी – जात' मेला

चण्डी यात्रा मेला बैशाख मास में अर्की के चण्डी गांव में चार देव रथों की यात्रा के साथ आयोजित होता है। वास्तव में देव यात्रा को ही देवता की जात कहते हैं। चण्डी गांव हरसंग धार के दामन में कराड़ाघाट (अर्की) से 12 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। यहां देवी का सुन्दर ऐतिहासिक मन्दिर है। मेले के दिन मन्दिर - प्रांगण में चार देवताओं को रथ नाचते गाते यहां आते है। एक रथ हरसंग देव (दामोदर ऋषि) हरसंग धार से दूसरा रथ मांगू गांव से तीसरा रथ ग्याणा से तथा चौथा रथ बडोग गांव से आते हैं। देवता को नचाने के बाद लोग देवता को अन्न धन्न अर्पित करते हैं तथा सुख - समृद्धि की कामना करते हैं। वास्तव में यह मेला आसपास के गांवों की एकता तथा भाईचारे को प्रदर्शित करता है। साल भर लोगों को इस मेले को मनाने की ललक रहती है। यह मेला लोक देव द्वारा माता के चरणों में नतमस्तक होने को भी प्रकट करता है। कहते हैं चण्डी कशलोग क्षेत्र में पुराने समय में अति वृष्टि होती थी तथा ओलों से फसलें तबाह हो जाती थी तभी लोगों ने राजा द्वारा इस मन्दिर की स्थापना करवाई।

आज यह मेला आधुनिक रुप ले रहा है। मनोरंजन के लिए अनेक सांस्कृतिक गतिविधियां मेले के दिन आयोजित होती है।

शूलिनी मेला – सोलन

शूलिनी देवी ऐतिहासिक बघाट रियासत के राजवंश की कुल देवी है। जैसा प्राय: समस्त हिमाचली क्षेत्रों में राजाओं के पितरों अथवा कुलदेवी–कुलदेवों के नाम पर मेले–उत्सव मनाने की परंपरा है, राजवंश की कुलजा शूलिनी देवी के नाम पर परंपरा से मेला मनाया जाता है। 'सोलन मेला' प्रतिवर्ष आषाढ मास के द्वितीय रविवार को ठोडो मैदान में मेले के रुप में आयोजित होता है।

'शूलिनी देवी' दुर्गा भगवती का एक रुप है जिसे असुरों के वध के लिए देवताओं ने अपने – अपने शस्त्र प्रदान किये थे। भगवान शंकर ने अपने त्रिशूल से एक शूल निकालकर भगवती को प्रदान किया था, अत: इसके इस रूप को 'शूलिनी' कहा गया। हिमालयी क्षेत्रों में 'शूलिनी' अथवा दुर्गा के सात रूप लोकदेवियों के रुप में पूजे जाते हैं – हिंगलाज, ज्वालाजी, लगासनी नैना देवी, नाउगी देवी, तारा देवी तथा मनसा देवी।

ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार बघाट की पहली राजधानी जौणा जी थी जो सोलन से 12 कि. मी. दूर है। बाघल राज वंशावली के अनुसार बाघल–बघाट रियासतों की स्थापना मालवा (धारा नगरी–उज्जैन) से मुगलों द्वारा विस्थापित परमार वंश के दो भाइयों अजय देव एक विजय देव (बघाट) ने की थी। किन्तु अन्य प्रामाणिक दस्तावेजों के अनुसार बघाट की स्थापना बसंत पाल अथवा हरिचन्द पाल ने की थी। संभवत: विजय देव किसी युद्ध में मारा गया होगा, अथवा भाग गया होगा।

शूलिनी की मूल मूर्ति जो संभवत: प्रथम शासकों द्वारा मध्य भारत से लाई गई थी जौणा जी में आज भी वर्तमान है। 1875 ई. में राजा दिलीप सिंह ने सोलन को राजधानी बनाया, जिसमें उसकी रानी जयवंती का विशेष हाथ था। कहते हैं यहां पहले से ही शूलिनी अथवा चामुण्डा का मन्दिर था जो राजवंश की कुल देवी भी थी। अत: राजा के द्वारा इसके आस पास छाबनी बनाने से उन्होने इसका नाम सोलन रखा।

उसे स्वाभाविक रुप से कुलजा के रुप में पूजा। सोलन का नाम शूलिनी देवी के नाम पर पड़ा। प्रारम्भ में इसका नाम ''सोलणी'' था, किन्तु अंग्रेजों द्वारा इसके आस पास छाबनी बनाने से उन्होने इसका नाम सोलन रखा।

बारह घाटों का राजा होने के कारण इसका नामकरण 'बघाट' हुआ। ये हैं - घई घाट, देऊँ घाट, लावी घाट, ओच्छ घाट, काला घाट, चम्बा घाट, कण्डा घाट, क्यारी घाट, वाकना घाट, कैथली घाट, शाला घाट एवं गुग्गा घाट। बघाटी बोली इनमें समान रुप से बोली जाती है। सोलन गंज बाजार में प्राचीन दुर्गा मन्दिर है जो पूर्व में एक पिंडी के रुप में अस्तित्व में आया था। इसे शूलिनी माता माना जाता है। शूलिनी मेले के अवसर पर देवी मूल - मन्दिर से पालकी में सवार तीन दिनों के प्रवास के लिए इस मन्दिर में पधारती है।

शिमला - कालका मुख्य मार्ग पर स्थित होने के कारण इसका भौगोलिक महत्व होने के कारण यह जिले का मुख्यालय है, जो विशाल नगर का रुप ले चुका है। स्वाभाविक है कि सोलन मेले को विशेष महत्व मिले। आज यह मेला 'राज्य स्तरीय' मेलों में सम्मिलित है, जिसमें राष्ट्रीय - स्तर के सांस्कृतिक आयोजन होते हैं।

परंपरा की तरह देवी की मूल मूर्ति को पालकी में सजाकर लोक - वाद्यों की धुनों पर थिरकते लोगों के साथ कचहरी, चौक बाजार, अपर बाजार तथा माल रोड़ से वापिस गंज तक परिक्रमा करवाई जाती है। लोग देवी को गेंहू की नई फसल तथा अन्य उत्पादों की भेंट करते हैं।

ठोडो मैदान में 'ठोडे का खेल' कौरव - पाण्डव युद्ध अथवा परशुराम - सहस्रबाहु युद्ध का स्मरण करवाता है। इस खेल में दो - दल एक दूसरे पर पत्थरों अथवा तीरों से हमला करते हैं। यह तब तक चलता है जब तक कोई घायल न हो जाए। इस खेल के कारण ही इस मैदान का नाम ठोडो ग्राऊंड पड़ा है।

आज राजकीय स्तर पर सोलन मेला अपनी पहचान बना चुकी है। राष्ट्रीय - स्तर पर कुश्तियों का आयोजन मेले का प्रमुख आकर्षण रहता है।

गुग्गा जाहरपीर मेला – सपाटू

हिमाचली संस्कृति में पराक्रमी वीरों को देवता मानने की परम्परा रही है। असंख्य मध्ययुगीन राजपूत – वीरों की तरह राजस्थान के गुग्गा चौहान अथवा 'गोगा चौहान' के पराक्रम तथा मुगलों से युद्ध के कारनामें इनकी वीर – गाथा में कई भारतीय प्रदेशों में सुनाये जाते हैं। गुग्गा चौहान का सम्बन्ध 11 वीं शती के आक्रांता महमूद गजनवी से युद्ध में विजय के साथ जोड़ा जाता है।

भाद्रपद की कृष्णपक्ष की नवमी तिथि को इनके जन्मदिन अथवा अपनी पत्नी से रात को मिलन के उपलक्ष्य में श्रद्धालुओं द्वारा भक्तिभाव से यह मेला मनाया जाता है। इनकी पूजा अर्चना हरियाणा, हिमाचल, राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश आदि राज्यों में हिन्दू और मुसलमानों द्वारा समान रूप से की जाती है।

गुग्गा नवमी मेला सोलन जिले के सपाटू में गत शताब्दी से मनाया जाने वाला प्रदेश का महत्त्वपूर्ण लोकप्रिय धार्मिक मेला है। उत्तरी भारत में गुग्गा नवमी के मेले अनेक स्थानों में आयोजित होते हैं, किन्तु सपाटू में यह 11 सितंबर से 14 सितंबर तक भाद्रपद सप्तमी से दशमी तिथि तक गुग्गा मंदिर सपाटू छावनी केन्द्र के मैदान में आयोजित होता है। गुग्गा माड़ी मन्नतों के लिए प्रसिद्ध है।

गुग्गा की जन्मस्थली राजस्थान के चुरु जिला में ददेरवा नाम से तथा समाधि मंदिर 'गोगा मैड़ी' के नाम से प्रसिद्ध है। यह तहसील भादरा, जिला गंगा नगर के निकट है। राजस्थान के बागड़ प्रदेश में उन्हें 'बागड़ वाला' कहते हैं। गोरख नाथ के गुग्गल रूपी प्रसाद के प्रभाव से जन्म लेने के कारण उन्हें 'गोगाल वीर' भी कहा जाता है। उनका एक नाम 'जाहर वीर' है। जब उनकी अलौकिक शक्ति तथा वीरता जाहिर हुई तो उन्हें 'जाहर पीर' कहा गया। सर्पों का देव होने के कारण इन्हें 'गुग्गा जाहर पीर' भी कहा जाता है। 'गोगा पीर' को जनमेजय का अवतार माना गया है। गुग्गा के प्रादुर्भाव की कथा नाथ संप्रदाय के 'योग पंथ' में वर्णित है।

हिमाचल के बिलासपुर, सिरमौर, मण्डी, हमीरपुर आदि क्षेत्रों में गुग्गा गाथा के विभिन्न रूप मिलते हैं, किन्तु मूल भाव एक ही है।

गुग्गा की माता बाछल, जो सिरसावा के राजा कंवर पाल की पुत्री थी और जिसने गुरु गोरखनाथ की तपस्या बारह वर्ष तक की, उन्होंने उसकी पूजा-अर्चना से प्रसाद रूप में अभिमंत्रित गुग्गुल उसे दिया। इसके प्रभाव से 5 बंध्या माताओं ने पांच वीरपुत्रों को जन्म दिया। बाछल से जाहरवीर गुग्गा, पुरोहतानी से नरसिंह पांडे, दासी से भज्जू वीर, मेहतानी से रत्नावीर तथा बन्ध्या घोड़ी से नीलाम्बर वीर का जन्म हुआ जो गुग्गा की सवारी था। इन पांचों वीरों का सनातम धर्म एवं गोरक्षार्थ यवन राजाओं से संग्राम हुआ जिसमें गुग्गा और नीलांबर को छोड़ कर सभी वीरगति को प्राप्त हुए। अंत में गुरु गोरखनाथ के तंत्र-मंत्र प्रभाव से गुग्गा पीर ने नीले घोड़े सहित धरती में जीवित समाधि ली।

राजस्थानी कथा के अनुसार 'गोगा पीर' का विवाह असम में काम रूप-राजा की बेटी सिरियल देवी से हुआ था जो गोरखनाथ जी के आशीर्वाद से उत्पन्न हुई थी। उनकी मौसी काछल का विवाह भी ददेरवा में ही हुआ और उनसे अरजन नाम के दो पुत्रों ने जन्म लिया। वे गोगा जी से वैरभाव रखते थे। जब उनमें उत्तराधिकार का विवाद हुआ तो वे महमूद गजनवी की शरण में चल गये। गजनवी ने गोगा को प्रभावित करने की कोशिश की, किन्तु उसकी एक न चली। उनके दानों मौसेरे भाइयों ने गोगा जी को अपमानित करने हेतु उनकी पत्नी से अभद्र व्यवहार किया। फलस्वरूप इन्होंने दोनों भाइयों का वध कर दिया। इससे नाराज होकर उनकी माता बाछल ने उन्हें देश निकाला दे दिया।

बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित गाथा के अनुसार आछल, काछल औ बाछल राजा इन्द्र के अखाड़े की तीन परियां थीं, जिन्हें शापवश मृत्युलोक में आना पड़ा। दिल्ली के राय पिथौरा नामक बादशाह ने जंगल से उठाकर उनका पालन-पोषण किया। युवा होने पर काछल और बाछल की शादी राजस्थान में दो राजाओं से कर दी। और काछल का कहीं और।

कई गाथाकार काछल और बाछल को मारु (राजस्थान) के राजा ज्योर के साथ ब्याहना मानते हैं। ज्योर के कोई संतान नहीं हुई, अत: संतान हेतु बाछल ने गुरु गोरखनाथ की भक्ति की। जब वे बाछल को संतान हेतु फल देने के लिए मारु देश आये तो फल की प्राप्ति धोखे से काछल ने कर ली। जब गोरखनाथ जी को पता चला तो उन्होंने विषणु भगवान से फल लाया और बाछल को दिया जिससे पराक्रमी गुग्गा का जन्म हुआ। काछल के अरजन और सुरजन नाम के दो लड़के पैदा हुए। वे गुग्गा से द्वेष रखते थे। गुग्गा की शादी कौरु देश के राजा संझी (मालप) की लड़की के साथ तय हुई, लेकिन राजा ने बाद में ब्याहने से इन्कार कर दिया। गुग्गा उससे शादी करने पर तुल गया और गोरखनाथ की सहायता से उसने संझी की लड़की सुरिहल से शादी कर ली। अरजन और सुरजन उससे मारु देश का आधा राज्य मांगते थे परन्तु गुग्गा उन्हें राज्य देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने मुसलमानों की सहायता से गुग्गा पर आक्रमण कर दिया। गुग्गा की विरोधी सेनाओं से सात लड़ाइयां हुई, जिनमें 'बागड़ खेड़ी' एवं '' गढ़-गजनी'' प्रसिद्ध हैं। अरजन और सुरजन को मौत के घाट उतारा गया जिससे मां बाछल ने गुग्गा को भी मरने का आदेश दिया। गुग्गा ने धरती में समाना चाहा किन्तु धरती ने उसे हिन्दू होने के नाते अपने में समाने से इनकार कर दिया और कहा कि पहले वह मुसलमान बने इसलिए गुग्गा पहले मक्का-मदीना गया फिर घोड़े के साथ धरती में समा गया। अब सुरहिल विलाप करने लगी। गोरखनाथ की कृपा से गुग्गा रात्रि को सुरहिल से मिलने आने लगा। इससे बाछल नाराज हो गई। उसने उसे दिन में आने को कहा, परन्तु जब वह दिन में आया तो वह मैदान में ही घोड़े के साथ पत्थर बन गया। बाद में उसी स्थान पर 'गुग्गा मढ़ी' की स्थापना की गई।

सोलन क्षेत्र की मान्यता के अनुसार बाछल ने जब 12 वर्ष तपस्या की तो गोरखनाथ जी ने उन्हें सोमवृक्ष की जड़ प्रदान की। इन जड़ों के चूर्ण को दिन में दो बार सेवन करना होता था। बाछल एक शिला पर जड़े पीसती थी। उस चूर्ण से उसे पुत्र-रत्न मिला-गुग्गा। शिला पर जो चूर्ण बच गया। वह बाछल की तीन सहेलियों ने खा लिया। इनके क्रमश:

नरसिंह भजनू तथा रत्नू पैदा हुए। शेष चूर्ण शिला पर बाछल की घोड़ी ने चरवा जिससे नीला घोड़ा पैदा हुआ।

सिरमौर में प्रचलित कथा के अनुसार राजा जेवर और उसकी पत्नी बाछल ने संतान के लिए गुरु गोरखनाथ की भक्ति की। गुरु ने बाछल को गुगल धूप दिया और उसे सवा गज स्थान पर जलाने को कहा किन्तु ऐसा करने से पूर्व वासुकि नाग ने उसे बाछल को दिया और नुसार गुग्गा ने श्रीगुल को दिल्ली में मुसलमानों की कैद से छुड़ाया था।

पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। लोक गाथा के अनुसार गुग्गा ने श्रीगुल को दिल्ली में मुसलमानों की कैद से छुड़ाया था।

मण्डी में प्रचलित गाथा के अनुसार राजस्थान में खण्डभामा नाम की राजा था। उसने पृथ्वी पाल नामक राजा की बाछल व काछल नाम की दो कन्याओं से शादी की। बाछल ने संतान हेतु गुरु गोरखनाथ की भक्ति की, किन्तु इसका फल धोखे से काछल ने ले लिया। गोरखनाथ को जब पता चला तो उसने बाछल को पुत्र-वरदान दिया जो पराक्रमी होगा तथा काछल को पुत्रोत्पति के बाद मरने का शाप दिया। बाछल के गुग्गा और काछल के अरजन-सुरजन पैदा हुए।

गुग्गा के पिता ने गुग्गा को राज्य का उत्तराधिकारी मनोनीत किया, किन्तु राणा के मरने के बाद गुग्गा के भाइयों अरजन-सुरजन ने राज्य हड़प लिया। परिणामस्परुप उनका परस्पर घोर युद्ध हुआ जिसमें गुग्गा की विजय हुई। वह वासुकि नाग का पुजारी था। अतः वासुकि नाग ने अपनी कन्या का विवाह गुग्गा से कर दिया और उसे वरदान दिया कि सिर कट जाने पर भी वह लड़ता रहेगा। हिमाचल में अनेक स्थानों पर गुग्गा मैहढ़ियां हैं जहां पर गुग्गा नवमी को मेले जुड़ते हैं। रक्षा बंधन के दिन से ही गुग्गा भक्त मंडलियां बनाकर तांबे का त्रिशूल, छतरी, घड़ी तथा नाग प्रतिमाएं लेकर घूमने निकलते हैं।

चायल सिद्ध मेला

पर्यटन-स्थली चायल या चैल सुन्दर पहाड़ी पर स्थित एक ऐतिहासिक लघु-नगर है। 6500 फुट की ऊँचाई पर स्थित चायल 1815 ई. गोरखा-आक्रमण से पूर्व क्योंथल (शिमला-हिल-स्टेट्स) रियासत के अन्तर्गत था। गोरखों के पतन के पश्चात यह अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया।

अंग्रेजों ने पटियाला के तत्कालीन राजा भूपेन्द्र सिंह से प्रसन्न होकर उसे यह क्षेत्र भेंट किया था। भूपेन्द्र सिंह ने यहां भव्य महल का निर्माण करवाया। इसे आज चायल पैलेस होटल के नाम से जाना जाता है। यह वर्तमान में कण्डाघाट तहसील के अर्न्तगत आता है। पहले इसे 'कोहिस्तान डिस्ट्रिक' कहा जाता था। चायल पैलेस से थोड़ी दूर पहाड़ी पर विश्व का सबसे ऊंचा क्रिकेट मैदान है।

पटियाला राज्य से पूर्व यह क्योंथल राज्य का भाग था तथा यहां का सिद्ध बाबा का मन्दिर उतना ही प्राचीन है। चायल मेला उपमण्डल का लोकप्रिय स्थानीय मेला है। यह प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मास के अन्तिम रविवार को मनाया जाता है। मेले के प्रारम्भ के विषय में बड़ा रोचक प्रसंग है -

कहते हैं महल-निर्माण के लिए जैसे ही खुदाई का कार्य शुरू हुआ, मजदूरों को जहरीली मक्खियों का हमला हो जाता। अन्त में एक महात्मा ने बाताया कि यहां सिद्ध बाबा का स्थान है। पहले यहां सिद्ध का मन्दिर बनाना पड़ेगा।

अत: राजा ने वहां मन्दिर बनवाया। सिद्ध पूजा अर्चना हेतु यहां प्रतिवर्ष मेला जुड़ता है जिसमें हजारों लोग सम्मिलित होते हैं। 3 दिवसीय मेले में दो दिन तक बड़ा दंगल आयोजित होता है। आज यह आधुनिक रंग ढंग से आयोजित होता है।

ओच्छघाट मेला

सायर सक्रांति को ओच्छघाट में 16 - 17 सितम्बर को ज्वाला माता के नाम पर धार्मिक मेला आयोजित होता है। यद्यपि ओच्छघाट राजाओं के समय विशेष महत्व रखता था, फिर भी इस मेले का आधार लोकमान्यता के अनुसार अंग्रेज सेना के एक सिपाही ने ज्वाला मन्दिर का निर्माण करवाया था, क्योंकि बड़ी उम्र में देवी से मन्नत के बाद उसके संतान हुई थी।

हिमाचल के अन्य पारंपरिक मेलों की तरह इस में भी ऋतु उत्पादन देवी को भेंट किए जाते हैं तथा सांस्कृतिक गतिविधियां होती हैं।

बोहच मेला

बोहच या भौंच किसी समय बघाट राजाओं की राजधानी रहा। इसकी पश्चिमी पहाड़ी पर बघाट नरेश दुर्गासिंह का जीर्ण - शीर्ण भवन आज भी वर्तमान है। बोहच के नाम पर इस परगने का नाम 'बोहचाली' पड़ा।

बोहच मेला इसके प्रसिद्ध गांव 'तोप की बेहड़' में आयोजित होता है जो सोलन शहर से सोलन - सपाटू मुख्य - सड़क पर 8 कि. मी. की दूरी पर स्थित है। प्रति वर्ष कार्तिक पूर्णिमा को यहां स्थानीय लोक देवता के पूजन के बाद यह मेला आयोजित होता है। 'ठडेर' यहां का ठोडे के खेल को कहते हैं। हिमाचल अन्य क्षेत्रों धामी, कुनिहार आदि क्षेत्रों की तरह दो दलों में धनुष - युद्ध होता है। घायल होने पर खेल समाप्त हो जाता है।

मेले का प्रमुख आकर्षण झोटों की भिडन्त भी रहा है जो अब लुप्त होने जा रहा है। आज हिमाचल के अन्य मेलों की तरह इसमें परिर्वतन देखने को मिल रहे हैं। फिर भी समृद्ध परम्परा की याद तो यह मेला दिलाता ही है।

कृष्ण – जन्माष्टमी मेला जौणाजी

सोलन जिले की सीमा पर एक सुन्दर पहाड़ी पर भगवान विष्णु का मन्दिर है। यहां से चायल, हाब्बण, चूड़धार तथा राजगढ़ क्षेत्र साफ देखे जा सकते हैं। जन्माष्टमी के दिन यहां आस्था एवं विश्वास से कृष्णावतार की पूजा – अर्चना की जाती हैं। ऐतिहासिक होने के कारण लोगों की इसमें अटूट आस्था है। कहते हैं यह मन्दिर औरंगजेब के समय निर्मित हुआ था। आज यहां सांस्कृतिक कार्यक्रम, कृषि एवं बागवानी प्रदर्शनी तथा कुश्ती का आयोजन होता है।

धर्मपुर का मनसा देवी मेला

सोलन – कालका मुख्य – मार्ग पर धर्मपुर एक रमणीक स्थान है। इससे 2 फर्लांग दूर एक छोटी पहाड़ी पर देवी मनसा का मन्दिर है। मन्दिर की मूर्ति तराशी प्रस्तर मूर्ति है जो मध्य भारत से लाई गई लगती है। बघाट के राजा शक्ति के उपासक थे, अतः राजा दिलीप सिंह ने (1880 ई.) इस स्थान पर मन्दिर का निर्माण करवाय। उस समय राजा के महल 8 कि. मी. दूर कोटी में थे।

मूर्ति की स्थापना चैत्र की शुक्ल – नवमी को की गई थी अतः आज भी यहां यह धार्मिक मेला चैत्र शुक्ल नवमी को आयोजित होता है। यह मेला विशुद्ध धार्मिक है।

बनलगी मेला : धर्मपुर

ऐतिहासिक निवरणों के अनुसार 'बनलगी देवी' के सम्मान में यह स्थानीय मेला धर्मपुर के बनलगी गांव में सदियों से मनाया जाता रहा है। यह धर्मपुर रेलवे स्टेशन के पास ही है यह 14 – 15 ज्येष्ठ को प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

इस मेले की यह विशेषता है कि जिस स्थान पर यह मनाया जाता है वहां 'पीर – थान' भी है। इसलिए दोनों देवताओं की स्मृति में मनाया

जाने वाला यह उत्सव सांप्रदायिक सौहार्द का प्रतीक भी है। इन दोनों देवताओं का मन्दिर पत्थर - मिट्टी से बनाया गया है। ये गावों के मध्य में निर्मित किये गये हैं।

लोग इन्हें फसल के उत्पादन चढ़ाते हैं। पीर के मन्दिर में एक मुसलमान और देवी के मन्दिर में एक राजपूत पूजा करता है। सरकारी भूमि पर मनाया जाने वाला यह मेला 6 घण्टे चलता है। पूजा - अर्चना के पश्चात शाम को यहां कुश्ती का आयोजन होता है। लोग देवताओं से मान - मनौतियां करते हैं आज के वातावरण में प्राचीन परंपराऐं लुप्त होती जा रही हैं।

चण्डी मेला – महलोग

प्राचीन महलोग रियासत की ग्रीष्म कालीन राजधानी चण्डी में प्राचीन देवी का मंदिर था जिसे यहां के परवर्ती शासक गर्भदेव चन्द ने 1612 ई. में वर्तमान रुप में बनवाया था। पहले यह वर्तमान मन्दिर से कुछ दूर हटकर नीचे था। महलोग रियासत की नींव मुहम्मद गौरी के सहारनपुर पर आक्रमण के समय राजा सरल पाल के युद्ध में हार जाने के बाद उसके पोते हरिचंद द्वारा 1203 ई. में डाली गई थी जिसने यमुना नदी के पार कर नैड़ खड्ड तक क्षेत्र को जीतकर पिंजौर के भवाना को अपनी राजधानी बनाया था। वैसे तो चण्डी - महलोग रियासत में जौहड़ जी मेला, हरिपुर मेला, दशहरा मेला आदि ऐतिहासिक मेले अपना ऐतिहासिक महत्व रखते है लेकिन चण्डी देवी राजाओं की इष्ट होने के कारण सबसे महत्वपूर्ण है।

चण्डी - महलोग मेला प्रतिवर्ष ज्येष्ठ प्रविष्टे 15 एवं 16 को श्रद्धा - विश्वास से मनाया जाता है। आजादी से पूर्व यहां का राणा देवी को पशुबलि देता था। पहाड़ी मेलों की तरह देवी को सक्रांतियों तथा छमाही पर पूजा - अर्चना एवं फसलों की भेंट की परम्परा रही।

चण्डी मेले से सम्बन्धित एक जनश्रुति उपलब्ध है प्राचीन काल में चण्डी के लोग अपनी गाय - भैंसों को कुछ दूर जंगल में गोशालाओं में बांधते थे। लो रोज सुबह शाम दो बार गाय भैंसों को घास - पानी देने तथा

दुहने जाते थे। गांव में एक राजपूत घैंथ नाम का किसान रहता था। एक शाम जब वह अपनी गाय-भैंसों को दुहकर गांव वापिस आ रहा था तो उसे एक रास्ते में एक भूत मिला जो डरावना तथा विशालकाय था। भूत ने उसे लड़ने के लिए ललकारा। घैंथ डरने वाला न था उसने दूध के बर्तन नीचे रखे और चुनौती को स्वीकार किया।

घैंथ ने देवी का स्मरण किया और भूत को बालों से पकड़ लिया। उसे पटकनी दी और चारों ओर घसीट कर घुमाने लगा। भूत दर्द से कराहने लगा। लड़ाई के मध्य एक दिव्य-भविष्य वाणी हुई-बेटा घैंथ मत घबराओ! मैं यहां की देवी चण्डी हूँ। मैं तुम्हारे साथ हूँ। यह भूत तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। कुछ देर में मैं तुम्हें दर्शन दूंगी। यह सुनकर घैंथ जोश से भर गया। उसने भूत को एक पत्थर पर पटका भूत की बाहें टूट गई। वह लंगड़ाता वहां से भाग खड़ा हुआ और कहीं लुप्त हो गया।

एक दिन घैंथ जब अपने इस खेत में गुडाई कर रहा था तो उसकी कुदाली एक पत्थर से जा टकराई। उसने देखा पत्थर से खून बह रहा था। जब उसने जब उसने उसे निकाला तो एक सुन्दर पत्थर की खंडित मूर्ति निकली। घैंथ ने उसे एक स्वच्छ स्थान में रखा जहां बाद में देवी का निर्माण हुआ। देवी ने उसे साक्षात दर्शन इसी स्थान पर दिये थे।

देवी की स्मृति में प्रतिवर्ष यहां मेला लगता है। मेले का प्रमुख आकर्षण कुश्ती होती थी जो आज विभिन्न सांस्कृतिक-गतिविधियों के साथ सम्पन्न होती है।

जौहड़जी मेला-महलोग

गुरु-सिक्ख परम्परा का ''जौहड़ जी मेला'' हिमाचल प्रदेश में गुरु नानक देव की हिमालयी यात्राओं की पावन-स्मृति का सुविख्यात मेला है। कसौली तहसील के महलोग क्षेत्र के चिपीघाट नामक स्थान पर यह मेला 26 मार्च से 13 अप्रैल (बैसाखी) तक आयोजित होता है। यह मेला हर तीसरे वर्ष दो सप्ताह तक चलता है।

यहां एक प्राचीन जौहड़ (तालाब) होने के कारण इस स्थान का नाम 'जौहड़ जी' पड़ा है। इसका निर्माण 15 वीं शती में माना जाता है तथा इसका सम्बन्ध गुरु नानक देव से जोड़ा जाता है। गुरु नानक देव जब यहां पधारे तब यहां विकट जंगल थे तथा यहां कोई नहीं रहता था।

कहते है इस स्थान पर एक राक्षस रहता था जिसका नाम 'कौड़ा' था। उसने इस क्षेत्र में आतंक मचाया हुआ था। वह मनुष्यों को पकड़कर एक तेल के कड़ाह में भून कर खा जाता था। जब गुरुनानक देव जी के दो प्रिय शिष्य बालाजी और मर्दाना जी इस इस स्थान पर विचरण कर रहे थे तो कौड़ा राक्षस ने मर्दाना को पकड़कर बन्दी बना लिया। राक्षस ने मर्दाना को कड़ाह की परिक्रमा करने को कहा। मर्दाना ने परिक्रमा करते हुए गुरु नानक का ध्यान किया तो नानकजी वहां प्रकट हुए। यह देखकर राक्षस प्रसन्न हुआ। उसने सोचा दो शिकार हाथ लगे हैं। राक्षस ने गुरु नानक जी को भी परिक्रमा करने को कहा।

गुरु नानक जी ने अनजान बनकर कहा कि मुझे परिक्रमा करनी नहीं आती राक्षस उनके पास आकर परिक्रमा करना बताने लगा तो गुरु नानक जी के हाथ लगने से ही राक्षस तेल के कड़ाह में गिर पड़ा और मर गया। गुरु नानक जी के मुंह से निकला-'तुम्हें मेरे साथ हमेशा याद किया जाएगा।'

इस घटना के पश्चात इस स्थान उनके शिष्यों ने यहां पवित्र गुरु द्वारे की स्थापना की। बाबा कर्मचन्द जो समीप ही पपलोगी के स्थान पर रहते थे, उन्होंने यहां अपना आवास बनाया। जहां राक्षस का वध हुआ था वहां उन्होंने अपना निशान (झंडा) स्थापित किया।

मान्यता के अनुसार बाबा अमर दास ने सिक्ख पंथ की 22 मंजियां विभिन्न स्थानों को प्रदान की थी। इनमें नौवी मंजी देहरा जौहड़ जी है। यहां बाबा गंगदास जी उस समय विराजमान हुए।

वर्तमान में बाबा गंगदास की समाधि जोहड़ जी में है। इसी तरह गुरु खड़ग सिंह, गुरु जवाहर सिंह तथा बाबा करम चन्द जी की देहरा साहिब की शक्ति से यह स्थान पूजनीय है।

आजकल इस स्थान पर एक भव्य गुरु द्वारा है तथा एक विशाल धर्मशाला का निर्माण किया गया है। यहां सिक्ख-परम्परा में पूजा-अर्चना की जाती है तथा अखण्ड लंगर का प्रबन्ध किया गया है। गुरु द्वारे के पास ही बभौरी देवी का मन्दिर, स्वर्ग द्वारी तथा जौहड़ है।

कौड़ा राक्षस को पड़ियार देवता के नाम से भी जाना जाता है तथा इसे बकरे की बलि दी जाती है। मेले की समाप्ति हरिपुर साहिब गुरुद्वारे में होती है जहां सिक्ख-परम्परा के बाबा जवाहर सिंह का पुण्य-स्थल है।

यहां दिवाली के दो दिन बाद भी दो दिवसीय मेला आयोजित होता है। जौहड़ जी पहुंचने के लिए गाड़ी द्वारा सुबाथू से 35 कि. मी. नालागढ़ से 50 कि. मी. तथा शिमला से 80 कि. मी. सीधा सफर करके पहुंचा जा सकता है। यह स्थान चण्डीगढ़ से तथा सोलन से 60 कि. मी. की दूरी पर स्थित है।

पट्टा महलोग से जौहड़ जी पहुंचने के दो मार्ग है। एक मार्ग कासल, बडैहरी तथा बभौरी होकर 9 कि. मी. है तथा दूसरा गोयला से धियान तक है, फिर सीधा चढ़ाई वाल पैदल रास्ता है।

जौहड़ जी 4800 फुट की ऊँचाई पर स्थित एक सुन्दर पहाड़ी स्थल है जहां से सुबाथू, कसौली, शिमला की ऊँची-ऊँची बर्फ से नदी पहाड़ियां दृष्टि गोचर होती है।

मेले में हरियाणा, पंजाब, हिमाचल तथा देश के अनेक क्षेत्रों से लोग आस्था के साथ दर्शनार्थ आते हैं। लोगों का विश्वास है कि जौहड़ के पानी से अनेक बीमारियों तथा मानसिक विकारों से मुक्ति मिलती है।

जौहड़ मेला कुमारहट्टी

जौहड़ मेला कुमारहट्टी-सरांहा मार्ग पर कुमारहट्टी से 8 कि. मी. दूरी पर जौहड़ जी स्थान पर प्रति वर्ष 20 नवम्बर से 30 नवम्बर तक मनाया जाता है। बाबा नरमाण चंद ने इस जौहड़ का निर्माण करवाया था।

जौहड़ में उतरने के लिए 27 पौडियां है। चबूतरे पर पूर्व की ओर बनी श्रवण कुमार एवं नरमाण बाबा की समाधियां हैं।

गुरु द्वारे में सिक्ख – परम्परा से झण्डा आदि चढ़ाया जाता है तथा मेले में लंगर की व्यवस्था की जाती है। ठहरने के लिए 30 कमरों की सराय बनी हुई है।

जवाहर सिंह मेला : हरिपुर साहिब

हरिपुर का गुरु द्वारा जौहड़ जी गुरुद्वारे की तरह गुरु – सिक्ख परंपरा का प्राचीन पावन स्थल है। विश्वास किया जाता है कि गुरु नानक जी ने अपनी हिमालयी यात्राओं के दौरान इस स्थान पर भी आवास किया था। जौहड़ जी ने उनका वहां तत्कालीन राक्षस से युद्ध सर्वविदित है, वहां अपना झण्डा – निशान साहिब गाढ़कर उन्होंने हरिपुर के इस स्थान पर भी ठहराव किया था। अत: यहाँ भी पवित्र गुरु द्वारे का निर्माण किया गया है।

सोलन – बरोटीवाला मार्ग पर बरोटी वाला से हरिपुर करीब छ: कि. मी. दूर है। यह जिला – सोलन के कसौली तहसील अन्तर्गत आता है।

इस गुरु द्वारे के पास बाबा खड़गसिंह तथा बाबा जवाहर सिंह की समाधियां है। गुरु द्वारा परिसर में ठहरने की अच्छी व्यवस्था है। विशेष अवसरों पर यहां संगीत के कार्यक्रम आयोजित होते रहते हैं। दशहरा, दीवाली, लोहड़ी आदि पर्वों पर गुरु द्वारे में विशेष साज – सज्जा होता है तथा सिक्ख पूजा – अर्चना का भव्य आयोजन होता है।

गुरु द्वारे की विशेषता है कि यहां सर्व धर्म – समभाव की भावना देखने को मिलती है। बाबा जवाहर सिंह योगी पुरुष थे कहते हैं कि इनका शरीर इतना लचीला था कि ये अपनी जीभ से पूरे शरीर की सफाई कर लेते थे।

हरिपुर गुरुद्वारे में हमेशा लंगर में प्रसाद तथा खिचड़ी का भोग लगाया जाता है। लोग गुरुओं में अपार श्रद्धा रखते हैं। गुरुओं के सनातन धर्म हेतु बलिदान तथा हिमालयी क्षेत्रों में उनके भ्रमण (उदासी यात्राओं)

की यादों को ताजा करते हैं। बाबा जवाहर सिंह का यह मेला ही विख्यात नहीं है वरन हिमाचल के विभिन्न क्षेत्रों में बाबा के नाम पर विभिन्न पर्वों पर मेले आयोजित होते हैं।

दशहरा मेला – कुठाड़

यूं तो दशहरा एक उत्सव के रुप में समस्त भारत में श्रद्धा–विश्वास से मनाया जाता है, किन्तु हिमाचल के कुछ क्षेत्रों में यह विशाल–मेले के रुप में मनाया जाता है। कुठाड़ रियासत प्राचीन काल से ही भगवान राम के सम्मान में दशहरा–उत्सव मनाने की परम्परा रही है। कुठाड़ रियासत में सियारड़, बनलगी, में बीजू मेला मनाने की परम्परा रही, किन्तु दशहरा मेला राजकीय–स्तर पर मनाया जाने लगा। इस मेले में दशहरे के आयोजन में रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद के पुतलों के दहन के अतिरिक्त निशाने बाजी भी होती रही है।

सोलन के अन्य क्षेत्रों की तरह यहां ''पत्थरों का खेल'' आयोजित होता है। सायर मेले की तरह यहां ''भैंसों की लड़ाई'' जिसे झोटे की भेड़ कहा जाता है – भी आयोजित होती रही है।

वास्तव में रियासत काल से ही यहां की संस्कृति कुनिहार, बाघल, क्योंथल की संस्कृति से प्रभावित रही है, दशहरे के आयोजन में आज अनेक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक – गतिविधियां शामिल हो गई हैं।

ऐतिहासिक 20 वर्गमील फैली कुठाड़ रियासत का महत्वपूर्ण मेला दशहरा मेला है। 13 वीं शती में कश्मीर के किश्तबाड़ से भाग कर आए हुए एक राजपूत योद्धा सूरत चंद ने 5 परगने यहां के निरंकुश शासक मावी से छीन कर यहां शासन किया। ये परगने थे रिहानी, धार, शील, घरुथ और फेटा। वह वैष्णव था अतः उसके किसी वंशज ने दशहरे के उत्सव को मेले के रुप में मनाना शुरु किया।

अर्की की तरह यहां 'झोटों की भेड़' (भैंसों की भिड़ंत) भी दर्शनीय रही है। जीतने वाले झोटे को पुरस्कार राजा ही दिया करता था।

आज विभिन्न खेती बाड़ी की प्रदर्शनियां तथा सांस्कृतिक गतिविधियां होती है। को करयाला भी मेले का विशेष आकर्षण होता है।

दशहरा को सांय रावण, कुंभकर्ण, मेघनाद के पुतले जलाने की परम्परा के साथ रामचन्द्र की पूजा - अर्चना भी मेले का विशेष आकर्षण है।

पीरथान मेला – नालागढ़

मुसलमान सम्प्रदाय में सिद्ध एवं धर्मगुरुओं को 'पीर' की संज्ञा दी जाती है। कुरान शरीफ के अनुसार ऐसे उपासक ईश्वरीय फतवे देने के अधिकारी होते हैं। नालागढ़ से लगभग 6 कि. मी. की दूरी पर कालका मुख्य सड़क पर पीर - थान का पवित्र स्थल है। कहते हैं यहां पर 'पीर लाला - वाले' की मजार हैं। यहां पीर की प्रतिमा के साथ अन्य पीरों की प्रतिभा, छड़े, कड़े, तथा लम्बी ध्वजाएं हैं।

प्रत्येक रविवार को यहां लोग मन्नत मांगने आते हैं तथा मनौतियां करते हैं। भक्तों की भीड़ रहती है। पीर पूछ देता है और श्रद्धालुओं की मनोकामनाओं को पूर्ण करता है। पीर के नाम पर जन्त्र बच्चों के गले में बांधने के लिए दिया जाता है। आधि - व्याधियों में तथा बुरी नजर से बचने के लिए पीर का आशीर्वाद फलदायक होता है ऐसा लोगों का विश्वास है।

एकान्त होने के कारण नालागढ़ में यह स्थान पर्यटन के लिए भी अनुकूल है। नालागढ़ से पूर्व दक्षिण की और सामने घने वृक्षों से घिरा, पहाड़ी की ओट में स्थित पीरगाह रमणीक स्थल भी है।

पीरथान का मेला लोहड़ी के दिन लगता है जो तीन दिन तक चलता है। पहले दिन औरतों को मेला होता है। आजादी से पूर्व केवल यहां औरतें ही मेला देखने आती थी, परन्तु आज सभी आते हैं। दूसरे दिन पुरुषों का मेला होता है। यहां सभी धर्मो सम्प्रदायों के लोग बिना भेद - अस्पृश्यता के आते हैं तथा पीर के आगे नतमस्तक होते हैं।

तीसरे दिन मेले में ऊँटों की दौड़ की प्रतियोगिता होती है तथा विशाल दंगल का आयोजन किया जाता है। पीर स्थान का लोहड़ी का मेला हण्डूर रियासत के राजा रामशरण द्वारा 300 वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया गया था। यह नालागढ़ - बद्दी राष्ट्रीय मार्ग पर स्थित पीरस्थान में वर्षों से मनाया जा रहा है। आज भी इस लोहड़ी मेले की परम्परा जीवित है। इस मेले में स्थानीय लोगों के अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा से भी लोग आते हैं।

आज भी यह मेला पांच दिन दिन तक चलता है। स्थानीय पंचायत इसमें विभिन्न प्रकार की सांस्कृतिक गतिविधियां तथा दंगल करवाती है। सोलन जिला का यह एक महत्वपूर्ण मेला है।

शीतला माता - मेला नालागढ़

शीतला माता शक्ति माता दुर्गा का शान्त रुप माना जाता है। नवदुर्गा के नामों में यह एक रुप है। भारत वर्ष में समस्त प्रदेशों में शीतला माता के मंदिर पाये जाते है नालागढ़ में शीतला माता का मंदिर यहां के प्रारंभिक राजाओं की स्मृति है।

ज्येष्ठ मास के सभी मंगल वारों को यहां मेले लगते हैं। शीतल एवं शान्त रुप होने के कारण इसे व्याधियों की उष्णता को समाप्त करने वाली देवी माता माना गया है। विश्वास किया जाता है कि माता 'बड़ी माता' क्षय रोग चेचक को भी दूर करती है। देवी का विशेष मेला ज्येष्ठ को आयोजित होता है। तीसरे मंगलवार का जगह - जगह भंडारों और ठण्डे शर्बत की छवीलों के साथ शीतला को लोग परम्परा से मीठे पकवान गुलगुले, कचौरी, भीगे चने, बताशे प्रसाद में चढ़ाते हैं। किसान लोग अपनी रवी की फसल गेहूँ, चने आदि देवी को प्रथम चढ़ाते हैं। कुछ लोग जीवित बकरे, मुर्गे आदि मंदिर में चढ़ाते हैं तथा अपनी तथा संतान की सुख - समृद्धि की कामना करते हैं। स्त्रियां अपने नवजात बच्चों को शीतला माता के आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु यहां मेले में श्रद्धा के साथ मत्था टेकने आती हैं।

हंडूर रियासत के राजा रामशरण सिंह के समय से 'मंगला दा

मेला' शीतला माता की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ। यह मेला आज भी श्रद्धा और विश्वास से मनाया जाता है। इसे रियासत के मेले का दर्जा प्राप्त था लेकिन नये जिलों के पुनर्गठन के पश्चात यह नालागढ़ तक ही सीमित रह गया है। आज मंदिर में सेवादार महंत गंगा दास जी पूजा आदि की व्यवस्था करते हैं। आज यह मेला पांच मंगलवार तक चलने लगा है।

सिद्ध मेला : कठपोल – मांगल

कठपोल शिखर को स्थानीय भाषा में 'कठ पौली' कहा जाता है जिसका अर्थ है कठोर संकरी पगडंडी अथवा सख्त चलने फिरने की जगह वास्तव में चारों दिशाओं से संकरी घाटियों, संकरे मार्गों से त्रिशूल की तरह ऊँचाई लिए कठपोल शिखर साहसिक पर्यटन के लिए उपयुक्त शिखर है। ऐसे विकट पहाड़ों की चोटियाँ और दुर्गम स्थान सिद्धों और ऋषि–मुनियों की साधना–स्थलियों से जोड़े जाते रहे हैं। विशेषकर पहाड़ी गुफाओं को सिद्धों से जोड़ा जाता है। अर्की की लुटरु महा देव की अद्‌भुत गुफा को परशुराम की पौली (नारसिंह के पद चिन्हों की स्मृति–स्थली) के रुप में जाना जाता है, जबकि अर्की, बिलासपुर, कांगड़ा, सिरमौर आदि क्षेत्रों में पाई जाने वाली गुफाओं को सिद्ध–बालक नाथ से जोड़ा जाता है। 'पौली' का सामान्य अर्थ देवता का लघु–पवित्र आवास स्थान या पदचिन्हों के स्थान है। ऐसे दुर्गम चट्‌टानी शिखर को जनमानस ने यदि कठिन सुनसान देवस्थान का नाम दिया तो अस्वाभाविक नहीं है।

बुजूर्गों के अनुसार कठपोल शिखर बाड़ीधार से दो हाथ ऊँचा है। लगभग 1937 मीटर ऊँचे कठपोल शिखर पर अनेक छोटी बड़ी गुफाएं है तथा चोटियों पर सर्दी में हिमपात होता है। जन–मान्यताओं के अनुसार बाबा–बालक नाथ के जन्म की कथा गुरु गोरख नाथ के नौ नाथों और चौरासी सिद्धों से जोड़ी जाती है। कथा का सम्बन्ध अमर नाथ पर्वत–गुफा में तोते द्वारा कथा सुनकर मानव रुप में पेट से बाहर निकलते ही उसी समय बालक नाथ का जन्म भी उसी मुहूर्त में हुआ ऐसा माना जाता है।

बाबा बालक नाथ काठिया बाड़ में पैदा हुए थे। इनके पिता का नाम विष्णु नारायण और माता का नाम लक्ष्मी था। वह बाल्यवास्था में ही घर छोड़कर गिरनार पर्वत के दामन में महन्त दत्तात्रेय के आश्रम में गये, वहां ज्ञान प्राप्त कर वे सिद्ध कहलाये।

बाबा बालक नाथ ने धवल गिरि पर्वत पर अपना आवास बनाया था। उस समय वहां एक गुफा में दियोट नामक राक्षस रहता था। वह राक्षस बाबा के भय से वहां से भाग गया। उस समय के पश्चात उस स्थान का नाम 'दियोट सिद्ध' प्रसिद्ध हुआ। बाबा बालक नाथ ने हिमालय में अनेक गुफाओं मे वास किया था अत: लोग इन पवित्र गुफाओं को श्रद्धा विश्वास से देखते है।

कठपोल शिखर प्राचीन मांगल रियासत की सांस्कृतिक गाथा समेटे है। कठपोल की संकरी घाटियों के तल से निकले जल स्रोतों - खड्डों से दो - तिहाई मांगल क्षेत्र की जल - आपूर्ति होती है। कहते हैं इसकी चोटी पर किसी राजा हरिचन्द ने महल बनाया था, जिसके अवशेष शिखर पर चौकोर पत्थर हैं। उस राजा के छोड़े कठपोल से बाड़ीधार तक सीधे - सपाट रास्ते से जाते थे। संभवत: किसी कहलूर के राजा ने यहां बाबा बालक नाथ के पवित्र - स्थल की स्थापना की होगी क्योंकि यह क्षेत्र ऐतिहासिक दस्तावेजों के अनुसार कहलूर के अधीन रहा।

जन - विश्वास के अनुसार इस शिखर पर बाबा बालक नाथ ने तपस्या की थी अत: इसके शिखर को 'कठपोल - सिद्ध' कहा जाता है। यहां लगभग दो दशक से 26 जून को सिद्ध मेला धार्मिक आस्था और विश्वास से मनाया जाता है। यह मेला मांगल क्षेत्र के 'बाड़ू - बाड़ा - मेला की तरह धार्मिक आस्था से मनाया जाता है।

कठपोल शिखर पर पहुंचना एक साहसिक - पर्यटन यात्रा के समान है। इस पर पहुंचने के लिए मलोखर, सहनाली अथवा कन्धर गांवों से सपाट ऊँची पहाड़ी पगडंडियों से पहुंचा जा सकता है वास्तव में यह पहाड़ अपने अन्दर बहुत से खनिज पदार्थ समाये हुए है, इसीलिए इसके साथ वाली घाटी पर विश्व प्रसिद्ध जयप्रकाश - सीमेंट उद्योग की स्थापना

की गई है। शिखर के उत्तर - पूर्वी भाग में बान, चीड़, नल का घना जंगल है। समुद्रतल से 1937 मी. ऊंचा यह शिखर 2700 बीघे में फैला है। जंगल में कई जानवरों की प्रजातियां पाई जाती हैं। घोरल, तर्व, भालू, बाघ, हिरण, खरगोश आदि पूरे क्षेत्र में घूमते फिरते है।

वस्तुतः कठपोल मांगल क्षेत्र के किसानों के लिए लघु हिमालय के रुप में देखा जा सकता है जहां से जल धाराएं ही नहीं घास - पत्ती, लकड़ी आदि भी - उपलब्ध होती है।

नीकू – झील मेला : बणी मटेरनी

महात्मा नीकू अर्की क्षेत्र में एक - पुरुष के रूप में स्मरण किए जाते हैं इनका मन्दिर बणी - मटेरनी के क्यारी गांव के पास तथा दाड़लाघाट में पवित्र चबूतरा वर्तमान है। नीकू बाबा का सम्बन्ध जल स्रोतों से जोड़ा जाता है। 'नीकू - झील' इनका आवास माना जाता है। जिसके किनारे इनके मन्दिर का निर्माण किया गया है। बाबा नीकू देव को पशुओं का रक्षक माना गया है। उनका जन्म 19वीं शताब्दी के मध्य वणीमटेरनी के क्यारी गांव में एक दलित परिवार में हुआ था। बचपन से ही वे धार्मिक स्वभाव के थे। साधु - संतों के बीच रहना उनका स्वभाव था। वैरागी होने के कारण इन्होंने विवाह नहीं किया। कहते हैं युवावस्था में ही इन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी। बाबा नीकू सारे गांव की गऊओं को जंगल में चराने ले जाते थे और तन - मन से गऊओं की सेवा करते थे। गऊओं की बीमारियों को वे सेवा - सुश्रुषा और दवाइयों से ठीक कर दिया करते थे। पशुओं की टूटी हड्डियों को जोड़ने में वे बहुत माहिर थे। सेवाभाव के कारण लोग उन्हें बहुत आदर देते थे। वे लोगों को सात्विकता और अच्छे कार्यों की शिक्षा देते थे। मजबूर और बीमार लोगों और पशुओं की सेवा करना अपना धर्म समझते थे।

बाबा नीकूदेव के चमत्कारों के अनेक किस्से प्रचलित हैं - एक बार वे गांव वासियों के साथ शक्कर लाने नालागढ़ गए। उन दिनों गुड़, तेल, शक्कर, अनाज आदि हण्डूर से ही लाना पड़ता था। खेतों में काम

करवाने के लिए 'बुआरा प्रथा' (इकट्ठे होकर एक किसान का काम करना) का चलन था। कम्मणों (काम करने वालों) को घी-शक्कर तथा आइकलू-चीलड़ू (ग्रामीण पकवान) खिलाए जाते थे। इसीलिए बहुत से लोग शक्कर लाने नालागढ़ गए थे। बाबा नीकू भी अपने मालिक जमींदार के लिए शक्कर लाने साथ गए थे। जब वे हण्डूर से शक्कर की थैलियां लेकर वापिस गंभर नदी के पास पहुंचे तो वहां विश्राम करने के लिए नदी किनारे एक पेड़ के नीचे बैठ गए। वहां बैठकर उन्होंने खाना खाया। साथियों ने बची हुई रोटियां नदी में मछलियों को फेंकनी शुरू की, जैसे ही वे रोटी का टुकड़ा नदी में फेंकते झुण्ड बनाकर सैकड़ों मछलियां उन्हें आकर चट कर जातीं। नीकू बाबा भी यह सब देख रहे थे। उनके पास कोई रोटी नहीं थी, क्योंकि वे एक वक्त ही शाम को खाना खाते थे। किसी ने बीच से नीकू बाबा से मजाक किया- 'बाबा, यदि आपके पास रोटी नहीं है तो अपनी थैली से शक्कर ही मछलियों को खिला दो।'

नीकू बाबा ने एकदम अपनी शक्कर की पूड़ी (थैली) की गांठ को खोला और धीरे-धीरे सारी शक्कर मछलियों को खिला दीं यह देखकर सभी साथी हैरान हो गए। एक ने कहा- 'बाबा, अब घर जाकर जमींदार को क्या दोगे? 'बाबा ने हंसते हुए कहा, 'जो जमींदार के भाग्य में होगा, उन्हें मिल जाएगा।'

यह कहकर उन्होंने थैली को नदी के किनारे की रेत से भर दिया। यह देख कर सभी हंसने लगे। सबने अपनी- अपनी थैलियां उठाईं और नीकू बाबा ने अपनी रेत वाली थैली। गांव जाकर जब नीकू की थैली को खोला गया तो सभी स्तब्ध रह गए। थैली शक्कर से भरी थी। इस चमत्कार की चर्चा दूर-दूर तक होने लगी। बाबा नीकू देव का एक अन्य चमत्कार भी क्षेत्र में सुनाया जाता है- नीकू बाबा जब पशुओं को जंगल में चराने ले जाते थे तो पास के गावों की फसलों को गऊएं चट कर जाती थी। शाम को लोग जब जमींदारों से शिकायत करते तो वे सुबह मौका देखने को कहते। किन्तु आश्चर्य, सुबह किसानों की फसलें ज्यों की त्यों हरियाली दिखाई देती। इस चमत्कार से लोगों ने समझ लिया कि

लोक – गीत : सोलन क्षेत्र

जन्म संस्कार गीत :

सोलन जनपद में सन्तानोत्पति पर शास्त्रीय विधि से धार्मिक अनुष्ठान आयोजित किये जाते हैं। परम्परा से पुत्र जन्म पर धूम – धाम से परिवार में उत्सव आयोजित किये जाते हैं, जिसकी पुष्टि यहां के लोग – गीतों से होती है। सन्तानोत्पति पर दस दिन तक 'सूतक' होता है। इस दौरान कोई धार्मिक गति विधि नहीं होती। जन्म संस्कारों के अन्तर्गत बेटा – बेटी दोनों के निम्नलिखित संस्कार सम्पन्न होते हैं। हवन, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण बाप द्वारा शिशु का मुख देखना, भूमि उपवाशन, शिशु द्वारा भूमि – स्पर्श कमरे से बाहर लाना।

षष्टी पूजन :

जन्म से छठे दिन गोबर से शिशु की प्रतीक मूर्ति बनाकर पूजा की जाती है जिसे बिहाई पूजन कहते हैं। इसे पूजा – स्थल में आजीवन रखा जाता रहा है। प्रत्येक जन्म दिन पर इसे पूजा जाता था तथा मृत्यु के पश्चात किसी नदी – नाले में प्रवाहित कर दिया जाता था। इस दिन बच्चे को चांदी के कंगनू और वस्त्र सगे – संबंधियों द्वारा दिये जाते हैं। कन्या के जन्म पर भी यही विधि अपनाई जाती है। इस दिन मंगलगान गाये जाते है।

अन्न प्राशन :

छः मास बाद शिशु को अन्न चखवाया जाता है। कभी – कभी हवन के दिन भी दूध के साथ चावल चखा कर यह संस्कार करवाया जाता हैं।

मुण्डन संस्कार और कर्ण भेद :

दो साल बाद या 5 साल बाद ये संस्कार करवाये जाते हैं।

विद्यारम्भ :

नवरात्रों के मध्य प्रथम बार कुछ अक्षर लिखवा कर विद्यारम्भ किया जाता है।

उपनयन संस्कार :

15 – 16 वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया जाता है। इस अवसर पर पुरोहित द्वारा युवक को गायत्री मंत्र प्रदान किया जाता है। सन्तानोत्पत्ति पर कृष्ण – जन्म के पारम्परिक गीत का गायन 'भयाई' के रुप में सम्पन्न होता है।

गढ़ मथुरापुरी शंख बाजेया, गोकुला बजिया बधाइयां
गढ़ मथुरापुरी शंख बाजेया कृष्ण लियो अवतार।
मेरी विमाता तुथड़िए तुष्या सूरजनहार,
मेरे सुयने होरे ओबरूआ रूपे लगे साख दरवाजे,
मेरे सुयणे होरे पंलागिरिये रूपे लगे चारो पावें,
जीत पर बंठड़े यो दो जणे, तिया मेरे राम ने दिया।
है मेरी ससु जी सपुतड़िये, हम संग रूठिया ना जाओ,
घेरे माहरे गुड़ घियू, गुड़ शूं घोली घोली खाओ।
हे मेरी दराण, जठाणियों हम संग रूठिया ना जाओ,
घरे माहरे गाया, छंवारे मेवा लई घरे जाओ,
हे मेरी नणदे, लड़कीये हम संग रूठिया ना जाओ,
घरे माहरे वागे और व्यौर, पैहनी ओढ़ी घरे जाओजी,
हे मेरी सहियो सहेलड़ियो हम संग रूठिया न जाओ, जी।
घरे माहरे गूड़ तिल चावल के चाव लई घरे जाओ जी।।

कृष्ण जन्म पर मथुरा में मधुर शहनाई और शंख बज रहे हैं। बिहाई पूजन हो रहा है। युवा नाजो सभी सम्बन्धियों सहेलियों को भेंट प्रदान कर रही है।

पुत्र जन्म पर बधाई – गीत :

प्रकृति और पुरुष के संसर्ग से सृष्टि का विधान ईश्वर कृत है। जीव मात्र में सन्तान के लिए अथाह प्रेम पाया जाता है। सन्तान में नारी और पुरुष अपनी ही 'अनुकृति' देखते है। किसी दार्शनिक ने कहा है कि स्त्री के गर्भ से पुरुष स्वयं ही उत्पन्न होता है। इस प्रकार अपनी मृत्यु के पश्चात भी यह वंश परम्परा के अन्तर्गत अमर बना रहता है। सन्तान के लिए नारी तो सर्वस्व अर्पित करती है, पुरुष भी जीवन भर नैतिक – अनैतिक का विचार किए बगैर सन्तान के स्नेह से बंधा, घर जोड़ने की माया से बंधा रहता है।

भारतीय समाज में विभिन्न संस्कारों की तरह पुत्र जन्म संस्कार पर उल्लास और आनन्द का वातावरण व्याप्त हो जाता है। हिमाचल के पर्वतीय अंचल में कृष्ण एवं राम के बाल रूपक द्वारा पुत्र जन्म पर बधाइयां दी जाती हैं।

''तन मथुरा जी में जरम्या गोकल बजिया बधाइयां
जी मेरा गिरिधर सोले पालणे .....
मेरा गिरिधर सोले पालणे, मेरा बंसीधर सोले पालणे....''

पर्वतीय संस्कृति की संयुक्त परिवारों की परिपटी के अनुसार माँ – बाप, चाचा – चाची, ननद आदि परिजन नवजात शिशु को भेंट देते है।

कढ़ाया नंद जो पालणा, अपणे कन्हैये जुग जीवे, जी
''कढ़ाया देवकिए पालणा,
अपणे कन्हैये जुग जीवे जी ....
कढ़ाया दसोदा पालणा,
अपणे कन्हैय जुग जीवे जी ....
कढ़ाया सुभद्रा पालणा,
अपणे कन्हैये जुग जीवे जी............''

प्रथम प्रसव पर तन्वी श्यामा, चकित हिरणी के समान आनत

तथा अलसगमना नाजो की शारीरिक मनो दशा सोलन जनपद के बाघल क्षेत्र में रोमांचक एवं नाटकीय ढंग से यूं वर्णित मिलती है। –

‘क्या तेरा मैलड़ा पेख, नाजो गोरी क्या तेरा मैलड़ा भेख
हां जी हां, कहां तेरे दरद होई?
लाज शरम की बात लाला जो,
मरद पासे कैसे कहूं ? हां जी हां ......
मेरा तेरा अन्तर एक नाजो गोरी
तुम मेरे पासे बोल धरो, हां जी हां ......

इस मीठे दर्द की अभिव्यक्ति लाज शर्म से मलिनमुखी नाजो इस प्रकार करती है –

‘सिर मेरे कोमर – कोर लाला जी
कमर मोरे दरद होई, हां जी हां कमर मोरे दरद होई.....
ढूंडो नगर बाजार लाला जी
चतुर दाई कहां बसे हां जी हां ....
चतुर दाई ही तो ‘नाजो’ की पीड़ा को बंटा सकती है।
आप चले घोड़े स्वार लाला जी,
नफर संग साथ लिए, हां जी हां ....
खोलो दर से किवाड़ दाई माई,
लाला तोरे द्वारे खड़ा, हां जी हां ....
किस राजे का पुत्र तू लाला जी,
क्या ही तेरा नाम धरो, हां जी हां ....
राजा दसरथ का मैं पुत्र दाई माई,
रामचन्द्र मेरा नाम धरो, हां जी हां .... ’

चतुर दाई ने आगे पूछा

‘जे तोरे जन्मेगा पुत्र लाला जी,

तू दाईया नो क्या ई देवे हां जी हां
शठ चिंजण का पेड़ू दाई माई,
अशरफी मै रोक धरूं, हां जी हां'

पुत्र जन्म पर 'लाला' साठ चिंजण के पेड़ू तथा अशर्फी देने को प्रस्तुत है जबकि पुत्री के जन्म पर -

'जे तेरे जन्मेगी धीया लाला जी,
तू दाईया नो क्या ई देवे, हां ......
पिऊंली पिऊंली चणेया दी दाल दाई माई,
रुपैया मै रोक धरूं, हां जी हां ....
सीता जी जन्मेया पुत्र लाला जी,
जुध्या बधाईयां होई, हां जी हां
बिना खण्डे तलवार लाला जी
जच्चा राणी खूब लड़े, हां जी हां

इस शुभ बेला का वर्णन एक अन्य लोकगीत में कृष्ण जन्म पर युवतियों के आल्हाद के रूप में इस प्रकार वर्णित है -

'मथुरा इक बालक जणम्या गोकल बजियां बधाईयां
नी गोरी बणी दा जाया!
मत देंदियो सैयो गाली, मत देंदियो सैयो गाली,
नी गोरी बणी दा जाया

ऐसे शुभ अवसर पर कोई सखी स्वभावजन्य कटु शब्द न निकाले। 'गोरी' इस अवसर पर क्या दे?

'काये दी मैं गुड़सट देऊं काये दी कटोरी,
पैंणों काये दी कटोरी
नी गोरी बणी दा जाया।
मत देंदियो सैयो गाली
फूल पतासे गुड़ सट देऊं,

सूइने दी कटोरी, नी गोरी बणी ......'

आगे गोरी पूछती है –

'काये दा में चगल सिआऊं,
काये जड़त जड़ाऊं नी गोरी बणी ....
रेशम दा मैं चगल सिआऊं,
सूच्चा जड़त जड़ाऊं नी गोरी बणी,
काय दा मैं पलण कढ़ाऊं,
काये डोरा लाऊं नी गोरी
अगर चन्दन का मैं पलण कढ़ाऊं,
रेशम डोरा लाऊं नी गोरी ....'

राम जन्म के रूपक की अभिव्यक्ति भी इस अवसर पर की जाती है। एक 'बिहाई' बातल, कुनिहार तथा धुन्धन क्षेत्र में इस प्रकार प्रचलित है।

'कौन घड़ी रामा जन्म लीना,
कौन घड़ी राजा राम जी भये ....
चल मेरी सजनी जुध्या नगरी,
राजा दशरथ घर राम जी भये
हरे हरे गोवे रामा अंगन लपाऊं
गज मोतियन चौका पराऊं रामा
चल मेरी सजनी अब धन घर को
दसरथ घरे राम जी भये
राम जी दी माता अन्दर सों निगसी
हीरे रतन लुटाए रहे रामा ....'

एक और बिहाई में समस्त परिवारजनों को शिशु का पालना झुलाने को कहा गया है।

'मधुवन मधुवन कर रहे महाराजेआ जी
मधुवन हुये बेईमान, सदा बलिहारिए जी
देवकी पाणिये नो जांदी महाराजेआ जी,

दसोदा खड़ी एक पाणिहार सदा बलिहारी
दसोदा पूछदी देविकिए पैणे मेरिये जी
दुबली किने गुणे होई
जरमेथे सेयो कंसे पछाड़े पैणे मेरिए
जी, दुबली इने गुणे होई जी

यशोदा ने देबकी को ढाढस बंधाया और कहा कि तेरा बच्चा मेरे पास रहेगा और मेरा बच्चा तेरे पास। मैं भी तो मां ही हूं।

कृष्ण जन्म हुआ और –

'पयरू थे सेओ सूती पड़े महाराजेआ जी,
उधड़े धर्म दवार, सदा बलिहारिये
पाट पटबल भेटेया कौन जी,
दिया बसुदेव जी दी गोद, सदा बलिहारिये.....'

वासुदेव जी ने कृष्ण को उठाया तो यमुना जी ने भी रास्ता दे दिया और फिर 'गुडसट' फूल, पतासे गोकुल में बांटे गए। नाजो गोरी की शारीरिक एवं मानसिक टूटन के अबसर पर आल्हाद में बदलने हेतु उसके परिवार की भद्र महिलाएं छेड़छाड़ भी करती है। बचपन में वह जितना स्वच्छंद फुदकती फिरती थी आज मृदु बन्धन में कैद होकर रह गई है।

'इक तो है नाजो पतली दूजे नाजुक बहियां
तीये उठी कमर पीर खबर मेरी कौण लेवे
सासू सूतिये चौबारे ननद घरबारे जी खबर मेरी कौन लेवे
गोरी दा कंत सूत्या माली बागे खबर मेरी कौण लेवे .....'

नाजो अन्धेरी कोठरी (कोलर) में पड़ी हैं। उसे लगता है उसकी उपेक्षा हो रही है –

'सुन सुन सासू सुहागन तू बड़भागन तू
अपने बेटे लेयो जगाये, खबर मोरी कौन लेवे
खबर लैवे गोरी दी सासु लैवे गोरी
दा सौरा, हम लड़के हैं नादान तेरी मुझे क्या पड़ी है?

सुन सुन बहू जी सवागण तू बड़भागन,
मेरे बेटे ने दिया जबाव क्या?
सुन सुन सासू जी सवागण तू बड़भागन
जे मेरे जरमेगा पुत्र तू क्या कीजिए
जे तेरे जरमेगा पुत्र बहू जी, दाम मैं खरचूंगी।'

इस प्रकार सास–बहू की स्वाभाविक मनोदशा का चित्रण इस गीत में मुखर होता है। पुत्र जन्म पर परिवार के मुख्य सदस्यों में से ननद का विशेष स्थान है। ननद 'भेंट' के लिए अपनी जिद पर अड़ी रहती है। प्रस्तुत 'बिहाई' में ननद भाभी में अधिकारपूर्ण वार्तालाप मिलता है–

'कुरदे नगारे चुलदे जमाने मेरी ननद पराऊंणी आई।
आओ मेरी ननदे बैठ दलीचे तू क्या बधाइयां ल्याई
रेशम चगू रेशम टोपू सलवांगण दी जोड़ी।'

भाभी ने प्रेम से नवजात शिशु को भेंट स्वीकार की और बधाई के रूप में हार हमेला देने लगी लेकिन–

'हार लै लो हमेला लै लो पतीजुवे बधाइयां
हार मेरे घरे बथेरे मां डोरिया लै के जाणा पाबो
बागे लै लो बेऊर लै लो पतीजुवे बधाइयां
बागे मेरे घरे बथेरे, मुझे डोरिया लै जाणा पावो
टोकणे लै लो टोकणियां लै लो पतीजुवे बधाइयां
टोकणे मेरे घरे बथेरे मां डोरिया लै जाणा पाबो
गौवां लै लो मैया लै लो पतीजुवे बधाइयां।'

लेकिन जिद्दी ननद ने डोरिया के अलावा सभी भेंट अस्वीकार कर दी। आखिर मोती मूंगों से जड़ित दुपटे को प्राप्त करने का यही तो एकमात्र अवसर था।

'छठे महीने पूणी जे मुकी बरशे कुकड़ू खुल्या
बुण्या बुणाया डोरिया आया
मेरिये ननदे चगड़ा पाया

उठो कहारो पीड़ो मेरा डोला मां शावरे घरे जाणा।

पूछण लगिया दराण जठाणियां

तूं क्या बधाईयां ल्याई'

अभिमानी ननद ने देवरानियों को एकटूक जवाब दिया –

वीर जे मेरा चम्बे रा चाकर पाबो ने बेटी जाई ।'

इस प्रकार कोरा झूठ बोलकर ननद ने पीछा छुड़ाया। लेकिन जब भाई घर आया तो डोरिया प्राप्त कर ही लिया।

'दूजे जे वरश वीर घरे आया पैण लणी शदाई।

सूच्या – मोतिये थाल जे परया ऊपर डोरिया पाया।

पैहनी जे ओड़ी द्वार पर खड़ी मुड़के देंदी शीश

जुग – जुग जोओ पाई भतीजे

पाबो दा सर्व सुहाग ।'

ऐसे शुभ अवसर पर सभी परिवार की भद्र महिलाएं भेंट प्राप्त करना चाहती हैं। सभी का मुंह मीठा कर वाने के लिए नाजो निवेदन करती है –

'मेरिये बीए माता रुठड़िये रुठेया सूरजण हार

मेरेया सूइने देया ओबरूआ,

रुपे लागे साख दरवाजेया

पलंगी रिये रुपे लगे चारो पावे जित पर बैठे दो जणे

मेरिये ससु जी सहपोतड़िये

मां संग रुठेया न जाओ ।'

अगर बीहमाता रुठ गई तो संसार रूठ गया। मेरा सोने सें तो वाली सास! आज तुम न रुठो।

मढ़े दरवाजे वाला ओबरा (अन्दर का कमरा) इतना सुन्दर है कि इसके पलंग भी मोती – रूपे से जड़े हैं। ए मेरी पोतो वाली सास! आज तुम न रुठो।

'मेरी दराणी जठाणियां हमसंग रुठया न जाओ
घरे हमारे गुड़ क्यू मैंदाए किण्ड धोली धोली खाओ
मेरिए सैयो सहेलड़ियों मां संग रुठया न जाओ,
घरे हमारे तिल - चाबल - चने, चाब लई जाओ'

पर्वतीय संस्कृति में सहस्रो वर्षों से अंचल विशेष में सुलभ खाद्य पदार्थों की भेंट इन लोकगीतों में चित्रित मिलती है। बिहाई का साधारण अभिप्राय बीहमाता अर्थात नवजात शिशु के जीवन को लेखा - जोखा निर्माती से ही है। बीहमाता की पूजा - अर्चना अवसरों पर गीतों के माध्यम से की जाती है। बच्चा जब तक मूक होता है उससे बीहमाता ही बातें करती है - ऐसा विश्वास है। बिहाईयां जन्म के अतिरिक्त वर्षगांठ तथा मुण्डन संस्कार पर भी गाई जाती हैं ।

प्राचीन संस्कृति की स्मृति ये बिहाईयां एक स्वस्थ सभ्य समाज की पृष्ठ भूमि उजागर करती हैं। समय के साथ आज इन गीतों का परिवर्तित रूप भी मिलता है -

'जजा ने ऐसा जुल्म किया, अंग्रेजी ठप्पा शुरु किया ।
दाइयों का आना बन्द किया
नर्सों का आना शुरू किया,
सासू का आना बन्द किया,
माता का आना शुरू किया ...... ।'

यांत्रिक व्यस्तता तथा नगरीय प्रभाव से सुन्दर संस्कृति के अवशेष लुप्त होते जा रहे हैं, किन्तु ग्राम क्षेत्रों में इन पारम्परिक गीतों की झलक मिल ही जाती है।

विवाह – संस्कार गीत

सोलन क्षेत्र में परम्परा से मां – बाप द्वारा वर – बधू की कुण्डलियां मिलाकर विवाह सम्पन्न किया जाता रहा है। आज वैश्विक सभ्यताओं के सम्पर्क से अन्य संस्कारों की तरह विवाह परम्पराएं भी बदल रही है। स्वगोत्र में विवाह वर्जित रहा है।

ज्योतिष के आधार पर ग्रह – दोष देखकर विवाह के सारे विधि – विधान सम्पन्न किए जाते है। चौदह से सत्रह वर्ष तक कन्या का विवाह शुभ माना जाता था लेकिन आज समय बदल चुका है। विवाह की रस्म – प्रक्रिया इस प्रकार सम्पन्न होती है।

1) सगाई
2) सर्वारंभ
3) तेल बटणा
4) शान्ति पूजन
5) सेहरा – वर यात्रा
6) वर यात्रा
7) स्वागत – मिलनी
8) लग्न
9) सप्त पदी
10) शय्या – दान
11) बदायगी
12) टीका – भेंट
13) वधू प्रवेश
14) जुआ
15) घेरनू – फेरनू

यही परम्पराएं थोड़े अन्तर से हिमाचल के कुछ अन्य क्षेत्रों में भी प्रचलित है। निम्न जातियों में रीत की परम्परा भी रही है जिसमें नये पति को नई पत्नी के पहले पति को कुछ धन राशि देनी पड़ती थी। विधवा विवाह की परम्परा ब्राह्मणों तथा सम्भ्रांत राजपूतों को छोड़कर अन्य वर्गों में प्रचलित रही।

विवाह की प्रत्येक रस्म से सम्बन्धित लोकगीत आज भी प्रचलित है जो प्राय: घनी – बस्ती अथवा बड़े गांवों में शादियों में कहीं – कहीं सुनने को मिल जाते हैं । बातल भूमती, धुन्दन गांवों में जो प्राय: ब्राह्मणों के गांव है वहां आज भी कहीं – कहीं विवाह के अवसरों पर मंगल गान सुनने को मिल जाते हैं ।

विवाह – गीत :

''इत बहलड़ा मंगल हरे, हरे राम ते आयेया,
तेल हंसी मेरी रूकमणी हरी जीका दर्शन पायेया,
दर्शन तो पायेया कृष्ण घेरा मूंदी खड़ी हर हंसिया,
सोयला सिंगार किया कामन मने हमे वदहंसिया,
तनमन तो हमारा उन्हें ही लिया आप जल गहरिया,
पैणे हे भवानी पदा ये आनन्द इत मंगल पहलेया।।

इत दुआड़े मंगल हरी तैनू बटणा लगायेया,
कस्तूरीये पीरमल पेण मसरवर रलायेया।
आणू को चम्बा और भरूआ फूल लयाओ कूजेया,
भैणै हे भवानी पैया आनन्द मंगल दूजेया।।

इत तीयड़े मंगल लयाओ दहीं सिर नाहया,
जल नीर सौ कोसे मेरी हाथे लाडो मलमल नहाया,
नहलाया जब देयो देवी खुश्क गंगा वयालेया,
सेहरा तो तरया भला ही सरया लाभ हरी जी का लीजिये,
पैपणे हे भवानी पया आनन्द मंगल तीयाड़ा।।

इत चौथड़े मंगल कृष्ण जी चौरी व्योलेया,
गावे थी नारी जी इन ब्रह्मे वेद रचायेया,
वेद ब्रह् में रचया, तग्न गणैया मुहुरता,
जुग जुग तो थरवण वेद रचया नाम हरी जी का लीजिये,
पैणे हे भवानी पया आनन्द मंगल चौथड़ा ।''

अर्थ :

यह प्राचीन गीत दोनों तरफ गाया जाता है यानी भगवान श्री कृष्ण और रूक्मिणी जी के उदाहरण को सामने रखते हुये नारियां इस मंगल गीत को गाती है। बटणा आदि मलने पर लड़की को दही से नहलाते हैं

और फिर चौकी पर लड़की को खड़ा कर देते हैं और फिर उसकी मां पूजन करती है। उस दिन से कन्या कुछ भी काम नहीं करती। फिर उसकी सहेलियां व और औरतें कुछ मंगल सुहाग भी गाती है जैसे -

मिलनी के समय के सुहाग

'ऊंचे तो मण्डल बापू सोयणे वारी,
ऊपर बैठा काला काग वे।
केई ते आये बाप पावणे वारी,
केई ते आयी ये बरात बे।
दखणा ते आये धीये पावणे वारी,
पच्छमा ते आई ये वरात वे।
केई बठयालू इना पावणयाँ वारी,
केई बठयालू ये बरात वे।
महले बठयालों धीये पावणयां वारी,
बागे बठयालो ये बरात वे।
क्या ही परीऊं इन्ना पावणयां वारी,
क्या ही परीऊं ये बरात वे।
गरिया छंवारया इनां पावणयां वारी,
अलणी दाले बरात वे।
तैनूं ना आने बाप मेवणा वारी,
मैनूं नआवे मन्दी गाल वे।
चंगी तो बापू गऊंआ वी,
पतीले पतिलियां दे नाल वे।
चंगी तो बापू गऊंआ वारी,
बच्छूआ, बच्छिया दे नाल वे।
तैनूं ना आवे बापू मेवणा वारी,
मैनूं न आवे मन्दी गाल वे।

अर्थ :

लड़की जब छोटी सी होती है और उसको ज्ञान नहीं होता तो वह अपने पिता जी से कहती है कि पिता जी आंगण में जो मण्डल आदि है और वेद लगी है उस पर कौवा बैठा है (यदि किसी के घर में कौवा आकर 'कां कां' करता है तो वहां के लोग यह मानते हैं किजरूर कोई महमान आयेगा) यानी किसी के आने की सूचना दे रहा है और उतने में बारात पहुंच जाती है फिर कन्या पूछती है कि ये (पावणें) और बारात कहां से आ रही है? पिता उत्तर देता है कि दक्षिण से ये मेहमान आ रहे हैं और पश्चिम से यह बारात आ रही है। फिर पूछती है कि कहां बिठाऊं इनको? तो पिता कहते हैं कि मेहमानों को घर में बुला लो और बारात को बाग में बिठाना है। फिर वह पूछती है कि इन मेहमानों को बाग में बिठाना है फिर वह पूछती है कि इन मेहमानों और बारातियों को क्या खाने को दें तो उसे उत्तर मिलता है कि उनको मेवा आदि खाने को दो। और फिर उसको पता लगता है कि उसी की शादी है तो वह अपने पिता, चाचा, ताया आदि से कहती है कि दहेज में कपड़े, जेवर, बर्तन, गायें आदि अच्छी - अच्छी देना ताकि तुम्हें कोई ताना न दें और न ही मुझे कोई गाली दें।

घोड़ी :

'श्रीपत स्याम सुखदाई, जहां कारण घोड़ी मोले मंगवाई,
आऊंदी गूंदी घोड़ी दर है खड़ौती हीरे लाल लगे गज मोती,
घोड़ी चढ़या मेरा कंवर कन्हैया,
साथे संग बलभद्र भैया।
सब कुन्दनापुर जाई पहुंचे, देव जागे दानव सब सुते।
हरी कुन्दनापुर लगिया रसोई, जै जै कार करे सब कोई
ब्रह्मा, वैष्णू जणैती आये, वेद रचे त्रिया मंगल गाये।
कान कुण्डल गले है रूण्डमाला,
मुरली की तुनक तुनां तुन वाजे।
अमृत भोजन रुची रुची ने लीना, निर्मल नीर गंगाजल पीना।।'

अर्थ :

भगवान श्री कृष्ण जी सब को सुख देने वाले हैं उनके लिये जो घोड़ी मंगवाई है (बारात में जाने के लिये) वह द्वार पर खड़ी है। यानी तैयार है और हीरों आदि से सजाई हुई है। फिर स्त्रियां गाती है कि घोड़ी पर सवार हो कर मेरे कंवर घनैया जा रहे हैं और उसके साथ उसके ा गले में माला है और मुरली को धुन सुनाई पड़ती है। सब भोजन करते हैं और पानी भी पीते हैं। समय पर बारात कन्या पक्ष के घर में पहुंच जाती है। उसी समय वह सीधी घर नहीं आ जाती, बारातियों के लिये एक डेरा दे दिया जाता है तथा रहने का ठीक प्रबन्ध कर दिया जाता है। कन्या के पिता व वर के पिता की मिलनी होती है। खूब बाजे आदि बजाय जाते हैं।

बलभद्र भैया आदि है। सब जब कुन्दनापुर में पहुंच जाते हैं तो वहां देवता लोग तो जाग जाते हैं और असुर सब सोये हुये रह जाते हैं। कुन्दनापुर में खूब रसोई आदि बन रही है और सभी प्रसन्नता में जै जै के नारे करते हैं। ब्रह्मा विष्णु सब उनके साथ बारात में जाते हैं और ब्रह्मा वेदों की रचना करते हैं। स्त्रियां मंगल गीत गाती है कि कानों में कूण्डल तथा गले में माला है और मुरली को धुन सुनाई पड़ती है। सब भोजन करते हैं और पानी भी पीते हैं। समय पर बारात कन्या पक्ष के घर में पहुंच जाती है। उसी समय वह सीधी घर नहीं आ जाती, बारातियों के लिये एक डेरा दे दिया जाता है तथा रहने का ठीक प्रबन्ध कर दिया जाता है। कन्या के पिता व वर के पिता की मिलनी होती है । खूब बाजे आदि बजाय जाते हैं।

जिस समय वर ब्याहने जाता है स्त्रियां कुछ इस प्रकार भी गाती है जिन्हें घोड़ी कहते हैं : -

'घोड़ी तेरी व लाड़ेया, काठी ने भौजा वणाइया,
चन्दा बैठणा लागया तारेया जलामल लाइया।

कपड़े तेरे वे लाड़या तारेयां जलामल लाइया,
चन्दा पैहनणे लागया तारेयां जलामल लाइया।

गैहणे तेरे वे लाड या, घड़ती ने मौजा वणाइया,
चन्दा पैहनणै लागया तारेया जलामल लाइया।

सेहरा तेरा वे लाड़या कलगी ने मौजा वणाइया।।

इस गीत में उस समय का वर्णन है जब दूल्हा जाने को बिल्कूल तैयार होता है उसके, कपड़ों, गहणों तथा सेहरे आदि की प्रशंसा की गई है कि जो तुमने वस्त्रादि पहने है तारों के समान चमक रहे हैं)।

घोड़ी

'मैं तैनूं बोलदी पंडतो केरेया बेटेया
राये बीच चंगा लगन गणाओ।
आओगे मेरे बन्ने केरे जानिया मैं मानियां
राहे बीचे चंगा लगन गणाओं।
मैं तैनूं बोलदी भाभी केरेया बेटेया
राहे बीच चंगा बंगलू बणाओ
आओगे मेरे बन्ने केरे जानिया मैं मानियां
बंगलू लऊंगे पड़ेजा राये बीच चंगा लगन गणाओ
मैं तैनूं बोलदी सौदागर केरे बेटेया राहे बीच घोड़ी खरीदणी
घोड़ली ल्याओगे पड़ेजा राहे बीच चंगा लगन गणाओ ।'

इसी तरह दर्जी को कपड़े, सुनार को गहने, मामे को सेहरा, ललारी को कुंकुम का अनुरोध किया गया है कि वे बन्ने (दुल्हे)को ब्याह के अवसर पर सब शुभ – वस्तुए प्रदान करें।

2

'अनार तेरी चारों कली न्यारो न्यारिया
अमरुद तेरी डाली पे छा रही बहार नी
चल आजा बनरी जिया उदास हुआ जा रहा
मैं कैसे आऊं, अम्मा तम्हारी देख रहियो
चल आजा बनरी अम्मा दा डर सानूं कोई नही
अनार तेरी चारों कली न्यारो – न्यारियां ....'

इस प्रकार बन्ना बुलाने का आग्रह कर रहा हैं तो बनरी चाची, भाभी, आदि का डर दिखा रही है।

3

लाड़ा मंगदा घोड़ली आसा घोड़िया चढ़ के जाणा जी,

शहजादे बणके जाणा जी।

शाबाश बन्ने नो जंगल हिरणु चुग रहिए,

लाड़ा मंगदा कपड़े आसा कपड़े पैण के जाणा जी'

शहजादा इसी प्रकार ''बन्ना'' गहने, पगड़ी, सेहरा आदि मांगता है।

4

'महलों से उतर चतुर बनरी कोई मेरा वी बनरा देख्या था
देखया था भई देख्या था के सुइने दे खाट पर बैठेया था
गहणा कड़ाओ मेरा पतला जा

इदी हख बड़ी मुख सोहेणा जा
महला से उतर के देख्या था भई देख्या था
कोई पटुए दी हट पर बैठेया था
शेरा गन्दवाओं मेरा पतला जा
महलों से उतर चतुर बनरी
देख्या था भई देख्या था
के दर्जी की हट पर बैठेया था – ....'

5

'रसीली घोड़ियां ढमकोरो से चलती है
तेरा बाबा ल्याया सजा सजा के शेहरा
बाबा के लाड़ले पहनो, न लाओ देरी
वख्त अब हो गया लगनों के जाणे का
रसीली घोडियां ढमकोरों से चलती है
तेरा मामा ल्याया सजा – सजा के पगड़ी
मामा के लाडले ......'

इसी प्रकार बहन हार, तथा कपड़े, आदि का बखान किया जाता है।

'दिल्ली लाल्या दा लड़का साथे घोड़ी मांगदा
असी दे दिया जुवाब यह जरुर मंगदा
पैरी बूट – जुराबा सुहणी चाल चलदा
चिट्टे दंद गुलाबी होंठ मुंह पान चबदा
सिरे दे लम्बे – लम्बे केश बांगी चीर कड़दा।'

सुहाग – गीत

सुहाग गीतों में कन्या एवं उसके पिता का स्नेह अनेक संवेदनाओं में व्यक्त होता है।

हरीये नी रस भरिये खजूरे,
किने बे लाई ठण्डे बाग बे
नियूंड़ी होया पैणे कालीये धारे
देरवी लैणा बापू जी दा देश बे
बापू तो तेरा गढ़ दिल्लिया रा नोकर
उन पर दित्ती बेटी दूर बे ......।
अम्मा दा छोड़या धीये चूल्हा जे चौका
बापू दी छोड़ी राम रसोई बे......

इसी प्रकार बारी – बारी से चाचा, ताया, मामा, भैया आदि को सम्बोधित कर के मंगल गीत गाया जाता है।

दाड़नी दे बूटे बापू पिंगा पाइयां
सखियां सहेलियां सब पींगण गइयां
मैं भी पिंगणे जाणा....
बिरवड़ पहाड़ बापू जी मां कलिया कियां रैहणा
सहिया सहेलिया पींगणे गइयां मैं भी पींगणे जाणा

लड़की अपने पिता से कहती है कि पिता जी पेड़ों पर झूले पड़े हैं। सब सहेलियां वहां जा रही है। मैं उनके साथ झूला झूलने जाऊंगी। पिता कहता है कि बेटी तुम्हारी शादी हो रही है। तुम झूला झूलने नहीं जाओगी।

बागे जे देऊंगा धीये व्यौरा देरवी रैहणा,
बिरवड़ पहाड़े चाचा जी मां कल्लीया कीया रैहणा,
टोकणे जे दैऊंगा धीये थालिया देरवी रहणा।
बिरवड़े पहाड़े ताया जी मां कल्लीया किया रैहणा,
गऊंआ दैऊंगा धीये बछिया देरवी रैहणा ।।

अर्थ :

लड़की अपने बाप से कहती है कि पिता जी पेड़ो पर झूले पड़े है सब सहेलियां वहां जा रही है मैं भी उनके साथ झूला झूलने जाऊंगी।

पिता कहता है कि हे बेटी झूलने नही जाना तुम्हारी शादी होगी और तुमने ससुराल जाना है। फिर लड़की कहती है कि ऐसे अकेले (एकान्त) पहाड़ पर मैं अकेली कैसे रहूंगी। मैं तो झूलने ही जाऊंगी पर पिता कहता है कि बेटी मैं तुम्हारे साथ बहुत सी चीजें (दहेज में) दूंगा इन सब को देख कर रहना। ऐसे बहुत से सुहाग गाये जाते हैं। तेल आदि पड़ने के पश्चात शान्त होती है उस दिन कन्या के ननिहाल वाले व लड़के के मामा आदि भी वर वधू व उसके मां बाप को कपड़े देते हैं व वेद आदि का खर्च, कन्या के लिये बालू देते हैं। और यथा समर्थ कई तो एक दिन का सब बारातियों व सम्बन्धियों को भोजन भी देते हैं जिसे यहां धाम कहते हैं।

2

आंगण तेरा बापू जी परबत होया, बाहर होया परदेस बे

ए लओ बाबा घर आपणा मैं तो चली बगाने देस बे

बेटी दा मंडुवा चावो ए ....

अम्मा तो तेरी घुलघुल रोए बाबा रोए मन – मन बे ....

अम्मा दा भीग्या सूआ चोलणा, तेरे बाबे दा भीग्या रुमाल बे ....

बेटी दा मंडुवा चावो ए ....

रहिया मेरिया गुड़िया बाहरे कल्लिया रैया मेरा हार बे

साथो रिया सहेलिया भी बिछड़िया मैं तो चली बगाने देस बे

बेटी दा मंडुवा चावो ए ....

दादी तो तेरी ढुलढुल रोए दादा रोए मन – मन बे

दादिया रा भीग्या सूआ चोलणा तेरे दादे दा भीग्या रुमाल बे

बेटी दा मंडुवा चावो ए ....

इसी प्रकार भाभी, भाई, आदि की आवृति है।

3

कचुनार बैठी बीवी पान चाबे बिनति करेंदी बाबे पास

बाबा जी वर टोलिये।

एक रात रहियों उनकी जात पूछियो उनका गोत पूछियो

ताईं तो लगन गणाइयो।

कचुनार बैठी बीबी पान चाबे विनति करेंदी चाचे पास

चाचा जी वर टोलिए

देश परदेश पर देना जाइयो हमारी जोड़ी दा वर टोलियो

चाचा जी वर टोलिए ....

4

बापू जी मोरी मत करो शादी

ऊमर बाराह बरस की है

जभी झंडा उठाऊंगी तभी शादी कराऊंगी

बापू जी मोरो मत करो शादी ....।

लिखवा दो नाम कांग्रेस में

बनूंगी साहस की देवी

चाचा जी मोरी मत करो शादी ....।

बारात के विदाई के समय का गीत

मेरा गुड़िया पटारू वे नी बापू तेरे कौण खेले ....

मेरे पोतिया बथेरी बे नी धीये घरे जा आपणे।

तेरे चूल्हा जे चौका बे नी बापू हु कौना करे,

मेरे बहुआं बथेरिया बे नी धीये घरे जा अपणे।

तेरेया मैहला ते अन्दर वे नी बापू मेरी आम्मां रोये,

तेरी आम्मां नू चुपाई राखूंगे नी धीये जा आपने।

तेरी मैहलां ते अन्दर बे बापू मेरा डोला अड़या,

इन्ना मैहला नो पट्टाई सकूंगे नी धीये घर जा आपणे

तेरे मैहला ते अन्दर वे बापू मेरी सहिया रोये,

तेरी सहिया नो चुपाई राखूंगे नी धीये घरे जा आपणे।।

अर्थ :

जब लड़की को विदा करते हैं तो वह अपने पिता से कहती है कि पिता जी मेरी गुड़िया अब कौन खेला करेगा यानी उसका जाने को मन नहीं करता तो पिता जवाब देता है कि बेटी तुम अब अपने घर जाओ, वहीं तुम्हारा घर होगा। इन गुड़ियों को अब मेरी छोटी पोतियां खेलेंगी। फिर वह पूछती है कि रसोई का काम कौन करेगा, मुझे मत भेजो पर वह कहते हैं कि उस कार्य को बहुएं करेंगी ।

लड़की फिर कहती है कि पिता जी मैं कैसे जाऊं घर में मेरी अम्मा रो रही है। पिता जो फिर कहते है कि उनको हम चुप करा लेंगे। लड़की बहुत बहाने लगाती है कि मेरी घर के अन्दर ही डोली भी रूक रही है ओर सहेलियां रो रही हैं मैं नहीं जाऊंगी पर पिता जी कहते हैं कि घर भी चाहे गिराना पड़े पर तुम अपने घर चली जाओ। छोटी छोटी लड़कियां रोती भी है और गाती भी रहती हैं –

मेरी सीता सहेलड़िये नी हुण पैणे कद मिलणा,

जद बापू बुलायेगा नी हुण भैणो तद मिलणा।

अपने सास ससुर जी की सेवा पति जी के संग रैहणा,

मेरी सीता सहेलड़िये.......

इस प्रकार सब सम्बन्धियों के नाम गिने जाते हैं। कन्या को डोली में बिठाकर कहार डोली उठाते हैं। सभी दर्शक लोग इक्ट्ठे हो जाते हैं और यहां जो मन्दिर है उसके निकट ही डोली को उतार दिया जाता है। वर – बधू को मन्दिर में ले जाया जाता है और फिर पैसे फूल आदि अर्पित

करके फिर डोली में बिठा दिया जाता है। कन्या की मां उसको कुछ मिष्ठान्न खिलाती है और अन्त में विदा कर देती है। उस समय फिर स्त्रियां मंगल गीत गाती हैं –

मेरी रणवण कोयले यौ बण छोड़ कहां चलिया?
बावे बचन दिया था वचना दी बादी मैं चलिया।

इस गीत में भी बार – बार चाचा, ताया, मामा, भैया आदि को गिनते हैं। स्त्रियां लड़की से पूछती हैं कि हे लाडली कोयल के समान चहकने वाली, आज तुम इस स्थान को छोड़कर कहां जा रही हो? फिर लड़की उत्तर देती है कि मेरे पिता जी ने किसी को वचन दिया था उस वचन के मुताबिक मजबूर होकर मुझे जाना पड़ रहा है अदि।

वधू – विवाह पर शिठणी

कन्यादान के पश्चात जब बाराती धाम खाने बैठते हैं तो वधू पक्ष की किशोरियां तथा स्त्रियां बारातियों को गानों के माध्यम से मधुर गालियां देती है जो वातावरण को उल्लासमय एवं गमगीन होने से बचाती है।

इन्ना चावला बिचे बंद कीड़ा बोलदा
वे इन्ना चावला बीचे......
म्हारे बोटिए भात रिन्या, भात रिन्या,
इन्ने जणेतिए काड्डे दंद, आहा.....
आज खादा भात, कीड़ा बोलदा बे.....

इसी प्रकार मंगल में खाना खाते महत्वपूर्ण सगे संबन्धियों पर व्यंग्य किया जाता है जैसे चाचा, जीजा, मामा, भाई आदि।

एक अन्य 'शिठणी' गीत में चरखा कातते हुए युवती दुल्हे के सगे – सम्बन्धियों पर तंज कस रही है।

दमलड़ चरखा फिरदा मैं किस मिल पावां पूणियां......
ए रे कन्हैया, तेरिया जोरुआ खे ग्रए..... ग्रए जी ग्रए
नौ मण लोहा ल्यावणा था तेतरी छुरी घड़ाणी थी
पाडेया खे मणशाणी थी डफ्फ बाजे डफ्फ.......

ए रे नीलूवा ....."

इसी प्रकार सभी महत्वपूर्ण लोगों को ऊंची आवाज में नाम लेकर मजाक उड़ाया जाता है –

"चीड़ो – चीड़ो नी बेबो खूट्टी ले गया गलांवा
ए जी रामूआ तेरिया खुट्टीया दे पांवां गलांवा......
गलावां जी गलावां......
चीड़ो चीड़ो नी बेबो.....

इसी प्रकार अन्य लोगों को भी पुकार जाता है।

दंद बीड़ी लग्गी – लग्गी ओ मेरी जान.....
दंद बीड़ी लगी......
दंद तोड़ी लणे दो चार......
दंद बीड़ी लगी......
म्हारे भाइया रे मुंए लौंग – सपारी
इन्ना बरातिया रे मुंए शुक्का हाड,
दंद बीडी लगी.....
म्हारे चाचे रे मुएं लौंग – सपारी.....
लाड़े रे चाचे रे मुंए शुक्का हाड
दंदं बीड़ी लगी.....

यह गीत खाना समाप्ति पर गाया जाता है।

"पत्तल" या तरमौल

पत्तल या तरमौल एक छन्दो बद्ध देवस्तुति है जो धाम में बैठे सभी बारातियों को सुनाई जाती थी। इसके पूरा होने पर ही खाना प्रारम्भ किया जाता था। बातल ग्राम में बैशाख मास संवत उन्नीस सौ उन्तालीस को प्रस्तुत तरमौल प्रचलित थी –

पहले तो गणपत से मिलयो, पीछे करियो काम।
सभा बगानी बैठ के, लाज राखे भगवान।
सिमरों ऊमा पुत्र को, जिस के नाम गणेश।
जिन को सिमरे देवता, सब के कटे कलेश।

सिमरों देवी अम्बिका, जिस के नाम अनन्त।

सिमरों ब्रह्म, विष्णू , महेश, जिन को सिमरे सन्त।

पांच देव को ध्याय के, पत्तल करूं बखान।

नर नारी सुन लिजिओ, सब जी कर के कान।

अब मैं पत्तल कहता, सिमरो सरसुती नाम।

नर नारी सुन लिजिओ, मैं रहता बात्तल ग्राम।

इस पत्तल के बीच में, अति सुन्दर बैन।

प्रीती कर के सब सुनो, तो सुन कर हो सुख चैन।

उन्ताली सौ बैशाख, उन्ताली सौ शुभ साल।

इन सम्वतों के बीच में, पत्तल बनी विशाल।

अब मैं पत्तल खोलता, तुम सुनो सुन्दर बैन

छुट्टे रसोइए सभी, बान्हों तुम्हारे नैन।

छुट्टे बाहन पुरूष सब, भोजन छुट्टे अनूप।

बान्हू चंचल नारी को, सब के बान्हू रूप।

छुट्टे लड्डू जलबिआ, और सभी पकवान।

बान्हू वेणी शीश पर, आभूषण अरू कान।

छुट्टे पेड़े बर्फिया, खुर्मा फुट सुहाल।

बान्हूं कंगण चूड़ला, सब की बान्हू चाल।

छुट्टी कैणी धाम की, जीमन ऊपजे चैन।

बान्हू नख मुख सभी, कजल वाले तारे नैन।

छुट्टे पूरी कचौरिया, शाग नेक प्रकार।

बान्हू पायल बाजणी, तेरी बिछुअन की झनकार।

छुट्टी सीरा लापसी, मोहन भोग अरू भात।

बान्हू शोभित मांग शिर, शोभा शोभित गात।

छुट्टे लौंग ओर लाइचिया, पूंगी फल अरू पान।

बान्हू नारी बोलती, सब जीमों है पकवान।

पत्तल सब की छूट गई, वान्हा नारी गान।

अब मैं उनसे यूं कहूं, कि जीमो सभी बरात।

नारी सगरी बान्ध के, पत्तल लई छुलाई।

वृद्ध तरूण बालक सभी, जीमो हर्ष उठाए।

अच्छी कीती कड़मेटिओ, तुसे बान्हया मांहरा भात।

बान्हया भात न खान्दे कोई, सब ज्ञानी बैठे हाथ सगोय।

तूसे तो बान्ही महारी पात्तली, आसे लई छुड़ाए।

तुसा रे जीओ कंतड़े, माहरे जीओ भाई।

येही महारी सीस, तुसे जीओ लाख बरस।

बुरा तो कुजा बुलवुला, चिड़ियां हुआ दुध।

अंबर कुंजा बोलिया, लगी रिंगा चिंग।

चार वस्तु हमारी और, छुट्टया लोटा पात्तल छिंगा।

देवी केरा दयोरा, पीपल हुन्दे पत्त।

लाड़े दे शिर शेहरा, देवी दे सिर छत्त।

खाओ जणेतिओ, घी शकर मंडे भत ।

कि बोलो राम राम ।।

मंगलामुखी गीत

चैत्र मास अर्थात बसन्त ऋतु का आगमन! मंगलमय नव वर्ष की आशा का प्रतीक! फूलों व नवपल्वों से अलंकृत ऋतुराज ने अपने आगमन की सूचना प्रकृति को ज्यों प्रदान कर दी, इसके स्वागत के लिए भ्रमरदल वासन्ती पुष्पों पर दौड़ने लगे। सूर्य की रश्मियां उतप्त होने लगीं, केसरी पुष्प स्वर्ण के समान चमकने लगे। आभ्रमंजरी पर कोयल मदमस्त गाने लगी। पवन में सोंधी महक, नदी-नालों उपत्यकाओं में लयात्मक संगीत भरने लगा। समस्त वन-प्रान्तर में तरू-लताओं पर नव-पल्लव इस राग-रंग में हास्य विखरने लगे .... लगा, कामदेव का प्रादुर्भाव हुआ.... प्रकृति में घोषणा कर दी कि वसन्त आ गया ....।

पहाड़ी प्रदेश में इस अवसर की महत्ता को 'लोक' तक पहुंचाने के लिए लोकरंजक सामाजिक व्यवस्था के अनुसार चैत्र आगमन की सूचना का कार्य मंगलामुखी अर्थात् 'मांगता' को प्रदान किया गया था। नाई को शुभ निमंत्रण का तथा कुम्हार को नए शुद्ध मिट्टी के पात्रों का।

मण्डी, बिलासपुर तथा सोलन जन-पदों में चैत्र गीतों की समृद्ध परम्परा पाई जाती है। मण्डी तथा बिलासपुर क्षेत्रों में जहां ये गीत स्त्रियों द्वारा गाए जाते है। वहां सोलन क्षेत्र में ये गीत मंगलामुखियों (मांगता) द्वारा ढोलकी की पारम्परिक लय ताल द्वारा ढोलकी की पारम्परिक लय ताल पर घर-घर शुभ मंगल की सूचना देने के रूप में गाए जाते हैं। मंगलामुखी सुहावनी ऋतु की सूचना इस प्रकार देते है।

''निसरया जे हुंदा ये फूलए भया वे सुहावणा रे हां
मैय्या म्हारे आई ये जो रीत वे सुहावणी रे हां
रीति वे करीति फिरी धिरी आइयां मोया नी आया दूजी बार।
कुन्ता हात्थे लैदी वे चनण कटोरिया पांजे इने पांडवे कुंगू चनण बाडेया रे हां
कौंवलों केरा फूल जो फूल्या वे सुहावणा रे हां ......
मैय्या म्हारे ये कंवल ये जाति वे नरायणे लई रे हां........
दाड़ली केरा फूल जो फूल्या वे सुहावणा रे हां ....
मैय्या म्हारे ये दाड़ली ये जाति ललरिये लई रे हां ....

शिंबल केरा फूल जो फूल्या वे सुहावण रे हां ....
मैय्या म्हारे ये शिंबल ये जाति शुभूए लई रे हां ....
जावा केरा फूला जो फूल्या वे सुहावणा रे हां ....
मैय्या म्हारे ये जावा ये जाति मंगला मुखिये लइ।

'हे भैया, सुहावनी ऋतु आ गई। चारों ओर प्रकृति फूलन लगी है। फिर फिर कर ऋतुएं आती जाती हे, किन्तु भरा हुआ इन्सान वापिस नहीं आता अर्थात् ऋतु का हर्ष और उल्लास जीवित प्राणियों के लिए है। पांच पाण्डवों ने संसार को कुकुंभ तथा चन्दन बांट दिया है, मां कुन्ती ने अपने हाथों को रंगभरी कटोरी से यहा रंग बांट दिया था।

ये जो कमल के फूल खिले हैं ये विष्णु के प्रिय है, इनकी जाति भी विष्णु ही है। पीपल का फूल ब्रह्मा देवदारू का फूल पाण्डवों, चील का फूल कौरवों, दाड़िम का फूल ललारी, शिबल का फूल शंभू तथा जावा (दूब) का फूल मंगलामुखी को प्रिय है। इस ऋतु गीत में विभिन्न देवों तथा व्यक्तियों से फूलों का सम्बन्ध जोड़ा गया है।

कहलूर एवं मण्डी क्षेत्र में इन मासों में छिंज के नगाड़े बज उठते हैं। छिंज वास्तव में मल्लयुद्ध है जिसमें महिलाओं की उपस्थिति निषिद्ध थी। इस बन्धन के कारण नारी की भावुकता करूण होकर 'छिंज' गीतों में फूट पड़ी। कहा जाता है कि प्राचीन काल में कुश्तियों के प्रारम्भ होने पर स्त्रियां अपनी विवशता को भुलाने के लिए गीतों का सहारा लेती थी जो कालान्तर में परम्परा बन गई फिर भी इन ऋतु गीतों में परदेस में ब्याही नारी मन की विरह की अभिव्यक्ति ही प्रमुख रही है।

पहले बागे ना जाणा मेरे भौंरा दूजे बागे जाणा रे ना ....
बागे जे फूली मालती वीरा धिया नो शदणे जाणा रे ना ....
शादो बुलाओ एस नाइयो रे बेटे धिया नो शादणे जाणा रे ना
बापू जे मेरा मुइये चंबे दा चाकर वीरन मेरा याणा रे ना ....
रलमिल बैठो मुइयो सैयो सहेलियो पियो नो आवण जाई रे ...
आओ कहारो पीड़ो मेरा डोला राणिया पेइयो नो जाणा रे ना ....
जुग - जुग जीयो मेरे बापू दी नगरी, लाख बरीसा अम्मा रे ना
चोलिये चुन्नी मुइए मौलिये बारि एई छौंजा दी बधाइयां रे ना ....

चैत महीने वे छींजा वी गाइया सुण लैयो लाख बरीसा वे ना

बसन्त ऋतु आने पर नववधू मायके जाना चाहती है। हे भ्रमर अभी बाग में न जाओ। बाग में मालती फूल गई है। भाइयों ने बहिनों को बुलाने जाना है। भाइयों ने बहिनों को बुलाने जाना हे। इस नाई के लड़के को बुलाने भेजते है किन्तु इससे मन का दुख नहीं कहा जा सकता। इसलिये देवर को भेजते है।

बापू चंबे नौकरी करता है, भाई अभी छोटा है, सहेलियो, मेरे संग आकर बैठो, पीहर स्वयं ही जाना है। कहारो, मरा डोला उठाओ और पीहर चलो। बापू की नगरी लाख बरस जिन्दा रहे। आगे मंगलामुखी आशीर्वचन कहता है – 'चूनरी, चोली मौली, आदि 'छिंज' के शुभागमन की निशानी है – ये हमें प्रदान करो और बधाइयां स्वीकार करो।

एक अन्य चैत्र गीत के नव – विवाहिता युवती काले कौव द्वारा अपने पीहर को संदेसा भेजती है –

उड़ी जाया उड़ी जाया कालेया कागा दक वे सनेहा लई जाया वे ना

अम्मा नो देणा मेरा मेरा सुख वे सनेहा बापू नो देणी चिट्ठीयां वे ना

काये दे लड़ बानू सुख वे सनेहा काये बंधाऊं ईना चिट्ठयां वे ना

पगड़ी दे लड़ बानू सुख वे सनेहा कागा दे गले बानू चिट्ठियां

काहे मढ़ाऊं तेरिया कालिया चूंजा काहे मढ़ाऊं कालेया पंख वे ना

सूइने मढ़ाऊं तेरिया कालिया चूंजा सूइने मढ़ाऊं काले पंखा वे ना

उड़ी जाया उड़ी कालेया कागा इक वे सनेहा लई जाया वे ना

'हे काले कौवे, तू उड़कर एक सन्देश ले जा। मेरी अम्मा को कुशल क्षेम कहना और बापू को चिट्ठी देना। मै तेरे गले मैं चिट्ठी बांधूंगी .... तेरी चोंच और पंखो को सोने से मढ़ा दूंगी।

अर्की क्षेत्र का एक अन्य पारम्परिक गीत नव विवाहित के ससुराल में अकेलापन अनुभव करने तथा मन की बात किसी को न बता पाने की अनुमति पर आधारित है।

थोड़ी मुइये थोड़ी निंबड़ी होया मेरिये डोरड़िये थोड़ी मुइये थोड़ी..

सैरेया ने मरेया जाई औणा पेउकड़ेया नी बे......

शाशुए नी मेरिये चावलिये हो......

शाशुए नी मेरिये जाई औणा पेउकड़ेया नी बे........

शाशुए नी मेरिय चावलिये हो थोड़ी मुइये निबड़ी होया

कन्ता नी मेरेया जाई औणा पेउकड़ेया बे......

कन्ता नी मेरेया चावलेया......

ओरे ल्याओ ग्वालुआ नरमे दी छटिया

मैं खोवां इछा पेउकड़े नो जाणा थोड़ी मुइये थोड़ी।

नववधु अपनी उधेड़बुन में एकाकी पन का भाव लिये अपने मन को भयके जाने के लिय – सान्त्वना दे रही है – वह पनिहार पर पानी भरने गई है – हे मेरी डोरी, तू जरा नीचे हा जा – शायद मेरे ससुर मेरे पीहर जाएंगे। अहा, मेरे ससुर कितने अच्छे है। शायद मेरी सास पीहर जाए। ऐसी सास कितनी अच्छी है। यदि ये नहीं जाएंगे तो मेरा कन्त ही पीहर चलेगा.. पर नहीं वह इस मौसम में कहां जाने देगा ?वह नर्म छड़ी मांगवाकर मुझे मारेगा और कहेगा – मैं तेरा पीहर जाना ही खो दूंगा। तुम्हें कभी भी पीहर नहीं जाने दूंगा।..... हाय.....।

ज्येष्ठ की अन्तिम दुपहरी का अवसान हुआ और प्रकृति नटी ने दीर्घ विश्वास छोड़ा। उसका प्रिय मेघ राजा की भान्ति गरजते सीकर भरे शीतल रूई के फांहों से यक्त गजरूपी सवारी पर नभ में उड़ता – बिफरता उसके वक्ष पर बरस उठा कामी जनों का प्रिय, विरहियों का सहचर, विद्युत की पताका फहराता, वाद्य बजाता तृषित रा पर हरियाबल बिखर गया। कविकुल गुरू कालि दास गा उठा

'ससीकराम्भो धरमत कुञ्जर, स्तडित्पताकोऽशनि शब्द मर्दन:।

समागतो राजवदुद्धत द्युतिर्धजागम: कामिजन प्रिय – प्रिये।

दुल्हन बनी प्रकृति कोमल अंकुरों से भर गयी, धरा वेदुर्य की आभा से मंडित हो गयी। भूमि इन्द्र गोपों से स्थान – स्थान पर ढक गयो। विन्ध्य की उपत्यका गहरी हरियाली से मन को मोहने लगी और उससे बढ़कर कामीजनों के दिल के उद्‌गार गीतों में फूट पड़े ....

सावन – गीत

चिरन्तन संस्कृति की धरोहर हिमाचल की अंचलिका देवसुलभ सदाचार एवम् शालीन हार्दिक संवेदनाएं लोक गीतों के रूप में समेटे है। भोली – भाली, अल्हड़ ग्राम ललनाएं सावन के झूले पड़ते ही चहक उठती है –

सब रस सावण आया सैयो। घन और गरजे सौ सैयो ...... ।

घन और गरजे मेघा बरसे, नदिया उच्छल आईया

सैयो सावण आएया। कपड़े तो तोये रस्से धोबिए, सैयो

कोयल सोती अम्बे डालिया, मोरा ने कूका जगाईया

फिर मोया मोरा कलच्छणया तैं मेरी निंदा गवाईया

जाइ पक्वारुं दिलड़िया राए दामोदर पासे

राए दामोदरे न्याय कित्ता, क्या बगाड़ा बगाड़ेया

कोएल सोती अम्बे डालिया मोरा ने कूका जागाड्या। सैयो सावण आएगा।

अरी सहेलियो। सब रस (प्रेम रस) लेकर सावन आ गया। बादल ओर गर्जन करते बरस रहे हैं। नदियां भर कर उच्छल गई है। सहेलियो, अब सावण आ गया। सावन रूपी धोवी ने अमृतरूपी इससे कपड़े धो दिए (वर्षा से भीग गई) अब सावन आ गया।

कोयला आम की डाली पर आनन्द से सोई है। मोर प्रसन्नता से गा रहा है। छो: छी:, अरे मुए मोर, तुने मरी नींद खराब कर दी है। अच्छा में राजा दामोदर से शिकायत करूंगी कि मेरे प्रिय को नोकरी से जल्दी वापस भेज दें। मैंने किसी का क्या बिगाड़ा है?..... मुझे उम्मीद है कि राजा दामोदर न्याय ही करेंगे क्योंकि कोयल के आमें की डाली पर सोने का मौसम है तथा मोरों के गाने का मौसम है। यौवन के उद्यम प्रवाह में पर्वतीय गोरी का तन – मन विरहाग्नि में जल उठा है –

'आया महीना हाड़, अंगण खड़ी नार घोड़े दे स्वार,

हत्थे तलवार देख्या किसे मारदी।

आया महीना सौण, मिठी ठंडी पौण पींहगा मैं पांवदी।

आया महीना भादो, घनीयर घोर बिजली दा दौर,

लसक डरावणी पिया बिन होदी सूनी सेज डरावणी।'

इन पिंग गीतों में बारह मासों के अन्तर्गत पिया से मधुर चीत की जाती है, किन्तु आषाढ़ – श्रावण ओर भादो मासों मे हार्दिक भावों की तीव्र अनुभूति मिलती है बातचीत की जाती है, किन्तु आषाढ़ – श्रावण ओर भादो मासों मे हार्दिक भावों की तीव्र अनुभूति मिलती है

'हाड़े ने जायो, पिया जो सौण न्याल्यो हाड़ महीने अम्बुए पक्क दे।

सौणे ना जायो पिया जी भादो न्याल्यो सौण महीने पिंगा झूटिये।

भादों ना जायो पिया जी सौज न्याल्यो भादो महीने राती न्हेरियां।'

छम छम वर्षा से यौवन मद से उत्पन्न नव यौवनाएं पीपल तले ग्रीष्म का ताप भोग कर उतारने लगी। गांव के ताल – तलैया, लघु – सरिताएं लबालब भर गई। घाटियां और शिखर लता – गुल्मों से आच्छादित हो गए। हरियाली संक्रान्ति का शुभ दिन आ पहुंचा और पीपल तथा वट वृक्षों को डालों पर झूले झूल उठे

'पीपला पपलोटुआ। तेरिया छाया में खड़ी

खड़िया नो सखवांदड़ेया, बैठिया नो

सखवांदड़ेया काले – काले केश बे।

हे पीपल, मैं तेरी छाया में खड़ी हूँ तू मूखे खड़ी और बैठी हुई को सुख देने वाला है। यूं तेरी छाया काली है –

होर पौणा दित्तड़िया नेडे – नेड़े आऊं दीती परदेस वे........

भला मेरेया बापूआ, मेरे दम देया लोभिया

पीपला पपलोटुआ....... होर पैणा खादिया, कणक, चावल, चिंजणी दा पात,

आऊं पैण खांदी बिथुए दा साग। ......पीपल......

होर पैणा पैनदिया सूए – सूए कपड़े आऊं पैण पैनदी शाशु जी दा त्वार बे

पीपला..... नव विवाहिता इस उदासी के माहौल में अपने प्रिय बाप को उलाहना दे रही है- तुमने अन्य बहिनें तो नजदीक ब्याह दीं और मुझे परदेस में ब्याह दिया। ओ मेरी जान के लोभी बापू...... मेरी और बहिनें तो कनक, चावल और अच्छा खाना खाती है किन्तु मुझे बाथू का साग खाना पड़ता है। मेरी बहिनों को तो अच्छे कपड़े पहनने को मिलते हैं किन्तु मुझे सास के उतारे हुए पुराने कपड़े पहनने पड़ते हैं। एक लोग गीत में नववधू मायके की याद में अपनी अम्मा को सन्देश देना चाहती है

शाद्या नी शाद्या अम्मा मेरिए सावण के दिन चार सावण आयेगा।

मैं कियां शादूं धिये मेरिये बापू तो तेरा परदेस सावण आयेगा।

मैं किंया जाऊं धिये मेरिये नदिया दे

रुदड़ राओ साबण आयेया। नदिया नो देई भजू तारुया बापू जी घरे आओ सावण आयेया।

मैं किंया आऊं धिये मेरिये नौकरी तो देणी बगार सावण आयेगा।

नौकरी नो देई भेजू बदले बापू जी घरे आओ सावण आयेगा।

कणका दे लगी जांदी सूसरी पिया सांवरे

चावला दे लगी जांदे कूण कि तुसे घरे आईए।

कणका दे करेया गोरिये बाबरू नाजो गोरिये

चावला री करी लैया धाम, कि आसा पनी आऊंणा।

''कोरे तो लिखी भेजूं कागदा पिया सांवरे

घरे तेरे नाजो जी दी रोग कि तुसे घरे आइए।''

''चंगा तो मंगवाया गोरिये वैद कि नाजो गोरिये

चंगड़ा लाज कराया, कि आसा पनी आऊंणा।

नाजो सन्देस देती रही पर पिया नहीं आये। और अंत में विरहाग्नि में नाजो का ''काल'' होने लगा तो पिया ....

''कोरे तो लिखी भेजूं कागदा, पिया सांवरे

घरे तेरे नाजो जी दा काल कि तूसे घरे आईए।''

हात्थो ते छूटिगी कलम, नाजो गोरिये

नैणा ते बगीगे दरयाव, कि अब क्या कीजिए?

ए लौ राजा अपणी नौकरी, ओ राजा चंबे वालेया

घरे मेरे नाजो जी दा काल कि आसा घरे जावणा।

और अन्त में वह मिलन की घड़ी आ पहुंची जब राजा

की नौकरी छोड़कर कंत गोरी के पास पहुंचा

''पलंगो ते उतरी नाजो पीढ़े बैठी

कि दूरो ते कर दी सलाम, कि पिया घरे आई ए।''

पावस की घनघोर बदलियों, नदी घाटियों में छाई धुन्ध तथा पंकिल ग्राम मार्गों में अवरोध से एक घुटन का वातावरण व्याप्त होता है जिससे मानव मन के कोमल भाव कहीं गहन अनुभूतियों में खो जाते है.... उदास पूर्ण परिवेश में प्रिय स्मृतियों तथा सम्बन्धों का स्मरण निश्छल रूप में गीतों के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है। हिमाचली जन जीवन में सावन गीत अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाये हुये हैं।

बारह मासा – अर्की क्षेत्र

चैत चमेली खिड़ रही साजन तैं पिया दिल उदास किया
शुके ई बन में राधा बोले मोरे चकोरे बनवास लिया
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल – पल तरसे नैना मोरे

बशारव महीने सबे बन मिले बागे बड़िया बहार पिया
कान्ताब लिया यह सेहरा मांगे फूल गुलाबी हार पिया
दाड़ू – दारवा अम्बिया पाके तोतेया सेयो चुक रहियो
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल – पल तरसे नैना मोरे

जेठ जेठाणियां दे संग रहींदी मैं महले पलंग ढलाती हूं

सेज ना चढ़ती मैं पांव भी न धरती अपणा आप बचाती हूं
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल – पल तरसे नैना मोरे

हाड़ महीने पड़कर रही मन में चैन नहीं रस जिंदड़ी को
तीरवा धूप सही सिर अपणे क्या गल लाऊं कण्ठन से
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल पल तरसे नैना मोरे

शावण महीने घन हर गरजे काली घटा झुक झुक रहियो
बिजली लसके चमक डरावणी तां बिन जिंदडी शुक रहियो

भादों महीने समझूं मैं तैनूं तां पिया समझ न आई ए
सब लोका लुक रहियो बन में किस पास बैन सुनाऊं पिया
कोई भी न सुने बैन मोरे किस पास कूक सुणाऊं पिया
कोई भी न सुने बैन मोरे किस पास कूक सुणाऊं पिया
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए मां भी जाणा पास पिया

असुवा महीने आसा पनी रैणा चलणा संग फकीरा दे
कृष्णो पासे मलमल खासा फाड़ी शेटो इनां लीरा पिया
कातक महीने दयाली जे होए किस विध दयाली मनाती हूं
कटूं कलेजा बाटदी मैं पेड़े किस पासे दयाली मनाऊं पिया।

मंघर महीने दयाली जे होए किस विध दयाली मनाती हूं
नैना कजरा नंगे सिर नहाऊं माथे तड़िया लरव्याती हूं
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पलपल तरसे नैना मोटे
पोहे महीने आई सरदी दी रीत माटी रे पिया
किस पासे मैं रैन गुजाऊं पल पल तरसे नैना मोरे

माघ महीने मगर जो आए किस विध मगर मनाती हूं
जिना दे पिये घरे होय सेयो दान कराए पिया
आया महीना फागुण सब रंग बरसत है।

जिना दे पिए घरे होय सेयो होली मनाती है
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल पल तरसे नैना मोरे

बारह मासा – 2

हाड़ महिने पड़कर रही में चैन नहीं रस जिंदड़ी को
तीरवा धूप सही सिर अपणे क्या गल लाऊं कण्ठन से
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पल – पल तरसे नैना मोरे
शावण महीने गरजे काली घटा झुक – झुक रहियो
बिजली लसके चमक डरावणी तां बिन जिंदडी शुक रहियो
भादों महीने समझूं मैं तैनूं तां पिया समझ न आई ए
सब लोका लुक रहियो बन में किस पास बैन सुनाऊं पिया
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए मां भी जाणा पास पिया
असुवा महीने आसा पनी रैणा चलणा संग फकीरा दे
कृष्णो पासे मलमल रवासा फाड़ी शेट्टा इनां लीरा पिया
कातक महीने दयाली जे होए किस विध दयाली मनाती हूं
कटूं कलेजा बाट दी मैं पेड़े किस पासे दयाली मनाऊं पिया।
मंघर महीने नंगे सिर नहाऊं माथे तड़िया लरव्याती हूं
नैन कजरा मैं डारुं इस विध तड़िया सजाती हूं
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पलपल तरसे नैना मोटे
पोह महीने आई सरदी दी रीत मारी रे पिया
किस पासे मैं रैन गुजारुं पलपल तरसे नैना मोरे
माघ महीने मगर जो आए किस विध मगर मनाती हूं
जिना दे पिये घरे होय सेयो दान कराया पिया
आया महीना फागुण सब रंग बरसत है।
जिना दे पिए घरे होय सेयो होली मनाती है।
कृष्ण श्याम मोरे घरे नई आए पलपल तरसे नैना मोरे।

लोहड़ी – गीत

पहाड़ी क्षेत्रों में एक उक्ति प्रचलित है –

''आई लोहड़ी, गया सीत कोढ़ी ....

आया बसोवा, गिठिया लकोवा ।''

हिमाचल ही नहीं समस्त भारत में ऋतु – पर्वों को उल्लास एवं धार्मिक – उत्सवों के रुप में मनाने की परम्परा है। छः ऋतुओं में कोई न कोई त्यौहार अवश्य मनाया जाता है। शीत ऋतु का आरम्भ मास की संक्रान्ति से सम्बन्धित है। ग्रीष्म ऋतु के प्रारम्भ में बैसाख मास की बैसाखी – पर्व मनाया जाता है।

सूर्य को प्रत्यक्ष भगवान माना गया है। जिससे प्रकृति तथा मानव का अस्तित्व है। वास्तव में सूर्य का उत्तरायण की ओर माघ संक्रान्ति की चलना और गर्मी अर्थात सकारात्मक ऊर्जा प्रकृति – मात्र को प्रदान करना, माघ संक्रान्ति को महत्त्वपूर्ण तथा पूजनीय बनाते हैं। पृथ्वी सूर्य का चक्कर 365 दिन 5 घण्टे 48 मिनट 45.51 सैकेंड में लगाती है और पृथ्वी का भू कक्ष एक ओर 23.270 लम्बवत झुका है। इस तरह पृथ्वी अपनी धुरी पर परिक्रमा का दैनिक चक्र 23 घण्टे, 56 मिनट, 42 सैकेंड में पूरा करती है।

पृथ्वी की वार्षिक परिक्रमा के दो मार्ग अथवा ऊचन हैं। उत्तरायण और दक्षिणायन। सूर्य का उत्तरायण शिशिर की समाप्ति और वसंत (ऊर्जा) का आगमन है। इस प्राकृतिक घटना को पर्वों के रुप में समस्त भारत में मनाने की परम्परा है।

हिमाचल और पंजाब राज्यों में माघ संक्रान्ति 'लोहड़ी' के रुप में मनाई जाती है। मध्य भारत और पूर्वी – पश्चिमी भारत में 'मकर – संक्रान्ति' के रुप में आन्ध्र में 'पेड्डा – पांडुगा' तथा दक्षिणी भारत में 'पोगल' पर्वों के रुप में मनायी जाती है। सिंध क्षेत्र में 'लाल लोही बहार में खिचड़ी, बंगाल में 'संक्रान्ति' असम में माघी – बीहू'' आदि

नामों से माघ - संक्रन्ति को धार्मिक दृष्टि से मनाया जाता है।

गुजरात और राजस्थान के क्षेत्रों में इस दिन 'पतंगोत्सव' का आयोजन भी होता है। गंगा सागर में विशाल मेला लगता है। प्रयाग, काशी, हरिद्वार तथा नदियों में इस दिन पवित्र स्थान के लिए समस्त भारत उमड़ पड़ता है। सूर्यो पासना का यह पर्व शुद्ध, पवित्र एवं वैज्ञानिक - परम्परा का उत्सव माना जा सकता है।

लोहड़ी संक्रान्ति के पवित्र दिन से अनेक पौराणिक प्रसंग जड़े हैं। इस दिन विष्णु ने असुरों का संहार किया था। सगर पुत्र भागीरथ ने अपने पितरों के तर्पण के लिए स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर लाया था और गंगा सागर में मिली थी। देवव्रत भीष्म ने अपने प्राण - त्याग के लिए इसी दिन की प्रतिज्ञा ली थी। इस दिन से देवताओं का ब्राह्म मुहूर्त प्रारम्भ होता है। उत्तरायण को सिद्ध काल मानते हुए विवाह, देव - मूर्ति प्रतिष्ठा, गुरु दीक्षा आदि शुभ कार्य प्रारम्भ किए जाते हैं। शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म में सूर्य उत्तरायण और वर्षा, शरद, हेमन्त में सूर्य दक्षिणायन होते हैं। तुलसीदास की चौपाई में इस संक्रान्ति के महत्व को देखा जा सकता है -

माघ मकर रवि गति जब होई,
तीरथपति आवहिं सब कोई ।

हिमाचल प्रदेश के सोलन, विलासपुर, कांगड़ा, मण्डी, चम्बा, सिरमौर आदि क्षेत्रों में इसे बड़े उल्लास से मनाये जाने की परम्परा है। लोहड़ी में गीठ्ठे जलाकर चारों ओर बैठकर भजन - कीर्तन गाये जाते हैं। संक्रान्ति के पहले दिन तिल - गुड के लड्डू बनाना और बांटना पवित्र माना जाता है जिन्हें 'तलुंआं' कहा जाता है। गुड़ - तिल का विशेष महत्व है। अतः मूंगफली, रेवड़ियां, गजक, तिल - अलसी के लड्डू, तिल - चौली आदि बनाना अपने बन्धुओं, सम्बन्धियों को बांटना पुण्य समझा जाता है। 'घी - खिचड़ी' तो इस पर्व का प्रमुख आधार ही है। वास्तव में फसल के उत्पादों को बांटना धार्मिक दृष्टि से पुण्य समझा जाता है।

सोलन क्षेत्र में अर्की, कुनिहार, कुठाड़, महलोग, बघाट आदि क्षेत्रों में लोहड़ी के दिने बच्चे विशेषकर लड़किया निम्नलिखित लोकगीत

घर-घर जाकर गाती रहीं हैं तथा घर के मालिक-मालकिन से गुड़-रेवड़िया, तलुएं मांगते हुए आशीर्वाद देती थीं-

लोहडीए नी गीगा मोड़िये नी
गीगा जम्या था, गुड़ बंड्या था- गुड़-रेबड़िया थिया
भाइयां जोड़िया थिया, भाई ल्याऊंदा था
भाभो लैंदी थी, भाइए धूंघरु कढ़ाए, भाभो हत्थ-पैर पाये
भाभो छुणमुण करदी आई।
तिल फड़ाक्की दे दे
चावल-मोड़ी दे दे, जीयो तुस्सा रे झग्गे वाले
जीयो तुस्सा रे टोपे वाले, भरमर ल्याऊ छज्ज
बरशां दे ध्याड़े, कुडियां आइयां अज्ज
चलो री कुड़ियो मेले, रुपये साड्डे पाले
रुपये दी मैं शक्कर मंगवांवां, शक्कर मंगवांवां
आग्गे तेरी आम्मा तां डोरिया ल्यावां
गुलाब दा दाणा, गुलाब दा दाणा
अस्सी कुड़मा दे पंडोरे, सानू छींक दे डोरे।
देओ पाइयो तलुएं देआ
पाइयों दाड़ू-खोड़।

भाषा-भेद से लोहड़ी-लोक गीत संक्षिप्त रूप से भी हिमाचली क्षेत्रों में प्रचलित है-

लोहड़िये नी, गीगा मोड़िये नी गीगा जम्या था, गुड़ बंड्या था
गुड़-रेवड़िया थी
अन तिल फड़ाकी दे दे।
कुड़िया चिड़िया वन्दा दे थे,
जीये तेरे झग्गे वाला,

तेरी पगड़िया ऊपर जो
जो तेरे पुतर जन्में सौ,
तेरी पगड़िया ऊपर थाली,
तेरे पुतर जन्मे चाली,
तेरी पगड़िया ऊपर केसर
तेरा भला करे पणमेसर।

बाल-बालाओं के इन आशीर्वचनों से हिमाचली क्षेत्रों में सूर्योपासना के महापर्व को मनाने की परम्परा का पता चलता है। वास्तव में लोहड़ी पर्व वसन्त ऋतु का स्वागत-पर्व है। पर्वतीय क्षेत्रों में नदी-स्नान का विशेष महत्व है। मार्कण्डेय, तत्तापानी आदि तीर्थ स्थलों में तो प्रतिवर्ष हजारों श्रद्धालु इस दिन स्नान करने आते हैं।

श्रृंगार एवं प्रणय – गीत

शायली रे जंगले – नाटी

शायली रे जंगले चिकणी माटी
बैठी लओ भुइयां दे शुणी लओ नाटी
शायली रे जंगले फूली करयालो
आगले माणुओ पिछलेया न्यालो
शायली रे जंगले चिकणी माटी
माया रे खसमे घरो ते पट्टी।
शायली रे जंगले दिवा शलाई
आई – बलाई मेरे शिरे पाई।

सिंधिया जमाना

सिंधिया जमाना रे तेरे नैणा रे लोभी
जमाना सिंधिया
हाय ...... हाय ...... जमाना सिंधिया ......
मास खाया तेरी माथे री त्यूड़िए
लोहू पीया तेरी हाखी
जमाना सिंधिया .... हाय ......
जमाना सिंधिया...........
वार सामणा शिमला – शिमला पार सामणा जाखा
बोली चाली की आई बे छोरिए केसी जोगा ना राखा
जमाना सिंधिया .... हाय .... हाय ....
जमाना सिंधिया ....

सोलणी बजारे नींमू

सोलणी रे बजारा दे बोलूं .....
पाया पापणिए डेरा बे दाड़िये
राजी तो रैणा मेरी निमूये।

भला नी होगा वे कांशीरामा रा
जिन्ने तू परदेशा खे दित्ती बे दाड़िए
राजी तो रैणा मेरी निमूए।

भला नी होगा बे ठाणेदारा रा
जिन्ने तूं परदेशा खे दवाई बे दाड़िए
राजाी तो रैणा मेरी निमूये।
सोलणी रे बजारा दे बोलू ......

नीमू – प्रेमिका सोलन बाजार में थानेदार के फैसले पर व्याह दी जाती है इस गीत में इसकी भावनात्मक अभिव्यक्ति हुई है।

खड्ड – कुहणी

ओ नी मुइये खाड्ड़े – कुणिए
लोका जो तू देया लंगणे
जेबे पुल पड़ना किसी पनी पूछणी
आंवदे जांदे छोरुआ तारवे गूठी दशणी
लोक जो डराया न करे
लोका जो तू देया लंगणे.......
ओ नी मुइए खाड़े कुणिए
कोई वार खड़ीरा कोई पार खड़ीरा
वार – पार टपणे ते सब कोई डरदा
लोका जो डराया ना करे.......
लोका जो तू देया लंगणे.......
ओ नी मुइये खाड्डे कुणिए ....

अच्छरी

तू मोही अच्छरीये तू मोही बे
कंपणी रे बाबुए तू मोही बे
क्या लैणा अच्छरीये क्या लैणा बे
खोटे जे रपैये रा तां क्या लैणा बे..........
न्हाई लैणा अच्छरिये न्हाई लैणा बे ....
ततापाणी मारकण्ड न्हाई लैणा बे ....
जाई लैणा अच्छरिये जाई लैणा बे ....
शिमले री शड़का जाई लैणा बे ....

गंगे रामा .... परस रामा

गंगे रामा परस रामा चल पढ़ने जाणा
पढ़ी – लिखी वो अस्सा बे अड़या
भारत सुर्ग बणाणा!

गांव गांव खुले सकूला
म्हारे सकूला दे जाणा।

बणुगे देशा रे लीडर अस्से
चाचा होई गया स्याणा !

पहाड़ी देश गीत

धोबी घाटो पांदे कोट धोवे
सब जणे मिली के बोलो
म्हारे भारतो री जै होवे।
लोटे – लोटे करी पाणी भरीता

जिंदाबाद म्हारे वीर गण
जिन्ने देश आजाद करीता।

तेरे आंगणों दे बै हे झरना
गांवा रा सुधार करी के
आसा देशा रा सुधार करना।

आओ बैठी कन्ने धूप सेकी लौ
देशा री तरक्की देखणी
तो भाखड़ा डैम देखी लौ

तोले – तोले करी घीऊ मुकणा
खेती बाड़ी खूब करुंगे
तेबे बाहरला भी ऋण चुकणा।

मेरी बिनती है तुस्सा ते बैणो
देशा री तरक्की देखणी
तो गांधी जेड़ा पुत्र जणो।

पोबर – विद्रोह

नजरुए पब्बरवाले तेरा भवन चणाया था
चुप्पे मुए छोरुओ तूसे आऊं मरवाया था

नजरुए पबरवाले तेरा भवन चणाया था

बावें ते एक शंखिया आया तिन्ने मान पटाया
मोलू मैहर खरा मरेरिया चंगा फाट चलाया
पीरुओ ने तलवारा चलिया फूल्मू कैद कराया
जुग – जुग जीयो थोलो मांगता जिन्ने कवित्त बणाया !

बघाटी लोक गीत

छल्लि पांदोरिए बागोरीए, हाले लाम्बिए चीए बेरे
पशुरी जी बेदरगो चुफिए, झेल्ली राक्खि मोए जीबे बेरे ।।

आक्खिवदा तेरे काजुल सज्जा, मांज माथे दी बिन्दी बे रो
बाग प्रोली होईदी आपणी आखी, तूए बोल पाऊ किन्दी बेरे ।।

छाल्ली पांदेरे को फढ़ूरा पारणी पंछिए पीआ बेरे
ताहे खातरे सारा जम्माना, हाम्मे बैरी कीयां बेरो ।।

डाक्को पांदो रीए लदिए बोलू, छल्लि पांदो रो कागा बेरे
देशे मुलखे हांडा बथेरा, दिलडू केई नो लग्गा बेरो ।।

राज मिलो तु तब बि दूर, जीओदी बास्सिदी अस्सो पराई
करमो लिखिदी मेढई कस्सरे कब्बो केत्थी बोल तू ए बेरो ।।

पर्वतीय वायु की तीब्रता के कारण लम्बी चीलें हिल रही है। ऐसे में मैं अपनी वेदना को मौन रह कर ही सह रहा हूँ। मेरी स्थिति बिलकुल पशु की भान्ति है जो अपनी पीड़ा को बतलाने में असमर्थ होता है।

प्रिये ! तुम्हारी आंखों का कज्जल, श्वेत रंग के माथे पर लगी लाल बिंदिया बहुत ही सुन्दर लग रही है। इसे देख कर मेरा मन वश से बाहर होता जा रहा है।

धार पर स्थित जलाशय, तुम धन्य हो ! तुम्हारे जल का पान कर पक्षी तृप्त हो जाते हैं ।

साजनू

ठण्डा पानी चूड़ियां पणिरा, लाणा पातरूरा नाला
नाला मेरीए साजणुआं, लाणा पातरूरा नाला।

फुल्लिया रोला फुलटू - फुलटू, डाली फुल्लोलो कांगू
खाया पीआ तौ मुकता हाम्मे, तेरे हाथो रा मांगू।

मांगू मेरीए साजणुआं, तेरे हाथो रा मांगू
फुल्लो करोला फुलटू दाड़िए, डाली फुलणी कात्थी

तुम्मो चालो हाम्मो छाड़िरो पोरे
म्हारे चालणा था साथी।
साथी मेरीआ साजणुआं
म्हारे चालणा था साथी।

फुल्ली करोला फुलटू - फुलटू,
डाली फुलणी धतुरा
किशा झेलो मैं तेरा बछोड़ा
लग्गा कालजे दा छुरा ।।

रीत बी ना काटदा

एक्कि हात्थो दे छतरि तेरे, एकी हात्थो दे गुलाबो
रीत बी ना काटदा माठेया, इश्शा दाड़बिरा नबाबो ।।

सेरी बिचो बोल्लि अज गेरी, हरी कुकड़ी रे डाण्डे
हाम्मे ना गाई तु सुद रुआ
गाई तु गुंगिए रांण्डे ।।

एक्कि हाथो दे लोटड़ी अस्सो, दुज्जो हाथो दि करंडी
राती काटणों खे मुकरी गोआ, इश्शा माठिया घमण्डी।

एक्कि हाथो दे गलास तेरे, दुज्जे हाथो दे दुवान्नी।
उश्शेई खिड़ुणी लागिगदी मेरी, इश्शी चच्जोरी जवानी।

हिमाचल प्रदेश के कई भागों में रीत प्रथा प्रचलित है। इस प्रथा सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) का ही रूप कह सकते है। जब काई स्त्री अपने को छोड़कर अन्य पति को स्वीकारना चाहती है तब वह अपने नए पति से पहले पति को अपना मूल्य दिलवा देती है। इसी प्रथा का नाम रीत काटना है। कभी - कभी पूर्व पति रीत काटना स्वीकार नहीं करता। ऐसी ही पति प्रस्तुत गीत में हैं। गीत की नायिका सुन्दरू है और नायक माठिया है। वह सुन्दरु की बात नहीं मानता। इस पर सुन्दरू झुंजलाती है। वह दूसरा पति बनाना चाहती है। अतः इस गीत में उस नायिका की मनोदशा का वर्णन माठिया दाड़बी गांव का निवासी है जो कि ओछघाट से आगे बहने वाली नदी के पार बसा है।

स्त्री अपने को छोड़कर अन्य पति को स्वीकारना चाहती है तब वह अपने नए पति से पहले पति को अपना मूल्य दिलवा देती है। इसी प्रथा का नाम रीत काटना है। कभी - कभी पूर्व पति रीत काटना स्वीकार नहीं करता। ऐसी ही पति प्रस्तुत गीत में हैं। गीत की नायिका सुन्दरू है और नायक माठिया है। वह सुन्दरु की बात नहीं मानता। इस पर सुन्दरू झुंजलाती है। वह दूसरा पति बनाना चाहती है। अतः इस गीत में उस नायिका की मनोदशा का वर्णन माठिया दाड़बी गांव का निवासी है जो कि ओछघाट से आगे बहने वाली नदी के पार बसा है।

कान्दो पांदे बंदूकड़ी

कान्दो पांदे बन्दूकड़ी, अस्सो कम्मरे छुरा बेरे
तुम्मे चाल्ले पोरे घरा खे, हाम्मो लागणा बूरा बेरे।

सित्ती हांडो बोलो हिरणो, बिक्करी दे मोरो बेरे
हाम्मे कीए नीरे बदिद्खे म्यां, ताहे साजनो होशे बेरे।

छाल्लि पांदे अस्सो देवरा, तिन्दी गिरदी मोरी बेरे
हाम्मे तरशे देखणी खे, तुम्मे फेरी आक्खि पोरी बेरे

हरी शेरी रा भुलवा हो बो, शुक्कि शेरी रा तेलो बेरे
तुम्मी साई लाया दिलड़ू जो, शूली पांदे राखो टांगी बेरे।

प्रस्तुत गीत में नायक का प्रेम पूर्व प्रेयसी के अतिरिक्त किसी अन्य स्त्री के साथ है। अतः उसकी पूर्व प्रेयसी विरह वेदना को इस गीत मे व्यक्त करती है। तुम्हारे कन्धो पर बन्दूक तथा हाथों में छुरा है। आप तो अपने घर जा रहे हैं किन्तु मैं इस वियोग को कैसे सहन करूंगी। खेत के ऊपरी भाग में हिरण तथा निचले भाग में मोर विचर रहे हैं। अब केवल मात्र लोगों की चर्चा का विषय तथा अवयश के पात्र रह गए हैं। आप की हृदय देवी तो कोई और ही है।

पर्वत शिखर पर देव मन्दिर है। उसमें चारों ओर सुन्दर खिड़कियां हम तो तुम्हें मिलने के लिए तरसते हैं परन्तु तुम हो जो आंखें फेर रहे हैं। हरी सरसों का साग बनता है तथा उसके बीजों से तेल निकलता है। परन्तु हमने जो तुम्हें अपना प्यार है, उसी ने हमें सूली पर चढ़ा रखा है।

शिब्बी

शिब्बिए दुई दिनां दे मेले, तेरे बाग्गा दे जमटु पाक्के
मेरे बाग्गा दे केले, भला करीरो बुरा नी होणा।
भला करीरो बुरा नी होणा, रई जीओ रे खेले।
शिब्बिए ....

घाटलि पादे मीए बंगला चीरणे, राखे गिरदे खे मोरी
दुनियां देखे तु राज्जि रो दाड़िए, इणा जे मेले करले।
शिब्बिए ....

चिट्ठी लिक्खिरो जीवणा किश्शे, मिल में आईरो आप्पी
भुखा रजदा नौ नाज देखी रो, चीश्शा रजदानि तेले ।
शिब्बिए ....

गीरे टिब्बे रिए बागोरे मेरिये

गीरे टिब्बेरिए बागोरिए मेरिए हिल्ले लम्बिए चीए,
गोपे मेरीए छात्तिए ढाओ करे, हाम्मो गम्पणि खे कीए।

बुरा नि सुंचणा तेस्सार बिम्हारे, जिणीए जीओ रे टुकड़े कीए।
हाम्मो खे आश्शुरा गोहणा देइरो, मांईगे छाड़्ड़ा ना कीएं।

तेरे जीओ री बेदण कस्सरे, जाणनि कोंए न तेरा।
फाट्टे दे भाग अस्सो तेरे जिन्हो, साजन दूरो खे न्हीए।

आक्खिरे आश्शु नि पाणि रे टिप्पेई, अस्सो इ मोती रे दाणे।
कई बारे इन्ने कई रे बिछड़े, फुलटु नाड़ी खे आणे।

"हे पर्वत की वायु ! तुम निरंतर बह कर चीड़ के वृक्षों को हिलाती रहो। मेरे हृदय को तो पीड़ा सहनी ही है क्योंकि ये जो परिस्थियां उत्पन्न हुई हैं ये केवल इसी लिए हुई है।

जिसने मेरे दिल के टुकड़े - टुकड़े किये हैं ओ मुझे आंसुओं का हार पहनाया है तथा मेरा सभी कुछ छीन लिया है मैं उसका भी कभी अहित नहीं सोच सकती।"

श्रमगीत – "बूढ़ा बैल"

सोलन क्षेत्र की अर्की तहसील में एक पारम्परिक लोक गीत 'बूढ़ा बैल' परम्परा से गाया जाता रहा है जो आज लप्त प्राय: है। इस लोकगीत में बैल की व्यथा का मार्मिक चित्रण मिलता है। जीवों के प्रति

अहिंसा भाव का संदेश इसमें हार्दिक संवेदना के साथ चित्रित हुआ है –

बूढ़ा बैल बोलदा, जमींदार नो सुणाके नैणा नीर डोलदा।
भरी बे जवानी तेरा टब्बर पाल्या, टब्बर पाल्या।
आया बे बुढ़ापा तैं मण्डी तोरेया .... मण्डी तोरेया।
बूढ़ा बैल बोलदा जमींदार नो सुणके नैणा नीर डोलदा।
मेरी कांधा पांदे जुंगड़ा मुएं छिक्कड़ा, मुंए छिक्कड़ा।
केस खे सुणाऊं आपणा दुखड़ा – आपणा दुखड़ा।
बूढ़ा बैल बोलदा जमींदार नो सुणाके नैणा नीर डोलदा।
सूते दे रस्सिया मेरे गले चूमीया .... गले चूमीया
हलों री चूड़ीया मेरे खुरे खूबीया, खुरे खूबीया।
बूढ़ा बैल बोलदा, जमींदार नो सुणाके नैणा नीर डोलदा।
दाणा – पाणी देया नी मारवे कक्खव बे, देया नी कक्खव बे –
मण्डीया ना तु छाड् बूढ़ेया मारवे घरे राख बे, घरे राख बे।
बूढ़ा बैल बोलदा, जमींदार नो सुणाके नैणा नीर डोलदा।
पैनी – पैनी जी छुरी मेरे गले चूभदी, गले चूभदी।
इन्ने दावे हिन्दुआ री बेड़ी डूबदी, बेड़ी डूबदी।
बूढ़ा बैल बोलदा, जमीदार नो सुणाके नैणा नीर डोलदा।
भरी बे जवानी तेरा टब्बर पाल्या, टब्बर पाल्यां
आया बे बुढ़ापा तैं मण्डी तोरेया, मण्डी तोरेया
बूढ़ा बैल बोलदा, जमींदार नो सुणाके नैणा नीर डोल दा!

लोक कवि ने जनमानस के पशु प्रेम एवं संवेदना को बैल के आहवान के माध्यम से मार्मिक रुप से चित्रित किया है। वैसे तो प्रकृति – जगत में मानव के लिए समस्त पशु – पक्षी, जानवर हितकारी है और जीवन – सापेक्ष है किन्तु गोधन भारतीय समाज में पूजनीय और सम्पन्नता का सूचक रहा है। स्वतन्त्रता – प्राप्ति तक गाय और बैल किसी

भी व्यक्ति अथवा राजा के धन के परिमाप थे। गाय और बैल के बदले धान, कणक, गेहूं, ज्वार-बाजरा, तेल, घी आदि खरिदे जा सकते थे-इसके प्रमाण सोलन क्षेत्र ही नहीं समस्त हिमाचल प्रदेश के रजवाड़ो के ऐतिहासिक दस्तावेजों में मिलते हैं।

विडंबना है कि इतनी समृद्धि की सूचक संपदा बैल-गाय को बुढापे में गांव-नगरों की सड़कों में आवारा छोड़ा जा रहा हैं।

गसैंटू गीत

सोलन के बघाट क्षेत्र में ज्येष्ठ मास में जब गेहूं काटी जाती है तो वरुण देवता की पूजा में एक पारम्परिक नृत्य गांव के घर-घर जाकर बच्चों और जवानों द्वारा विभिन्न मुखौटे लगाकर किया जाता है। इस नृत्य को 'गसैंटू' नाच कहा जाता है।

यह नृत्य आधी रात्रि तक चलता रहता है। यह नृत्य तीन दिन तक भी चल सकता है। इसमें लोग बच्चों को आटा, गुड़, घी, चावल आदि दिया जाता है। इन अनाजों का प्रातः हलवा, खिचड़ी आदि बनाकर सारे गांव वालों को दिया जाता है। आज भी यह परम्परा कहीं-कहीं देखने को मिल सकती है-

नाचेंगे, कूदेंगे, बोह पाणी बरशाएंगे
नमाणी मेरी जिदड़ी, नमाणा मेरा खेल
सवामण जली जाओ दिऊड़ी रा तेल
एकी माइये दाणटे दिये, एकी माइये कान्नू
तियां माईरी बांगणी भुज्जू, बेशो जेरे मान्नू
नाचेंगे, कूदेंगे, बोह पाणी बरशाएंगे।

लोगों की मान्यता है कि इस नृत्य से वरुण देवता (ख्वाज़ा) प्रसन्न होता है और एकदम वर्षा हो जाती है।

लोरी

'कथा कथाणी कोगो राणी! कोगो मैंनू पाणी दित्या।
पाणी नी मैं थलुए दित्या, थलुए मैंनू धान दित्ते
धान नी मैं ऊखले पाये, ऊखले मैंनू चावल दित्ते
ऊखले मैंनू चावल दित्ते, चावल नी मैं हंडिया पाये
हांडिये मैंनू भापा दित्या, भापा जी मैं कुत्ते दित्या
कुत्ते मारखे बाचा दित्या, बाचा जी मैं राजे दित्या।
राजे मैंनू घोड़ा दित्या, घोड़ा जी मैं स्वारे दित्या
स्वारे मैंनू जोड़ा दित्या, जोड़ा जी मैं आम्मे दित्या
आम्मा मैंनू चीचू दित्या, चीचू जी मैं मुन्ने दित्या,
हाय, केड़ा मीठा लग्या।

'चूजे झाटे चामणा'

चूजे झाटे चामणा। घाड़ी नी रुड़्या बामणा !
चूंदड़ू - चोलू से कोई पाया। पटारिए राख्या।
पटारिए राख्या। पटारी केई पाई? मुशेया खाई।
मुशा केई पाया ?
बिल्लिए खाया, बिल्ली केई पाई? कुत्ने खाई।
कुत्ता केई पाया? ब्रागे खाया? ब्राग केई पाया?
भालुए मारेया भालू केई पाया?
डाले चढ़ेया डाल केई पाया?
डाल बाड़्या डाल केई गया? डाल रुड़्या
उठो लोको चील रुड़ी।
भालू था से घाड़ी रुड़या।

सोलन जनपद की बोलियां एवं उनका प्रभाव क्षेत्र

मध्यकाल की परतन्त्रता के कारण भारतीय भाषाओं का वैयाकरणिक अथवा वैज्ञानिक वर्गीकरण नहीं किया जा सका है। 1857 ई के स्वतन्त्रता संग्राम के पश्चात अंग्रजी कंपनी राज सीधा ब्रिटेन की सरकार के हाथ में आया। अपनी प्रशासन एवं विस्तार नीति के अनुसार अंग्रेजी सरकार ने भारत में ईसाई धर्म फैलाने के लिए 1880 से 1916 तक हिन्दी गद्य के माध्यम से धर्मप्रचारकों को इस कार्य में लगाया। भारत की अनपढ़ जनसंख्या में प्रचार के लिए स्थानीय भाषाओं के माध्यम की आवश्यकता थी। अत: अंग्रेज सरकार ने भारतीय भाषाओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया। भारतीय भाषाओं के वर्गीकरण एवं सांस्कृतिक धरोहर को जानने के लिए कार्य योजना तैयार की गई।

भारत की बोलियों के सर्वेक्षण का श्रेय जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन (1851-1941) को जाता है जिन्होंने ''लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया'' नाम से समस्त बोलियों का वर्गीकरण किया। आज तक इतना बड़ा सर्वेक्षण नहीं हो सका है। इस सर्वे में बुनियादी वर्गीकरण के साथ बोलियों का क्षेत्र निर्धारण भी है। कुछ अपवादों को छोड़कर बोलियों का वर्गीकरण सटीक एवं प्रामाणिक है। इतने बड़े प्रदेशों का सर्वेक्षण एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं हो सकता। इस कार्य के लिए स्थानीय प्रमुख लोगों का सहयोग लिया गया था। अन्य व्यक्तियों के सहयोग के कारण इसमें यत्र-तत्र कुछ कमियां भी है किंतु इनसे इस ऐतिहासिक ग्रंथ का महत्व कम नहीं होता। जॉर्ज ग्रियर्सन एक प्रतिभाशाली प्रशासनिक अधिकारी थे जिन्होंने 1871 ई. में इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा पास की थी तथा बंगाल में नियुक्त हुए थे।

इन्होंने अपभ्रंश के साथ भेद किए हैं-शोरसेनी, पैशाची, ब्राचड़, खस, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी और मागधी। शौरसेनी से पश्चिमी हिन्दी और इसके नागर रूप से राज्यस्थानी और गुजराती भाषाऐं निकली है। पहाड़ी भाषाओं की पश्चिमी हिन्दी तथा शौरसेनी अपभ्रंश से समानता देखकर अब विद्वान इनका सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश से ही मानने लगे हैं। ग्रियर्सन और कुछ अन्य विद्वानों ने पहाड़ी बोलियों का उद्‌गम 'खस'

अपभ्रंश से माना है। इनकी लिपि नागरी है किन्तु प्राचीन दस्तावेजों में टाकरी एवं महाजनी लिपियां भी प्रचलित रही है। 'पहाड़ी' के तीन वर्ग किए गए हैं–पूर्वी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पश्चिमी पहाड़ी। पूर्वी पहाड़ी की प्रधान बोली 'नेपाली' या 'खसखुरा' या नेपाली कहलाती है।

मध्य पहाड़ी को 'गढ़वाली' औ कुमाऊनी' कहते हैं। पश्चिमी पहाड़ी शिवालिक श्रृंखला एवं प्राचीन 'महासू' की बोलियों के रूप में वर्गीकृत हैं। ये बोलियां हैं–चंब्याली, जौनसारी, सिरमौरी आदि। इनकी संख्या 20 बताई गई हैं। प्रमुख विशेषता यह है कि इन पर राजस्थानी बोलियों का प्रभाव देखा जा सकता है।

शिमला अंग्रजों की राजधानी बना इसलिए शिमला के पास की बोली को ग्रियर्सन ने सर्वेक्षण का आधार बनाया। यह बोली थी–'क्योंथली'। ग्रियर्सन ने क्योंथली के अंतर्गत छः उप बोलियों का उल्लेख किया–सरचौली, हंडूरी, बराड़ी, शिमला सराजी, कोची और किरनी।

क्योंथली के अन्तर्गत बराड़ी और कोची बोलियां आज भी प्रचलित हैं किंतु हंडूरी नालागढ़ और सराजी दूर कुल्लू प्रदेशों की बोलियां है। संभवतः प्रशासनिक ईकाई के दृष्टिगत यह वर्गीकरण किया गया था जो पूर्णतयः संगत नहीं लगता। किरनी, बराड़ी, सराजी आदि नाम परगणों के नाम पर रखे गए थे।

सोलन जनपद की प्रमुख बोलियां :

अंग्रेज सरकार के समय 'शिमला हिल्ल स्टेटस' के अन्तर्गत क्योंथली, बघाटी, बाघली बोलियों का नामकरण किया गया था जो स्पष्ट रूप से क्योंथल (शिमला) एवं बघाट (सोलन) रियासतों के नाम से वर्गीकृत मिलता है। बोलियों को विवरण तो सही है किन्तु बोली क्षेत्र एवं प्रभाव सही नहीं लगता। आजादी के बाद इन बोलियों को महासू जिले के गठन के बाद लोअर महासू और अपर महासू की बोलियां कहा गया। लोअर महासू की बोलियों का क्षेत्र शिमला से प्रारंभ होकर दक्षिण में कसौली के पिछले भाग तक, पश्चिम में बाघल क्षेत्र की सीमा राजघाटी–नम्होल तक, शिमला के पूर्वी भाग में जुंगा तथा चायल क्षेत्र

जो गिरी नदी तक विस्तृत है इसी में आता है। इसमें अर्की, बाड़ीधार क्षेत्र, सपाटू, डगशाई, धर्मपुर, कुमारहट्टी, बड़ोगधार, सोलन, कंडाघाट आदि क्षेत्र आते हैं। इसकी सीमा बडोग से निकली नदी 'कवाल' अपने गिरि संगम तक इसकी स्पष्ट सीमा बनाती है। इसके पूरे क्षेत्र में क्योंथली, बघाटी तथा बाघली तीन बोलियां प्रमुख हैं, शेष छोटी-छोटी रियासतों की बोलियों को उप बोलियां कहा जा सकता है जैसे बाघली की आठ वर्गमील कुनिहार की बोली 'कुनिहारी' और कुठाड़ की 'कुठाड़ी' आदि।

क्योंथली का क्षेत्र कुफरी पर्वत श्रृंखला के पश्चिमी भाग से निकलने वाली 'अशणी' नदी का बायां भाग है किन्तु शिमला से प्रारम्भ दायां भाग जो नदी के पास सीमावर्ती है शिमला से कण्डाघाट तक क्योंथली से प्रभावित है किन्तु कण्डाघाट से 'अशण' तक दायां भाग बघाटी का क्षेत्र है जो आश्चर्यजनक है। वैसे 'महासूवी' नाम की कोई अलग बोली नहीं है। क्योंथली के क्षेत्र को ही महासूवी कहा गया है।

बघाटी बोली :

बघाटी बोली वर्तमान सोलन तहसील की बोली है जो कसौली पर्वतश्रृंखला के दूसरी तरफ तक फैली है। बेजा रियासत तथा कुठाड़ रियासत तक इसका उपयोग रियासती काल से रहा है। कसौली और बेजा क्षेत्र में इसे 'बझेड़ी' बोली कहा जाता है। संभवत: कसौली क्षेत्र तक रियासती समय में बेजा रियासत का प्रभुत्व रहा है क्योंकि इस क्षेत्र की बोली सोलन क्षेत्र की बघाटी से पर्याप्त विभिन्नता लिए है। फिर भी बघाटी, बझेड़ी अथवा कुठाड़ी आदि में पर्याप्त समानता है। इस विषय में यह उक्ति उचित लगती है -

'कोस - कोस में बदले पानी, कोस - कोस में बानी।'

वास्तव में बोलियों की भिन्नता में ध्वनि (लहजा), वर्णलोप, वर्णागम, प्रत्यय आदि से बोली भाषाएं भिन्न लगती हैं जबकि उनका मूल एक ही होता है।

यदि हम क्षेत्र की दृष्टि से देखें तो बघाटी, बघाट (36 वर्गमील) कुठाड़ (19 वर्गमील) एवं बेजा (4 वर्गमील) क्षेत्र में प्रचलित रही हैं। वैसे किसी भाषा को अक्षरश: रियासतों की सीमाओं में नहीं बांधा जा

सकता। सामाजिक सम्बन्धों एवं राजनैतिक कारणों से भाषाएं स्वयं प्रसरित होती रहती है।

यद्यपि बघाटी बोली को ग्रियर्सन ने इस क्षेत्र की प्रमुख भाषा कहा है, तथापि यह बाघली बोली की तुलना में कम क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली है। लोक साहित्य की दृष्टि से बाघली बोली अधिक व्यापक लगती है। बाघली को बघाटी की उप बोली मानना बिल्कुल भी न्यायसंगत नहीं लगता। इसी प्रकार हिण्डूरी बोली भी बघाटी की उप बोली भी नहीं मानी जा सकती। शिमला एवं सोलन शहरों में निवास के कारण ग्रियर्सन के अधिकारियों ने क्योंथली और बघाटी को प्रशासन की दृष्टि से आधार बनाया।

भौगोलिक दृष्टि से बाघल - बघाट पर्याप्त दूरी पर स्थित है, बीच में अन्य रियासतें पड़ती हैं अतः बाघल - बघाट की प्राचीनकाल में जब स्थापनाएं हुई थी तो अलग - अलग शासकों के राज्यों के रूप में जानी गई। बहुघाटों अथवा बारहघाटों पर राज करने वाले बघाट के शासकों ने रियासत का नाम बघाट रखा था। कुनिहार, हण्डूर आदि इससे पूर्व स्थापित रियासतें हैं। अतः बघाट के 22 घाट इन क्षेत्रों तक नहीं हो सकते। घाटों की गिनती करें तो रियासतों में घाट, तलहटियां और उपत्यकाएं हर क्षेत्र में मिलती हैं। बोलियों का प्रचार - प्रसार सांस्कृतिक एवं सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होता है।

बाघली बोली :

बाघल रियासत की बोली को ग्रियर्सन ने बघाटी के अन्तर्गत माना है। आजादी से पूर्व इसे 'बघल्याणी' भी कहा जाता था। जिस प्रकार धामी की 'धम्याणी', मांगल की 'मंगल्वाणी', चम्बा की 'चम्बयाली' आदि। किन्तु भाषा की प्रवृति की दृष्टि से बाघली संज्ञा उचित लगती है। ऐतिहासिक विवरणों में बाघल - बघाट एक साथ स्थापित हुई थी तथा परमार वंश के भाइयों ने तत्कालीन 'मावी' सामन्तों को हराकर राज्य स्थापित किए थे। अतः भाषा संस्कृति एवं कला की दृष्टि से यहां का जन जीवन पर्याप्त समानता लिए था।

ये शासक मध्य भारत धारा उज्जैन से मुगल आक्रमणों के पश्चात 13 वीं शती के अंत या 14 वीं शती के प्रारम्भ में यहां आए थे,

अतः इनकी भाषा पर मालवी, राजस्थानी, जयपुरी, हाड़ौती बोलियों का सम्मिश्रण था। इसका कारण उज्जैन के परमारों ने समस्त राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा देश के अनेक क्षेत्रों पर राज किया था । अतः स्वाभाविक रूप से यहां की बोलियों पर वहां का प्रभाव पड़ा। बघेलखंड के शासक होने के कारण यहां के प्रथम राणा ने 'बघेले' वीरों के नाम पर रियासत का नाम बाघल रखा। एक तथ्य यह भी है कि अर्की राजवंश के प्रथम शासक 'बघेली' रानी की संतान थे।

राज वंशावली के अनुसार बाघल 12 रियासतों में क्योंथल के बाद बड़ी रियासत थी। इसकी सीमाएं अर्की से पूर्व की तरफ जतोग तक फैली थी जो बाद में मायली क्षेत्र तक सिमट गई, दक्षिण में कुनिहार की 'कुहणी' नदी इसकी सीमा बनाती थी, पश्चिम में 'काली-सेली' तक फैली थी जो बाद में बाड़ी धार और राजघाटी- नम्होल तक सिमट गई थी। आजादी से पूर्व बहादुरपुर बाड़ीधार का क्षेत्र कहलूर रियासत में विलय हो गया था। दक्षिण-पश्चिम में यह दिग्गल (रामशहर) तक फैला था। उत्तर दिशा में बाघल मांगल रियासत की सीमा मलोरवर (कठपोल पर्वत) तक विस्तृत थी। क्षेत्र का विस्तार घटता-बढ़ता रहता था जैसे पोबर परगना पहले कुनिहार का भाग था किन्तु 1795 ई. के पश्चात यह बाघल में मिला दिया गया। इसके प्रमुख क्षेत्र अर्की, बातल, धुंधन, दिग्गल, कुनिहार तथा चण्डी है।

अन्ततः आजादी तक बाघल 124 वर्गमील क्षेत्र में वर्तमान था। सांस्कृतिक दृष्टि से बाघल कुनिहार, महलोग एवं हण्डूर का पहाड़ी भाग पर्याप्त समानता लिए रहा है। स्थान नामों से तो इनके नाम 'कुनिहारी', 'कुठाड़ी', 'हण्डूरी' आदि कहा जाता रहा है। किन्तु मूल रूप से ये अलग बोलियां नहीं है।

कुनिहारी, महलोगी, हण्डूरी के आधे पर्वतीय क्षेत्र की बोली बाघली की उप बोलियां मानी जा सकती है। इन तीन चार रियासतों में ही बाघली का प्रभाव नहीं है बल्कि धामी क्षेत्र भज्जी के चणौग क्षेत्र तथा बेजा रियासत की बोलियों पर भी बाघली का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। ये तथ्य इन बोलियों के तुलनात्मक अध्ययन से प्रमाणित होते हैं।

वास्तव में ये बोलियां बाघली की बहनें मानी जा सकती हैं अथवा

उप बोलियां। इनमें कालान्तर में पूर्वी हिन्दी की शब्दावली का प्रयोग भी होता रहा है। इनकी लिपि प्राचीन समय में 'टाकरी' रही है किन्तु मुख्यत: हिन्दी की देवनागरी में ही ये लिखी जाती रही हैं। बाघली में अधिकांश राजस्थानी या कहें हिन्दी शब्दों की बहुलता है। विशेष बात यह है कि इसमें महाप्राण ध्वनियों को अल्पप्राण में बदला जाता है जैसे 'झगड़ा' को 'चअगड़ा', 'धारा' को 'ताअरा', 'भला' को 'पलाअ', 'सिंघे' को 'सिंगे' आदि कुछ शब्दों में प्रत्यय जोड़ दिए जाते हैं जैसे लोगों ने-'लोके', 'लड़कों ने-'लड़केया' यानी कारक लुप्त हो जाते हैं। शेष सम्बन्धवाचक शब्दों में बघाटी या अन्य बोलियों में मामूली अंतर है जैसे-

बघाटी : 'आज भी म्हारे गावां दे कुछ मील आगे जाय रो नदी अर नाला रा मिलण असो। हामें बचपना मांए तिशखे घराटा खे जाया करू थे। तेसा जमाने बरसात भी खूब ओया करो थी। आटा पीशणे री मशीना गांवा दे न ओ थी। ई थी म्हारे जमाना री बाता। पर म्हारे बुजर्गा रे बख्ता तो इशा था जे पंद्रा-पंद्रा दिना तक जगातार बरखा री झड़ी लगी रो थी। सभी नदी नाल बारा म्हीने गदगदाए रौ थे पाणी साए। गांवा मांए बिजली रा नामो नशाण न ओ था। तियां डाबरा री कथा म्हारे पराणे बुजुर्ग आगे ते आगे शणाया करो थे। भई इयां डाबरा मांए एक राक्षस रोआ करो था।'

बाघली: आज बी म्हारे गांओं ते कुछ मील आगे जाई की नदी ओर नालो रा मिलन ए। आसे बचपनो दे तिसीए कराटो खे जाऊं थे। तेस जमाने बरसात बी खूब ओ थी। आटा पीशणे रीया मशीना गांओ दे नी ओ थिया। ये थी म्हारे जमाने री गल। पर म्हारे बुज़ूर्गा रे बख्ते तो एड़ा था पई पंद्रा-पंद्रा दिना तैई लगातार बरखा री चहड़ी लगी रओ थी। सब नदी नाले बारा म्हीने गड़गड़ांदे रओ थे। पाणियों साथे। गांओ दे बिजलिया रा नामो नशाण नी ओ था। तेबे डाबरी री कथा म्हारे परवाणे बुज़ूर्ग आगों ते आगे शणवाया करो थे पई एकी डाबरी दे एक राक्षस रओ था।''

इन सभी बोलियों की साम्यता लोक नाटय बरलाज, करियाला, लोकगीतों एवं लोक गाथाओं में स्पष्टत: देखी जा सकती है।

स्वतन्त्रता संग्राम और सोलन जनपद का योगदान

कबीलों में सरदार और समाज में राजा की व्यवस्था मानव विकास में प्राचीन काल से मिलती है। जिस समाज या कबीले की सामाजिक व्यवस्था सामूहिक भलाई के लिये उपयुक्त होती थी, वही समाज शक्ति का केन्द्र बन जाता था। प्राचीन सभ्यताओं में राजा की व्यवस्था मिलती है। वह शक्ति का केन्द्र था। उसे ईश्वर का पुत्र अथवा प्रतिनिधि माना जाता था। समस्त विश्व में राजा निरंकुश शासन करता था। उसका आदेश ईश्वरीय आदेश था तथा उसका निर्णय अन्तिम।

राजा विशेष होते हुए भी साधारण लोगों के साथ सम्पर्क रखता था। वह अपने सैनिकों के साथ युद्ध क्षेत्र में शत्रु से युद्ध करता था तथा अपने को योद्धा सिद्ध करता था। उसका लालन - पालन युद्ध में प्रवीणता एवं राजनीति के दांव - पेच सीखने के साथ होता था। वह राज्य के हितैषी और शत्रुओं का विशेष ध्यान रखता था। राजा गुप्त रुप से निर्धनों की झोंपड़ियों में रात्रि को वेष बदलकर घूमता था तथा सार्वजनिक समारोहों में आम जनों से विचार - विमर्श करता था। उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली होता था कि लोग राज - विरोध करने वालों की चुगलियां राजा से बेहिचक करते थे। प्राचीन सम्राटों, राजाओं, रजवाड़ों के अनेक किस्से इस विषय में सुनने को मिलते हैं। छोटे - बड़े राज विद्रोह इसीलिए बातों - बातों में क्रियान्वयन से पूर्व ही अनावृत हो जाते थे। इसका प्रमुख कारण भारतीय - परम्परा में राजा को देवता के रुप में मान्यता थी।

19 वीं शती से पूर्व का समाज राजनैतिक - स्वतंत्रता की दृष्टि से 'राजभक्ति' के मानदण्डों से बंधा था। निरंकुश राजशाही के प्रति वफा दारी ही देशभक्ति थी। राजा के विरुद्ध सोचना भी 'पाप' था। विरोध करना तो मौत को आमन्त्रण देना था। सैंकड़ों वर्षों की विदेशी दासता और राजशाही ने जनतन्त्र के विचार को पनपने ही नहीं दिया । 10वीं शती से पूर्व स्वदेशी शासन में जो लोकतान्त्रिक अधिकार जनता को प्राप्त थे वे

विदेशी आक्रमणों और पराजयों के पश्चात लुप्त होते गए। विशेषकर 12 वीं शती से 18 वीं शती के अन्त तक विदेशी आक्रांताओं ने भारतीय तन्त्र को तहस - नहस कर दिया। राजनैतिक संकीर्णता, मिथ्या जातीय दंभ, अंधविश्वास और स्वार्थपरता ने भारत - राष्ट्र को छोटे - छोटे राज्यों, जागीरों में बदलने को मजबूर कर दिया। सदियों की राजशाही के कारण जनता स्वतन्त्रता के विचार को नहीं अपना सकी। जनता में स्वतन्त्रता की भावना वहीं तक सीमित थी, जहां तक रजवाड़ा या शासक का हित साधन निर्बाध रहे। एक विरोधी आत्महत्या कर सकता था या राज्य से पलायन।

हिमाचली क्षेत्रों में मध्य भारत तथा दक्षिण से पलायन किए हुए राजकुमारों और रजवाड़ों ने 12 - 13 वीं शती के पश्चात तुर्कों, सुल्तानों, मुसलमानों, मुगलों से पराजित होकर आत्मरक्षा हेतु यहां शरण ली और आसानी से बिना संघर्ष के यहां छोटी - छोटी रियासतों की नींव डाली। ये रजवाड़े 'ठाकुर', 'राणा', कहलाने लगे। इन क्षेत्रों में मावी, धींग, रूण्ड अथवा अन्य कबीलाई सरदार निरंकुश शासन करते थे, किन्तु सीमित साधनों और आधुनिक युद्ध - शस्त्रों के अभाव में मैदानी सरदारों से युद्ध नहीं कर सकते थे। समकालीन युद्ध कौशल और शिक्षा - दीक्षा से हीन थे।

विशेषकर हिमाचली रियासतों के शासक अशिक्षित थे। इस युग में जनता की शिक्षा - दीक्षा का तो प्रश्न ही नहीं था। युगों से चले आए पारम्परिक काम - धन्धों का नाम मात्र ज्ञान था। राजवंशों में पढाई का चलन घर पर राजकुमारों तक ही सीमित था। हिमाचल की अपनी विशेष भौगोलिक परिस्थितिया थीं - आवागमन की, विकट पहाड़ों की, पथरीली धरती की, बीहड़ जंगलों की और उफनती गहरी नदियों की! इन प्राकृतिक बाधाओं के नदी के 'वार' का आदमी, नदी के 'पार' के आदमी से सम्पर्क बनाता भी तो कैसे? नदी बीच में जो थी .... पहाड़ सीमा पर था। धारें ही धारें। कोई लड़की का रिश्ता धारों के पार क्यों करें?

ये सीमांए 'राज्यों' ठकुराइयों की सीमा रेखाएं स्वत: ही बन जाती थीं। ठाकुरों के पास युद्ध के लिए घोड़े, हाथी तो कल्पना की बातें हो सकती थीं। मैदानों की तुलना में तो इन ठकुराइयों का शासक घोड़े,

खच्चर का व्यापारी ही लगता था। गोरखा आक्रमण (1805 - 15 ई.) से पूर्व पहाड़ी रियासतों में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि किसी ने ठाकुर या राणा के विरुद्ध द्रोह किया हो। मैदानी क्षेत्रों में में विदेशी आक्रांताओं के विरुद्ध भारतीय रियासतों के शासक व्यक्तिगत स्तर पर शत्रु का सामना करते रहे, जिन में प्राय उसकी पराजय ही होती थी। इसका कारण राजपूत शासकों का खोखला स्वाभिमान, जातीय दंग, स्वेच्छाचारिता तथा विलासिता थी। रियासतों की आपसी लड़ाइयां और झगड़े ही मध्यकाल में देखने को मिलते हैं। राष्ट्रभक्ति अपनी रियासत या राजभक्ति तक सीमित थी। 1757 ई. में प्लासी की लड़ाई के विरूद्ध दक्षिण भारत में शासकों के विरूद्ध कुछ सोचने को रियासती शासक मजबूर हुए।

गोरखा आक्रमण के समय छोटी - छोटी इन रियासतों ने इकट्ठा होने का प्रयास किया किन्तु सफल न हो सके। अतः गोरखे बिलासपुर तक सभी ठकुराइयों को जीतकर कांगड़ा तक आक्रमण कर सके। किन्तु सिक्ख - अंग्रेजों से पराजय के बाद जब अंग्रेजी सरकार ने रियासतों को स्वतन्त्र करवाया तो परिदृश्य बदल गया। अब रियासतों में आत्मरक्षा एवं आपसी सहयोग की भावना पनपने लगी। विदेशी आक्रमणकारियों से मुकाबले के लिए यह आवश्यक भी था।

1857 का स्वतन्त्रता संग्राम और सोलन :

1857 ई. से पूर्व समस्त देश में राज - व्यवस्था के प्रति आक्रोश था जो यदा - कदा प्रस्फुटित होता था। 1757 ई. के पश्चात अंग्रेजों की 'फूट डालो - राज करो' की नीति से देश में ऐसा कोई साल नहीं गुजरा जब देश के किसी न किसी भाग में ब्रिटिश सत्ता का विरोध न हुआ हो। इन विद्रोहों में प्रमुख थे -

1763 के बाद बंगाल और बिहार में सन्यासियों का विद्रोह। किसानों के विद्रोह - 1766 में मिदनापुर, 1783 में रंगपुर, 1830 - 31 में मैसूर, 1852 में खान देश। सरदारों और भू - स्वामियों के विद्रोह - 1795 - 1805 में रामनाथ पुरम, शिवगंगा, पोलिगरों के विद्रोह,

1808 - 09 में त्रावनकोर, में वेलु थंपी 1824 - 29 में किटूर की रानी चेनम्मा का विद्रोह, आदिवासियों के विद्रोह - 1871 भीलों, 1820 - 37 में कोलों, 1829 - 33 में तिरोत सिंह - खम्पियों का विद्रोह, 1806 में वेल्सुर का विद्रोह।

ये विद्रोह छिटपुट तथा स्थानीय थे, किन्तु इनका प्रभाव धीरे - धीरे समस्त देश पर पड़ता रहा। 1857 तक समस्त देश में राज व्यवस्था के शोषण के विरुद्ध जनमानस जागरुक हो गया। अंग्रेजों द्वारा राज्य - विस्तार के लिए इलाके हड़पने की नीति, ईसाई धर्म तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार तथा दूसरे धर्मों के अनादर के कारण जनमानस विद्रोह के लिए तैयार हो सका। लार्ड डलहौजी ने अपने शासन काल में नौ राज्यों को लैप्स की नीति के कारण हड़प लिया। लोगों को भय था कि ब्रिटिश सरकार उन्हें मजबूर करके ईसाई बनाना चाहती है। अंग्रेजों को भारतीय जनता के धार्मिक - विश्वासों की कोई चिन्ता न थी। गाय - सूअर की चर्बी के कारतूसों ने तो इस घृणा में आग में घी डालने का कार्य किया।

10 मई, 1857 को मेरठ में जो चिंगारी सुलगी वह समस्त भारत में फैल गई। हिमाचल में 20 मई, 1857 ई. को अम्बाला राइफल डिपों के छ: सैनिकों ने कसौली में एक पुलिस छावनी को आग लगा दी। पुलिस चौकी जलकर राख हो गई।

10 मई, 1857 को मेरठ की घटना का पता शिमला में 13 मई को लगा था। इससे यहां के अंग्रेज अफसर और उन के परिवार डरकर जान बचाने के लिए जुनगा, कोटी, बलसन, स्पाटू, डगशाई आदि रजवाड़ो के यहां तथा सैनिक छावनियों में शरण लेने को मजबूर हुए। इस समय कुछ पहाड़ी राजाओं ने थोड़े - बहुत सैनिक इस विद्रोह को निपटाने के लिए भेजे। जल्दी ही स्थिति सुधर गई और भागे हुए लोग वापिस आ गए।

स्वतंत्रता संग्राम की प्रथम लड़ाई में शिमला की बहुत कम पहाड़ी रियासतों ने अंग्रेजों का विरोध किया। इसका प्रमाण युद्ध - समाप्ति पर इन्हें सनदें तथा पुरस्कार आदि मिलने से सिद्ध होता है। अधिकांश पहाड़ी रियासतें स्थिति का जायजा लेती रहीं अथवा अंग्रेजों का साथ देने को उत्सुक रहीं।

अंग्रेजों के विरुद्ध एक गुप्त संगठन का संचालन सपाटू में राम प्रसाद बैरागी के नेतृत्व में अस्तित्व में आया। इस संगठन का उद्देश्य गुप्तचर भेजकर अथवा पत्र भेजकर क्रान्ति की योजना को सेना, जनसाधारण तथा देसी राजाओं तक पहुंचाना था। दुर्भाग्य से संगठन के कुछ पत्र अम्बाला के कमीश्नर जी. सी. वार्नर के हाथ लगे और संगठन की गतिविधियों को भेद खुल गया। इनमें दो पत्र राम प्रसाद बैरागी के थे। उसे पकड़ लिया गया और अम्बाला जेल में फांसी दे दी गई।

शिमला की एक पहाड़ी रियासत हिण्डूर में भी व्यापक असंतोष फैल गया था। 10 जून को जालन्धर से कुछ क्रान्तिकारी सतलुज पार करके लालगढ़ पहुंचे और वहां धावा बोलकर खजाना लूट लिया। उसके पश्चात वे सैनिक पहाड़ों को छोड़कर दिल्ली की और बढ़े। नालागढ़ के विद्रोह को दबाने के लिए शिमला से डिप्टी कमीश्नर विलियम हेथ ने कैप्टन बिगज़ और बाघल के मियां जय सिंह को भेजा। 20 जून तक नालागढ़ में स्थिति पर नियंत्रण पा लिया गया। इस क्रान्ति में कांगड़ा चंबा और मण्डी में कोई विशेष प्रतिक्रिया नहीं हुई। कुल्लू के एक राजकुमार प्रताप सिंह ने अंग्रेजों का विरोध करने का प्रयास किया। उसे और उसके साथी वीर सिंह को पकड़ का फांसी पर लटका दिया गया।

क्रांन्ति के परिणाम :

1857 के संग्राम के परिणामस्वरुप समस्त भारतीय रजवाड़ों में राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई किन्तु वे अंग्रेजों के अधीनस्थ गुलाम-मात्र बन गए थे। इस प्रकार भारतीय जनता एक तरफ अंग्रेजों के शोषण का शिकार बन रही थी, दूसरी तरफ इन रजवाड़ों की निरंकुशता के आगे बेबस थी और लाचार पशु की तरफ अन्याय सहन करने को मजबूर थी।

उस समय भारत में 600 रजवाड़े-देशी राज्य और रियासतें थीं जिन पर भारतीय राजा-महाराजा, ठाकुर, राणे राज करते थे। हिमाचल के पहाड़ी क्षेत्रों में देश की दूसरी रियासतों की राजशाही के विरुद्ध गतिविधियों ने विरोध की भावना पनपने लगी थी। हिमाचल में

राजाओं – राणाओं के विरुद्ध तीन प्रकार के आन्दोलन चले।

1) ये विरोध स्थानीय समस्याओं को लेकर चले। पहली प्रकार के आन्दोलन भूमि बन्दोबस्त के कारण चले।

2) दूसरी प्रकार के आन्दोलन ग्रामवासियों द्वारा अधिक कर तथा अन्य उगाहियों के कारण विरोध में चले।

3) तीसरी प्रकार के आन्दोलन भ्रष्ट राजकर्मचारियों द्वारा शोषण, अत्याचार और अन्याय के कारण चले। अधिक बेगार लेना भी एक प्रमुख कारण बना।

इन सामंतो – राजाओं के विरुद्ध विरोध के दो तरीके प्रमुख थे जिन्हें रामपुर बुशहर में ''दूम्ह''तथा बिलासपुर में ''जुग्गा'' और ''डांडरा'' के नाम से जाना गया।

''दुम्ह'': – जब कोई राजा या राणा जनता पर अत्याचार करता था तब लोग रोष स्वरुप गांव से बाहर जंगल में अपने डंगरों – को साथ लेकर घुमन्तु जीवन व्यतीत करते थे। इससे लोगों को कष्ट तो होता था, लेकिन खेतीबाड़ी का काम ठप्प पड़ जाता था। इससे राज्य को कर की क्षति होती थी। परिणाम स्वरुप शासक लोगों की मांगों को मानने पर मजबूर होता था। दुम्ह आन्दोलन शान्तिपूर्ण तथा सुनियोजित होता था इसमें प्राय: समस्त रियासत के लोग अप्रत्यक्ष विरोध प्रकट करते थे।

दुम्ह आन्दोलन सर्वप्रथम रोहड़ू क्षेत्र में 1859 ई. में हुआ इसका कारण भूमि – बन्दोबस्त था। तहसील दार श्यामलाल ने इसमें लोगों को नकद कर लगाया जिसके कारण प्रजा विरुद्ध हो गई। इस झगड़े का निपटारा शिमला के डिप्टी कमीश्नर विलियम हेथ और सुपरिन्टैण्डैण्ट वार्नस ने लोगों की मांगे मानने से करवाया।

जुग्गा आन्दोलन :

जुग्गा आन्दोलन का तरीका कहलूर में प्रचलित था। इसमें राजा की ज्यादती के विरुद्ध विद्रोही जुग्गा (घास की झोंपड़ी) बनाकर उसमें

आमरण अनशन पर बैठ जाता था। साथ में गाय या कुत्ता-बिल्ला निश्चित अवधि तक रखता था। निश्चित अवधि समाप्त होने पर वह झुग्गी में आत्मदाह कर लेता था। उसके पश्चात जानवरों सहित क्रमशः दूसरा व्यक्ति झोंपड़ी में बैठता था जब तक कि शासक उनकी बात नहीं मान लेता था। इस प्रकार की घटनाएं बिलासपुर के इतिहास 'शशिवंश विनोद' के अनुसार पंडतेहड़ा, कोट, गेहड़वीं तथा लतवाण में हुई थी।

डांडरा आंदोलन :

'डांडरा' में लोगों द्वारा राजधानी के इक्ट्ठे होकर 'हल्लागुल्ला करना तथा 'स्यापा' करना होता था।

यह विरोध भी अहिंसात्मक होता था। इसकी खबर मिलते ही राजा जनता की मांगे मानने को मजबूर हो जाता था। इसमें लोग डंडे लेकर आपस में टकराते थे। इसलिए इस का नाम ''डांडरा'' पड़ गया।

सोलन जनपद में जन आन्दोलन की रूपरेखा:

नालागढ़ में 1877 ई. में राजा ईश्वरी सिंह के वजीर गुलाम कादिर खां ने भूमि लगान बढ़ा दिया जिससे गरीब जनता विरोध करने को मजबूर हुई। लोगों ने जुलूस निकाले तथा सरकारी कर्मचारियों के कार्यों में बाधाएं डालीं। कुछ आन्दोलनकारी पकड़े गए, लेकिन छोड़ने पड़े। बजीर को लिकाल दिया गया।

बाघल में भूमि – आन्दोलन :

राजा किशन सिंह (1840 - 1876 ई.) के राज्यकाल के अन्तिम सालों में 'पोबर परगना' (डुमैहर 1875 ई.) के कनैतों का भूमि सम्बन्धी विद्रोह हुआ। इसका कारण बन्दोवस्त रिपोर्ट के अनुसार गांव सरली जो गांव ज्यालंग के कनैतों की मलकीयत था, राजा ने छीनकर सरली के द्यालों को दे दिया। इससे सारे परगना के लोग नाराज हो गए। उन्होंने रियासत का मामला (कर) देना बन्द कर दिया। तब एक सशस्त्र संघर्ष हुआ जिसमें राजा के अनेक सिपाही घायल हुए। परिणाम स्वरुप अंग्रेजों

ने सुपरिंटैण्डैण्ट पुलिस कोहेस्तानी (कंडाघाट) जिला शिमला को फैसले के लिए भेजा, विद्रोहियों को पकड़कर कैद किया गया। कुछ दिन बाद छोड़ दिया गया। राजा ने जनता पर और कर लगाया तथा प्रत्येक विद्रोही को 8000 रू. जुर्माना भी किया।

कहते हैं कि पोबर के किसी सेवानिवृत्त सूबेदार ने अर्की क्षेत्र से एक अलग तहसील बनाने की मुहिम चलाई थी जो सफल न हो सकी। पोबर परगना जो एक शती पहले कुनिहार से बाघल ने छीना था सदा विद्रोह को प्रस्तुत रहता था।

बाघल में मनलोग – बड़ोग का विद्रोह :

राजा ध्यान सिंह के समय (1887 – 1902) मशहूर घटना धुन्दन के बड़ोग गांव की बगावत है। मनलोग जंगल तीन-चार कि.मी. तक फैला घना झाड़ीनुमा जंगल था जिसमें बहुतायत में सूअर, काकड़, घोरल, मुर्गे, बन्दर आदि पाए जाते थे। जंगली सूअरों तथा अन्य जंगली जानवरों ने सपीपवर्ती गांवों की सारी फसलों को तबाह कर दिया था। इसका कारण जंगली जानवरों को मारने की मनाही थी। दूसरी और राजा शिकार का शोकीन था। वह बेगारियों के साथ मांस के लिए स्वयं शिकार करता था। कई वर्षो से बड़ोग, चमाकड़ी गांवों की उपजाऊ सिंचित भूमि बेकार हो गई थी। लोग भूखे मरने लगे। लोग बरसों तक फरियादें करते रहे किन्तु राजा के कानों पर जूं तक न रेंगी। आखिर बड़ोग गांव के लोगों ने बगावत कर दी। उन्होने फसलों का लगान देने से इन्कार कर दिया। तीन गांवों के लोग सरकारी कर्मचारियों से हिसंक विरोध को तैयार हो गये। इस अराजकता तक प्रशासन की लापरवाही का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि मनलोग जंगल का विवाद 1887 से लेकर 1902 ई. तक लगातार चलता रहा। जब लोगों ने राज-आदेशों की पूर्णत: अवहेलना की तो राजा ने मजबूरन अंग्रेज अधिकारियों से समझौते के अनुसार सेना की मदद मांगी। गांव चमाकड़ी के ब्राह्मण कृष्णदास ने अपने कुछ साथियों के साथ अंग्रेज सैनिकों से संघर्ष किया। कृष्णदास अंग्रेजी सेना में एक सैनिक था जिसने अंग्रेजों की नौकरी छोड़दी थी। कहते हैं

उसने स्वयं कुछ देसी बन्दूकें बनवाईं। जब अंग्रेज अधिकारी उसे गिरफ्तार करने आये तो वह जंगल की कन्दराओं से मोर्चा लगाकर बन्दूक से फायर करता रहा। वह कई मास तक पकड़ा नही जा सका। अन्त में एक अंग्रेज मुखबिर ने उसे धोखे से पकड़वा दिया। उसे जेल में डाल दिया गया। कुछ दिन बाद जुर्माना करके छोड़ दिया गया। आखिरकार सुपरिटैण्डैण्ट रियासत कोहेस्तानी ने इसका फैसला किया था।

1897 ई. में इसी तरह भूमि सम्बन्धी लगान के विरोध में चार परगने के लोगों ने विद्रोह किया था। ठियोग और बेजा रियासतों में भी 1898 में बन्दोबस्त के विरुद्ध जन आंदोलन हुए।

बेजा में आन्दोलन :

बेजा के ठाकुर उदय चन्द ने ज्यादा कर लगाकर (1898 ई.) परेशान किया तो लोग उसके विरुद्ध हो गये। जब उससे लोग नहीं माने तो अंग्रेज सरकार को हस्तक्षेप और कुछ नेताओं को बन्दी बना लिया गया।

बाघल में अव्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह :

(1905 ई.) राजा किशन सिंह के पश्चात बाघल रियासत में विकास के विशेष कार्य नहीं हुए। ध्यान सिंह एक अच्छा प्रशासक था, लेकिन उसे समीपवर्ती शासकों से संघर्ष करना पड़ा। ध्यान सिंह की मृत्यु के पश्चात विक्रम सिंह (1904 – 1922) राजा बना किन्तु वह अवयस्क था। इसलिए राजकार्य ध्यान सिंह के भाई और विक्रम सिंह के चाचा मिंया मान सिंह के सुपुर्द रहा। वह बजीर बनाया गया। उसके प्रशासन के विरुद्ध कनैतों ने विद्रोह कर दिया । इसका कारण राज परिवार में अपने षड्यन्त्रों तथा घपलों के कारण हुआ। लोगों ने बढ़ा हुआ लगान देना बन्द कर दिया। राज्य में अशान्ति फैल गई। महलों में रानियों के बच्चों के अधिकारो को लेकर झगड़े होते रहे।

भूमि सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिए कुमारसेन के तहसीलदार मियां शेर सिंह को काऊंसल का सदस्य बनाया गया और

'बन्दोबस्त' के लिए अधिकारी चुना गया। मिंया शेर सिंह ने भूमि बन्दोबस्त तथा लगान निश्चित कर अशन्ति को दूर किया।

कुनिहार में बेगार प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन :

1920 ई. में कुनिहार के किसानों ने बाबू कांशी राम के नेतृत्व में राणा के विरुद्ध आन्दोलन किया। ये कर्मचारियों की मनमानी तथा बेगार के विरुद्ध थे। इस आन्दोलन की प्रेरणा शिमला के सत्यानन्द स्टोक्स थे। उन्होंने इसके विरुद्ध लेख लिखे तथा सम्मेलन भी किये।

सोलन – प्रजामण्डल आन्दोलन

प्रजामण्डलों की स्थापना से पहाड़ी क्षेत्रों में राष्ट्रीय चेतना पैदा हुई। लोगों में भावना पैदा हुई कि सड़ी - गली एवं रुढ़िगत राजसी व्यवस्था के कारण प्राचीन भारत का गौरव पुनः प्रतिष्ठापित नहीं हो सकता। उसके लिए राष्ट्रीय - आन्दोलन में सहयोग आवश्यक है। राष्ट्रीय चेतना एवं स्वतन्त्रता के पीछे 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना, 1905 का बंगाल विभाजन, 1920 और 1930 ई. के महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन आदि की पृष्ठभूमि थी। रियासतों की एकता एवं अखण्डता के लिए 1927 ई. में मुम्बई में अखिल भारतीय रियासती प्रजा - परिषद का गठन किया गया। इसका पहला अधिवेशन 1927 ई. में मुम्बई में हुआ।

इस प्रकार की गतिविधियों से प्रभावित पंजाब में रियासती प्रजामण्डल का गठन हुआ। इसका एक सम्मेलन शिमला के गंज मैदान में 24 जुलाई, 1930 ई. को अमृतलाल ठाकुर की अध्यक्षता में हुआ।

हिमाचल में प्रजामण्डलों की स्थापना :

पंजाब में प्रजामण्डल की स्थापना के बाद सर्व प्रथम सिरमौर में पं. राजेन्द्र दत्त की अध्यक्षता में 'प्रजामण्डल' का गठन हुआ। 1934 ई. में सिरमौर में एक अन्य प्रजामण्डल अस्तित्व में आया। 1936 ई. में मण्डी में प्रजामण्डल की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष स्वामी पूर्णानन्द थे। इसी वर्ष

चम्बा में 'चम्बा सेवक संघ' की स्थापना हुई। 1937 ई. में धामी में बाबा नारायण दास को 'प्रेम - प्रचारिणी सभा' का अध्यक्ष बनाया गया तथा पं. सीता राम महामंत्री बने। प्रसिद्ध 'धामी काण्ड' इनके संघर्ष की ही परिणति थे। 1936 ई. में कुल्लू में लाल चन्द प्रार्थी ने 'ग्राम सुधार सभा' का गठन किया। भज्जी में भास्करानन्द ने प्रजामण्डल के माध्यम से आन्दोलन को हवा दी।

15 फरवरी, 1939 ई. को लुधियाना में आल - इण्डिया - पीपुल्स कांफ्रेस का सम्मेलन पं. जवाहरलाल नेहरु की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। इस अधिवेशन में पहाड़ी रियासतों से पं. पदम देव, भागमल सौहटा, मण्डी से स्वामी पूर्णानन्द, सिरमौर से ठाकुर हितेन्द्र सिंह, बिलासपुर से सदाराम चन्देल, चम्बा से विद्यासागर गुलाम रसूल और पृथ्वीसिंह ने भाग लिया। बाद में समस्त प्रदेश में इन क्रान्तिकारियों ने प्रजामण्डलों को सुदृढ़ किया।

बाघल प्रजामण्डल :

11 अगस्त, 1938 ई. को जीवणुराम चौहान की अध्यक्षता में 'बाघल प्रजामण्डल' की स्थापना की गई। इसमें बाघल के शिमला में कार्यरत कर्मचारी शामिल थे। मांजू के मन्शाराम चौहान इसके महा मंत्री बनाये गये, जिन्होंने वर्षो तक समस्त अर्की क्षेत्र तथा पास वर्ती रियासतों में बढ़ चढ़कर आन्दोलन का नेतृत्व किया। अर्की प्रजामण्डल के प्रधान रहते हुए इन्होंने गोपनीय ढंग से राजा तथा अंग्रेजों के विरुद्ध महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। धामी गोलीकाण्ड में राजा के विरोध में इन्होंने दिल्ली तक जनता की आवाज पहुंचाई। कहते हैं मन्शाराम चौहान रौड़ी गांव के किसी गुप्तस्थान की कंदरा में बम और विस्फोटक सामग्री तैयार करने लगे थे। क्रान्तिकारी गतिविधियों के लिए इन्होंने भज्जी डकैती में भी भाग लिया था अत: इन्हें अर्की, सुन्नी, धामी, कण्डाघाट में जेल यात्राएं करनी पड़ीं। धामी गोलीकांड में इनके साथी गांव कड़याह के देवीराम को 13 माह कारावास की सजा मिली तथा गोलीकांड में जख्मी शील गांव के नरोत्तम राम को अर्की में 13 मास की जेल हुई जिसमें ये अपना मानसिक

संतुलन खो बैठे। इनके साथी देवरा गांव के दयाराम को इसी काण्ड में कण्डाघाट में 3 वर्ष की सजा हुई। देवी राम तथा भजनू गांव जाबल, बखालग के रेवाशंकर, शिंगारु राम, पलानियाँ के शिवराम चण्डी के सीताराम आदि ने इन आन्दोलन में जेल की सजाएं काटीं। हीरासिंह पाल डुमैहर ने इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पलोग गांव के ताम्रपत्र सम्मानित पदम सिंह भज्जी, धामी सुकेत, अर्की के सभी सत्याग्रहों में शामिल रहे। पट्टा के ठाकुर दास को नालागढ़ में 3 वर्ष के कारावास की सजा भुगतनी पड़ी। इस सूची में अनेक नाम हैं - बथालंग के उगरु राम, भगोटा नालागढ़ के गंगाराम पोर गांव के गुंसाऊं राम, कोटला चण्डी के चन्दूलाल, चइयां के नारायण दास, बातल के कांशीराम सुमन, चरैल गांव के शिंगारु राम, हीरा कौसर आदि आन्दोलन से जुड़े रहे।

सोलन, लाहौर, मुल्तान तक इनकी क्रांतिकारी गतिविधियां चलती रहीं। ये 1938 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कैद किए गये। कुनिहार के ठाकुर हरिदास अनेक बार गिरफ्तार हुए। थे कुनिहार प्रजामण्डल के सचिव रहे। 1947 में हिन्दू मुसलमान दंगों में इन्होंने मुसलमानों की रक्षा की। इन्होंने प्रजामण्डल की गतिविधियों में कुठाड़, महलोग, चण्डी, नालागढ़ में भाग लिया।

पर्वतीय राजाओं का प्रजामण्डल के विरुद्ध सम्मेलन :

जून, 1939 ई. में पर्वतीय राजाओं और राणाओं ने रियासतों में प्रजामण्डल की बढ़ती गतिविधियों के विरुद्ध शिमला में एक सम्मेलन आयोजित किया। इन आन्दोलनों को वर्तमान परिस्थितियों में कुचलना कठिन था, अतः जन - नेताओं की मांगों को सहानुभूतिपूर्वक मानने पर परामर्श हुआ।

इसी समय शिमला की पहाड़ी रियासतों की विभिन्न प्रजामण्डल शाखाओं ने शिमला हिल - स्टेट्स रियासती प्रजामण्डल की स्थापना की तथा पूरे हिमाचली क्षेत्रों में राजाओं के विरुद्ध अन्याय, शोषण, बेगार तथा कर उगाही को खत्म करने हेतु आन्दोलन करने का निर्णय लिया। इस संस्था की स्थापना में रामपुर बुशैहर के पं. पदम देव, और जुब्बल के

भागमल सौहटा का विशेष योगदान रहा। इसी समय रियासत महलोग में भागमल, हीरासिंह पाल और देव सुमन ने 'प्रजामण्डल-महलोग' की स्थापना की।

कुनिहार प्रजामण्डल :

समस्त रियासती-प्रजामण्डल की स्थापना के पश्चात इसके प्रमुख नेता भागमल सोहटा, देव सुमन आदि कुनिहार में 9 जुलाई, 1939 को प्रजामण्डल की स्थापना हेतु गए। यह इसलिए आवश्यक था कि इसके आस पास की छोटी-बड़ी रियासतों को भी इसके अन्तर्गत लाया जाता। यहां एक दिलचस्प घटना सामने आई। कुनिहार के राणा हरदेव सिंह ने स्वयं कुनिहार प्रजामण्डल की स्थापना करवाई। उनकी अध्यक्षता में बाबू कांशी राम को मंडल का संरक्षक चुना गया। इस बैठक में धामी, बाघल, महलोग, पटियाला रियासतों के प्रतिनिधि भी शामिल हुए। इस घटना से सभी रियासतों के प्रजामण्डल के कार्यकर्त्ताओं के हौंसले बुलन्द हुए। अब लोग खुले मन से इसकी गतिविधियों को समर्थन देने लगे।

बाघल में प्रजामण्डल की बढ़ती गतिविधियां :

शिमला में कर्मचारी नेताओं की जागरुकता से 11 अगस्त, 1938 को अर्की की पटियाला सीमा के पास 'गुनाणा' गांव में रौड़ी गांव के मनसा राम चौहान की अध्यक्षता में 'बाघल प्रजामण्डल, की स्थापना की गई। इसमें पद्म सिंह ठाकुर, महावीर तुलसीराम, बाबू शिवदत्त जाबल, तुलसी राम, भोलू पलोग, कांशीराम मांजू, दयाराम देवरा आदि नौजवान शामिल हुए। इन नेताओं ने राजा सुरेन्द्र सिंह से अपनी मांगों को स्वीकार करने का आग्रह किया किन्तु मांगे न मानने पर अंजाम भुगतने की चेतावनी दी इन दिनों सुकेत, सिरमौर तथा बुशैहर में प्रजामण्डल की गतिविधियां तेज हो चुकी थीं। इन आन्दोलनकारियों के पास एक-दूसरे की सहायता के लिए धन की कमी थी।

बाघल की राज व्यवस्था राजा सुरेन्द्र सिंह की मिरगी की बीमारी, राजवंश में कई रानियों के आपसी द्वेष, राज परिवार के षड्यन्त्रों के

कारण सुचारु रुप से नहीं चल रही थीं। ऊपर से अंग्रेज अधिकारियों द्वारा कर की उगाही के लिए प्रजा पर अत्याचार हो रहे थे। ऐसी स्थिति में राज कर्मचारी भी राजा की कुव्यवस्था से छुटकारा पाना चाहते थे। यहां तक कि राजा की पुलिस भी प्रजामण्डल के आन्दोलनकारियों से मिली हुई थी। इस समय बाघल में इन प्रजामण्डल के कुछ कार्यकर्ताओं द्वारा अमीर लोगों से लूट – घसूट होने लगी।

सैंज डकैती काण्ड :

1942 ई. में भज्जी रियासत जो अर्की की सीमा पर है – में प्रजामण्डल के कुछ कार्यकर्ताओं ने एक धनी व्यापारी के घर तथा दुकान में सशस्त्र डाका डाला। संभवत: कार्यकर्ताओं का मकसद डाका डालना नहीं बल्कि आन्दोलन की गतिविधियों तथा दूसरी रियासतों में आने – जाने के लिए रुपयों की आवश्यकता के लिए लूट को अंजाम देना था। कहते हैं ये आन्दोलनकारी अमीरों को लूटकर रुपये गरीबों को भी दे दिया करते थे।

एक ताम्रपत्र प्राप्त स्वतन्त्रता – सेनानी के अनुसार भज्जी के दाड़गी – सैंज गांव में एक रात्रि नाटक – करियाला का आयोजन था। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर कुछ नौजवानों ने घर में घुसकर डाका डाला। दुर्भाग्य से वहां एक बच्चा सोया था, जो जागने पर रोने लगा। कहते हैं एक डंडे के प्रहार से उसकी मौत हो गई।

इस काण्ड में कई कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए, लेकिन चार व्यक्तियों को सजा सुनाई गई। इनमें मनसा राम, पुरिया राम, खुशी मुहम्मद, भोलू राम को जेल की सजाएं हुई। भोलू राम को ढाई साल जेल तथा दो सौ रुपये जुर्माना हुआ। शेष को 5 वर्ष की सजा हुई। इनकी रिहाई पटियाला से 1 जुलाई 1948 को हो सकी। इस काण्ड में मनसा राम, भोलू राम, दयाराम, दौलत राम, सैनू राम, तुलसी राम, जिया राम, जिऊणु राम आदि कार्यकर्ता थे, किन्तु यह घटना पूर्वनियोजित नहीं थी। प्रजामण्डल की गतिविधियों के खर्चों के लिए इन युवकों ने संभवत: यह कदम उठाया।

इसके पश्चात गांव डंगरोग में भी कुछ युवकों ने डाका डाला, किन्तु राजा बाघल के कर्मचारियों की मिली भगत से अपराधी नहीं पकड़े जा सके। कहते हैं नगर कोतवाल आन्दोलन कारियों की मदद करता था।

इस घटना के मुखिया तथा कुछ कार्यकर्ताओं का प्रजामण्डल – आन्दोलन में विशेष योगदान था, किन्तु इन घटनाओं ने इन्हें आजादी के पश्चात स्वतन्त्रता सेनानी पेंशन – सम्मान योजना का पात्र नहीं माना। महत्वपूर्ण बात यह रही कि जेल से रिहाई के पश्चात भी इन युवाओं ने बाडीधार में देवता के नाम पर होने वाली भैंसों की बलि का राजा – बाघल से विरोध किया तथा 1948 ई. में इस प्रथा को बन्द करवाया।

प्रजामण्डल की इन गतिविधियों से राजा – बाघल का इन आन्दोलनकारियों से भय उनके 1946 ई. में राज्या रोहण के समय दिए गये बघल्याणी बोली में दिए गये बयान से पता चलता है। राजा बाघल राजेन्द्र सिंह ने 28 पोह, संवत 2003 को गद्दी मिलने पर जनसाधारण को यह वक्तव्य 'दरबार' के समय दिया जो एक पुस्तिका में प्रकाशित है। ''आजकल दुनिया री शकल बहुत बदलने लगी रही। खास तौरो पांदे हिन्दुस्तान तो बड़े गड़बड़ाटो बिचिये निकलने लगी रिया जो गला पैले सुपने दे भी नी दिशो थिया, स्यो सामणे होणे लगी रहिया। स्वार्थी, बदमाश व गुण्डे अपणियां खुदगर्जिया खातर सीधे साधे लोका खे बहकाई के बैर, झगड़े व फसाद फैलाणे लगी रे। तिना गरीबा रा एस दावे सर्वनाश ही है। म्हारे यह पहाड़ी राज ऐसा गड़बड़िया ते एबू तई बचे दे है, पर जे आसे चौगस नहीं हुए, तो से दिन दूर नहीं है, जेबे आसा भी ऐसा आगी रे लपेटे दे आओणा, परमेश्वरो पान्दे भरोसा राखी के सच्चे बहादुर बणी के आसे एस आपणे प्यारे मुलखो री रक्षा करुंगे, तो बारे दुनियां बिचे चाहे कुछ ही हो, पर म्हारे घरे सुख चैन रहणी।''

स्वाभाविक है कि प्रजामण्डल की गतिविधियों और आजादी की राष्ट्रव्यापी क्रान्ति की आग की लपटें शिमला की रियासतों तक पहुंच चुकी थी, अतः राजा और राणे इसका विरोध करना चाहते थे।

सोलन क्षेत्र के पारम्परिक –पकवान

हर्ष – उल्लास एवं पर्व – त्योहारों पर हिमाचल के अन्य क्षेत्रों की तरह सोलन क्षेत्र में भी सुस्वाद पकवानों एवं व्यंजनों के परोसने की परम्परा रही है। वस्तुत: भौगोलिक स्थिति एवं मौसमी अनाज – सब्जियों आदि की उपलब्धता से उनसे निर्मित पकवान बनाए जाते रहे हैं। राजाओं के समय में विजय का जश्न मनाने अथवा राजकीय उत्सवों पर शाही व्यंजन बनाये जाते थे, जिन्हें स्थानीय रसोइयों के अतिरिक्त दूसरी रियासतों के पाक – विशेषज्ञों को भी बुलाया जाता था। व्यंजनों के निर्माण में विशेषज्ञों में होड़ रहती थी तथा राजा उन्हें पुरस्कृत करता था।

आम लोग शादी – व्याह एवं पर्व – त्यौहारों पर उपलब्ध अन्न – दालों से घी – तेल एवं मसालों के उपयोग से भान्ति – भान्ति के पकवान बनाते थे। हिमाचल के ऊपर पहाड़ी क्षेत्रों में जहां पांच – छ: मास बर्फ पड़ती है वहां अनाज की फसल कम होती है। वहां भेड़ – बकरी पालन की वजह से मांस पर आधारित व्यंजन बनाये जाते रहे हैं। आज यातायात के साधनों के कारण तथा बाहरी प्रभाव के कारण पारंपरिक पकवान कहीं – कहीं पर्व – त्यौहारों पर देखने को मिलते हैं। शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि तथा औद्योगीकरण के कारण 'फास्ट – फूड' का प्रचलन बढ़ा है तथा होटल ढाबों में मिश्रित व्यंजन खाने को मिलते हैं।

सोलन क्षेत्र की प्रमुख फसल मक्की रही है। इसके साथ नदी – नालों के तटों पर धान तथा आलू – कचालू, पुदीना, अलसी, तिल तथा मैदानी भागों में गेहूं तथा पारम्परिक दालें पैदा होती हैं। पारंपरिक दालों में उड़द, रौंगी (कोल), बाल्ड़ी, भरठ, सोयाबीन, मसर, कोल्थ आदि तथा साग सब्जियों में कचालू, आलू, गंड्याली, रतालू, सरसों साग, लेदड़ी साग, छूछ साग, मेथी, सोया, हालो आदि उपलब्ध होते हैं। कचनार कलियां, रामबाण, कात्थी साग, चुलाई, सेमल शमलोटू, गिडिड्यां, कोंपले, अंजीर, तरड़िया आदि । आजादी के बाद आठवें दशक तक सोलन क्षेत्र में भी परम्परिक खान – पान तथा तीज – त्यौहारों पर अनेक व्यंजनों की परम्परा रही है।

साधारणतया लोग जो फसलें पैदा करते हैं उन्हें ही खाने की परम्परा है। मक्की की रोटी और खैरू लोगों का साधारण भोजन रहा है। व्यस्त किसानों के लिए खैरू बनाना आसान तथा समय - बचत का कारण भी रहा इसमें केवल घी - तेल का 'तुड़का' लगाकर हल्दी - नमक की ही जरूरत रहती थी। दूध - घी की वज़ह से छाछ की कमी तो रहती नहीं थी। इस क्षेत्र में लोग दिन में 3 बार भोजन करते थे। सुबह के भोजन को 'दत्यालू' कहते थे, जिसमें मक्की की एक रोटी पर मक्खन या घी लगाकर नमक अथवा चाय के साथ खाते थे।

दिन के मध्य के भोजन को 'चेली' दुपैहरी कहते थे जो पूर्ण भोजन होता था। यह भोजन लोगों द्वारा घास - लकड़ी पशु - चारण अथवा खेतों में काम करने के पश्चात लिया जाता था। रात्रि के भोजन को 'ब्याली' कहा जाता था, जिसे सारा परिवार एक साथ बैठकर लेता था। आज यह ब्रेक फास्ट, लंच, डीनर में बदल गया है।

भोजन की दो श्रेणियां मानी जाती थी - कच्चा खाना और पक्का खाना। कच्चा खाना साधारण तुड़का लगाकर दाल - रोटी, खैरू, साग आदि होता था। पक्का खाना मिर्च मसालों के साथ - तलकर तैयार किया जाता था। इसे हम 'व्यंजन' भी कह सकते हैं।

भोज के अवसर पर 'बोटी - श्याण' (रसोइये) परम्परा से प्रशिक्षित होते थे जो आज भी इन अवसरों पर व्यंजन बनाते हैं। उत्सवों पर घी - शक्कर, चावल, चपाली तो आवश्यक ही थे। सोलन क्षेत्र में निम्न: प्रमुख व्यंजनों की परम्परा रही है।

आईक्लू अथवा अस्कलू :

आईक्लू चावल के आटे के बनाये जाते हैं। ये केवल दिवाली के दिन बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए चावल के आटे का पतला घोल बनाया जाता है। इन्हें तवे पर नहीं बनाया जाता। आईक्लू पत्थर की चौंसी (तवानुमा पत्थर) पर बनाया जाता है। चौंसी में छोटे - छोटे छेद होते हैं जो गोलाकार होते हैं। इनमें चावलों का घोल डाला जाता है। जब यह पक्कर अपनी जगह से छूटने लगता है तो एक सलाई के सहारे इसे

पलटते हैं। इसे आग पर भी सेंकना पड़ता है। आईक्लू को घी - शक्कर, दूध और उड़द की दाल के साथ परोसा जाता है।

चिलड़ू :

इन्हें ऐंकली भी कहा जाना है। ये गेहूं के आटे के घोल से बनाये जाते हैं। इसमें घोल कुछ गाढ़ा रखना पड़ना है। इस घोल को कटोरी से चूल्हे पर चढ़ाये तवे पर फुल्के के आकार में फैलाया जाता है। जब यह दोनों तरफ से भूरा हो जाए तो तैयार माना जाता है। इसे दाल, लस्सी, दूध, घी आदि के साथ खाया जाता है। प्रायः यह दिवाली के दिन ही बनाया जाता है ।

पटवांडा :

पटवाडे गेहूं के आटे से तैयार होते हैं। आटे के घोल को ऊंगलियों से तवे पर फैलाना पड़ता है। यह जब पक कर तवे से छूटने लगे तब इसे पलटना पड़ता है। इन्हें भी दिवाली आदि त्यौहारों पर खाने की परंपरा थी।

मालपूड़ा :

ये गेहूं के आटे के बनते है। आटे में गुड़ या चीनी मिलाकर गाढ़ा घोल तैयार किया जाता है। इन्हें बनाने के लिए बड़ी कड़ाही या तवी का प्रयोग किया जाता है। यह तवी जलेबी बनाने वाली तवी के समान होती है। तवी में जब घी या तेल गर्म हो जाए तो कटोरी से थोड़ा - थोड़ा घोल डाला जाता है। पकने पर इसे पलटना होता है। जब इसका रंग भूरा हो जाए तो यह पक कर तैयार हो जाती है।

मालपूड़े, चने दाल, सब्जी, खट्टा कद्दू आदि के साथ चाव से खाया जाता है। इन्हें विवाह का न्योता देने के लिए ननिहाल, बूआ, मासी आदि के घर भेजा जाता था। मालपूड़े का गोलाकार रूप 'गुलगुला' कहलाता है जिसे रिश्त दारों को निमन्त्रण में भेजा जाता था।

बटूरू :

बटूरू भी गेहूं के आटे के बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए पहले दिन 3 – 4 कटोरी आटा गूंथकर उसमें दहीं या लस्सी बना देते है ताकि यह खमीर बन जाए। दूसरे दिन पूरे आटे के घोल में परिमाण के अनुसार आटा गूंथा जाता है। फिर कड़ाही में तेल गर्म कर आटे के पेड़े बनाकर रोटी की तरह गोल बनाकर तला जाता है। बटूरूओं को दूध सब्जी, दाल आदि के साथ खाया जाता है। यह पकवान जन्म दिन, तीज त्यौहार आदि पवित्र दिनों में बनाया जाता है।

बेड़ी :

बेड़ीयां मक्की एवं गेहूं के आटे की बनाई जाती है। आटे को गूंथकर उसमें कचालू अथवा कुल्थ अथवा आलू आदि का 'बेड़न' भरकर तवे पर पकाया जाता है। इनमें पकाते हुए घी भी लगाया जा सकता है। बेड़ीयां किसी यात्रा के लिए प्रमुखत: बनाई जाती हैं। खेतों में काम पर जाने अथवा लड़की के साथ उसके ससुराल के लिए भी भेजी जाती है। के साथ उसके ससुराल के लिए भी भेजी जाती है।

इन्हें मक्खन लस्सी या अचार से खाया जाता है। गुड़ – तिल के तलुएं (लड्डू) भी लोहड़ी के अवसर पर बांटे तथा खाए जाते हैं। इसमें गुड़ को कड़ाही में पिघलाकर उसमें तिल डालकर लड्डू बनाए जाते हैं। बाथू के लड्डू भी इसी प्रकार बनाए जाते हैं। इन्हें व्रत पर्वों पर बांटना शुभ माना जाता है।

भल्ले, माश की दाल को भिगोकर, उसका छिलका निकाल कर पीसा जाता है, उसमें नमक, हल्दी, हींग आदि मिलाकर तवे पर तला जाता है। लोहड़ी की खिचड़ी और दिवाली के आइक्लू तो लोक गीतों में प्राय: वर्णित मिलते हैं।

धाम के पकवान

विवाह एवं यज्ञों के अवसर पर 'धाम' का निमंत्रण दिया जाता है। इसमें 5 से 7 व्यंजन परोसे जाते हैं। इन व्यंजनों में मीठा, खट्टा, मधरा तथा साधारण दाल - सब्जियां होती हैं। इनमें बेदाणा, कढ़ी, मधरी दाल, उड़द, राजमाह कचालू, गण्डयाली, कद्दू, कोल, आलू आदि प्रमुख हैं।

बेदाणा :

मीठे व्यंजन में बेदाणा बनाने के लिए पहले उड़द को भिगोकर छिलका अलग करके बारीक पीसा जाता है। इसकी पीठी बनाकर इसमें खाने का पीलारंग मिलाकर कड़ाही में झारने से गर्म तेल में बूंदी बनाई जाती है। फिर घी में पानी और चीनी मिलाकर उन्हें पका लिया जाता है। इसमें काली मिर्च, छोटी इलायची, सौंफ, गरी, दाख, छुहारा आदि डाले जाते हैं। धाम में कद्दू का मीठा, चने की दली दाल का मीठा, बेसन की बूंदी, किशमिश आदि भी परोसी जाती है। पहले बेदाणा सम्भ्रान्त परिवार की पहचान माना जाता था।

धुली दाल :

उड़द की धुली दाल धाम का श्रेष्ठ व्यंजन माना जाता है। इसका ठीक प्रकार से बनाना सरल नहीं होता । इसमें चअर (चूल्हा) की आंच का विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

'धोई दाल' बनाने के लिए उड़द को पहले दिन भिगोकर रखना पड़ता है। इसका छिलका उतार कर इसे पानी में डुबाकर रखना पड़ता है ताकि हवा न लगे फिर बटलोही में दाल के बराबर घी डालकर पकाना पड़ता है। जब यह भूरी हो जाए तो इसमें दहीं लगाया जाता है और लाल मिर्च, मेथी, जीरा, हल्दी नमक आदि डाले जाते हैं। जब ये सब इसमें पककर मिल जाएं तो इसमें बड़ी इलायची, जायफल, जावित्री डाली जाती है जिससे इसमें महक और स्वाद बढ़ता है। यह ज्यादा रसदार नहीं बनाई जाती। सोलन क्षेत्र में 'धोई दाल' धाम में एक विशेष व्यंजन माना जाता है।

मधरी दाल :

मधरा व्यंजन धाम का आवश्यक अंग है। घी-तेल में तड़का लगाने वाला कोई भी एक व्यंजन हो सकता है। यह बहुत स्वादिष्ट व्यंजन होता है, इसीलिए इसे 'मधुर' (मधरा) कहा गया है 'मधरा' आलू, कोहल (रौंगी) राजमाह, गंडयाली, जिमीकन्द, काबुली चना, उड़द, आदि का बनाया जा सकता है। मधरी दाल के लिए धुली दाल की तरह पहले इन्हें भिगोया जाता है फिर घी तेल में तलकर उसमें 'तड़का' लगाया जाता है। फिर उसमें मसाले आदि डाले जाते है। मधरे में शुद्ध घी का उपयोग भी किया जाता है।

खट्टा व्यंजन :

मधरे के बाद खट्टे व्यंजन का क्रम आता है। यह खट्टा कद्दू, खट्टा कचालू, चने की दाल, आदि का बनाया जात है। कद्दू, खट्टा कचालू, चने की दाल, आदि का बनाया जाता है। कद्दू छीलकर बड़े-बड़े टुकड़े किये जाते हैं। कड़ाही में तेल गर्म कर उसमें साबूत लाल मिर्च, धनिया, जीरा और नमक डाला जाता है। जब यह भूरा हो जाए तो इसमें कद्दू के टुकड़े डाले जाते हैं, कुछ उबलने पर इसमें अनारदाना, इमली या अमचूर डाला जाता है। स्वाद के लिए गुड़ भी डाला जाता है। इसे 'अमला' कहा जाता है। इसमें पीसकर लौंग, दालचीनी, बड़ी इलायची डाली जाती है।

आमले में भिगोकर छुंहारे भी डाले जाते है। इसी प्रकार दालों का खट्टा व्यंजन भी बनाया जाता है। खट्टे के लिए पीतल के बर्तन का प्रयोग नहीं किया जाता। इनके अतिरिक्त सादी दालों का उपयोग होता है। आधुनिक युग में मटर-पनीर, ब्रैड-मीठा एवं अन्य प्रदेशों के व्यंजन भी प्रस्तुत किए जाते हैं।

आज भी इन पकवानों की परम्परा देखने को मिल जाती है। प्राचीन समय से ही धाम में षट्रस का ध्यान रखा गया है- अम्ल (खट्टा) कटु (कड़वा) कषाय (कसैला) तिक्त (तीक्ष्ण) मधुर (मीठा) और क्षार (खारा)। ये सभी व्यंजन आज भी परंपरा से प्रचलित हैं।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में
सोलन जनपद के – लोक देवता

सोलन जनपद शिवालिक क्षेत्र की लघु पहाड़ियों के मध्य फैला रमणीक क्षेत्र है। शिवालिक की स्वास्थ्यवर्द्धक जलवायु में प्राचीन काल से ही ऋषि मुनि एंव शान्ति के पिपासु यहां निवास करते रहे हैं। इसके नदी – तटों, गुफाओं एवं उपत्यकाओं में दिव्य प्रकृति की दृष्यावलियों के मध्य वैदिक एवं पौराणिक काल में ऋषियों ने योग साधनाएं की थीं। व्यास, मार्कण्डेय, अगस्त्य, परशुराम, नृसिंह, यमदग्नि, सहस्रबाहु की गाथाओं का शिवालिक क्षेत्र से विशेष सम्बन्ध रहा है। मान्यता है कि अधिकांश वैदिक एवं पौराणिक साहित्य का प्रणयन इसी हिमालयी – प्रभाग में हुआ था। व्यास को तो बद्रीबन में रहने के कारण ही 'बादरायण व्यास' का नाम दिया गया।

लघु हिमालय की इन पर्वत – श्रेणियों को इसीलिए 'देवभूमि' का नाम दिया गया। यह क्षेत्र भौगोलिक स्थिति के अनुसार अधिकांश कांगड़ा, बिलासपुर, महासू, नालागढ़ एवं सोलन जिलों में फैला है। प्राचीन काल से ही यहाँ मानव – बस्तियों का विवरण मिलता है।

स्कन्द पुराण में इस क्षेत्र का विशद वर्णन मिलता है। शिवालिक क्षेत्र समुद्रतल से 1500 मीटर से 2000 मीटर तक की ऊँचाई में विस्तृत है। इसकी उर्वरा भूमि नदी तट, जलवायु मानव संसाधनों के रूप में प्रकृति – प्रदत्त है। देवों, दानवों, असुरों, यक्षों, नागों एवं राक्षसों की संस्कृति के अवशेष यहाँ की संस्कृति में परिलक्षित होते हैं।

महाभारत की स्मृतियों में यहां के देवस्थल तथा जनश्रुतियाँ पग – पग पर बिखरी मिलती हैं। माना जाता है कि पाण्डव अपने वनवास एवं गुप्त वास के समय यहाँ की पहाड़ियों के मध्य विचरण करते रहे। महाभारत के विराट क्षेत्र का सम्बन्ध इसी क्षेत्र से माना जाता है। महाभारत युग में चार जनपदों का उल्लेख मिलता है – औदुम्बर जनपद त्रिगर्त जनपद, कुलाटा (कुलूत) जनपद एवं कुलिन्द जनपद। त्रिगर्त रावी, व्यास और सतलुज के बीच का कांगड़ा का क्षेत्र था। औदुम्बर पठान कोट तथा पश्चिमी कांगड़ा का

भाग कुल्लूत आधुनिक कुल्लू का क्षेत्र तथा वर्तमान सोलन एवं इसकी ऐतिहासिक 18 ठकुराइयों का क्षेत्र कुलिन्द क्षेत्र के अन्तर्गत विभाजित था। प्राचीन काल में राज्यों की सीमाएँ प्राय: नदी - नालों एवं धारों से विभाजित थीं इसका कारण प्रशासन एवं सुरक्षा की दृष्टि से स्वाभाविक भी था।

आधुनिक सोलन क्षेत्र कुलिन्द जनपद का भाग रहा है। ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार कुलिन्द जनपद में कुषाण - साम्राज्य विस्तृत था। कुषाण राजाओं ने यहां ई. सन पहली से तीसरी शताब्दी तक राज किया था। कुषाण जाति चीनी क्षेत्र की एक लड़ाकू खानाबदोश जाति थी जिनका प्रसिद्ध राजा कनिष्क था। उसने अपने मगध राज्य की सीमाएं हिमालय के दामन अर्थात शिवालिक के मुहाने तक बढ़ा दी थी। अगली पहाड़ियों तक वह नहीं बढ़ सका। उसने मगध (पटना) तक का सारा क्षेत्र जीत लिया था। उसने यहां बुद्ध धर्म की महायान शाखा को अपनाया था, इसीलिए उस समय की मूर्तियों में बोधिसत्त्व की मूर्तियां अधिक हैं। उस समय की ग्रीक - भारतीय मूर्तिकला को गांधार शैली कहा गया है। कुषाणों ने भारतीय धर्म और भारतीय देवताओं की पूजा अंगीकार की थी और नाम और उपाधियां भी भारतीय परम्परा की ग्रहण की थी।

अपने सिक्के इन्होनें अपने पूर्ववर्ती ग्रीको के अनुकरण पर तांबे आदि के खुदवाए जिन पर फारसी और खरोष्ठी लिपि अंकित की। कुषाणों की सीमाएं सहारनपुर, होशियारपुर, अम्बाला से लेकर सोलन के महासू (सोलन) क्षेत्र तक प्रमाणित होती हैं। इस क्षेत्र में उन्होंने सिक्कों के रूप में निशानियाँ छोड़ी हैं जबकि मथुरा, पाटलीपुत्र आदि में उस समय के भवन, खण्डहर, देवमूर्तियां तथा सिक्के प्राप्त हो सके हैं।

इस काल के सिक्के सोलन के नालागढ़, परवाणु से भी प्राप्त हुए हैं। ये सिक्के शिमला के म्यूजियम में देखे जा सकते हैं। इनसे प्रमाणित होता है कि कुषाण शासकों का प्रशासन शिवालिक की निचली पहाड़ियों तक फैला था तथा अमोघभूति के समय होशियारपुर, अम्बाला, सोलन, महासू आदि में उनके सिक्के प्रचलित थे। ऐतिहासिक एवं सामाजिक आधार पर महासू तथा सोलन क्षेत्र के 'कनैत' जाति के लोगों को इन्हीं कुलिन्दों की संतान मान लिया जाता है।

सोलन जनपद की लोक संस्कृति शिवालिक के इतिहास की समृद्ध विरासत है। यहाँ के मन्दिर एवं देवस्थल भारतीय सनातन धर्म परम्परा का स्मरण करवाते हैं। सोलन जनपद ऐतिहासिक 'शिमला-हिल्ल-स्टेट्स' की 12 निचली ठकुराइयों में से आठ-नौ रियासतों के एकीकरण से एक सितम्बर, 1972 को हिमाचली जिलों के पुनर्गठन के समय अस्तित्व में आया था। इससे पूर्व यह क्षेत्र 'महासू' जिला के अन्तर्गत गठित किया गया था।

समान संस्कृति, भाषा एवं भौगोलिक आधार पर यह नये जनपद 'सोलन' के रूप में अस्तित्व में आया। बघाट क्षेत्र की राजकुल देवी 'शूलिनी' के नाम पर इसका नाम 'सोलन' पड़ा। पुनर्गठन से पूर्व सोलन केवल शहर का नाम था, किन्तु पुनर्गठन के समय इस नगर के महत्व के कारण इसे जिला का मुख्यालय भी बनाया गया।

सोलन जनपद के अन्तर्गत नौ रियासतों के क्षेत्र समाहित हुए। ये है-बाघल, बघाट, कुनिहार, महलोग कुठाड़, बेजा, मांगल, क्योंथल का कुछ भाग तथा हिण्डूर। इन रियासतों के शासक प्रायः इतिहास के मध्यकाल 12वीं से 16वीं शती तक पहाड़ी क्षेत्रों में पलायन से यहां बस गए थे। मध्य भारत पर सुल्तानों एवं मुगलों के आक्रमणों से पराजित ये रजवाड़े-राज कुमार जो ठाकुर कहलाते थे, इन लघु हिमालयी पहाड़ियों में दल-बल के साथ बस गए। छोटे-छोटे कबीला सरदारों को खदेड़कर ये आसानी से यहां छोटे-छोटे राज्य स्थापित कर सके। महासू को 30 ठकुराइयां इसी प्रकार अस्तित्व में आई थीं।

प्राचीन मालवा, राजस्थान, गुर्जर (गुजरात) बंगाल आदि से आए इन रजवाड़ों ने अपने धर्म, संस्कृति एवं रहन सहन का प्रभाव यहां की संस्कृति पर डाला। सैनिकों के अतिरिक्त इनके साथ इनके पुरोहित, विद्वान, कलाकार रसोइये आदि भी आए थे जिसके फलस्वरूप यहां की संस्कृति को नया रूप मिला। कहा जाता है कि वैष्णव धर्म का प्रसार बाघल, बघाट, कुठाड़, महलोग, कुठाड़ आदि में इसीलिए हुआ। यहां वैष्णव मत के देवस्थान प्राचीन काल से वर्तमान हैं। बाघल-बघाट के ठाकुर अपने साथ लक्ष्मी नारायण की मूर्तियां, खानदानी तलवार आदि

लाए थे इसीलिए उस काल के लक्ष्मी नारायण, गोपाल, राम आदि के मन्दिर इन क्षेत्रों में बहुतायत में पाए जाते हैं।

सोलन के क्षेत्रों में आदिकाल से शैव-धर्म की प्रधानता रही है। यहाँ की गुफाएं इसका प्रमाण हैं। अर्की का लूटरू महादेव (रूद्र महादेव), मुटलू गुफा, कुनिहार का शिव-डयार (शिव ताण्डव गुफा), डवारश, शकनी महादेव, शिवगुफा आसलू, कशलोग घूनी, त्रिवेणी घूनी, करोल टिब्बा गुफा तथा प्रायः समस्त क्षेत्रों में छोटी-बड़ी गुफाएँ शैव-मत के प्रारूप है। पर्वों-संक्रान्तियों पर तथा शिव रात्रि पर्व को जन समूह श्रद्धापूर्वक इनकी दर्शन प्रदक्षिणा के लिए उमड़ पड़ता है।

शिव-सती प्रसंग के कारण सती के पवित्र शरीर के हिमालय के विभिन्न स्थानों पर स्थापित स्थानों पर स्थापित होने के कारण सभी क्षेत्रों में देवियों के मन्दिर निर्मित हुए हैं। शैव-धर्म के कारण ही हिमाचली जनजीवन में रहन सहन, खान-पान एवं पूजा-विधान में तामसिक पूजा का प्रचलन रहा है।

सोलन जनपद में वैष्णव-धर्म का प्रसार मध्य भारत से आए शासकों के कारण अधिक हो सका। ये शासक अपने साथ अपने कुल देवताओं एवं राम-कृष्ण की मूर्तिया लाए थे जिन्हें यहां स्थापित किया गया था। यह तथ्य यहां के प्राचीन मन्दिरों से प्रमाणित होता है। लक्ष्मी नारायण, गोपाल, राम, नृसिंह, चण्डी, मनसा, भद्रकाली, जालपा आदि देवी-देवताओं की स्थापना इसी प्रकार मिलती है।

भगवती सती के विभिन्न रूपों की स्थापनाएं विभिन्न रियासतों में 16वीं 17वीं शताब्दियों में अधिक संख्या में होती रही। बघाट-बाघल, कुनिहार, कुठाड़, नालागढ़ आदि के मन्दिर इस काल में निर्मित हुए हैं।

इतिहासकारों के अनुसार हिमालय और विन्ध्याचल के बीच के मन्दिर राजस्थान की नागर-शैली के हैं जो शिखरों से युक्त हैं। ठकुराइयों से पूर्व हिमाचल के प्राचीन समृद्ध राज्यों चम्बा, कांगड़ा, कुल्लू और कुमाऊं में मन्दिरों का प्रचुर मात्रा में निर्माण हुआ था, कारण यहां की शान्ति एवं समृद्धि थी। ये मन्दिर अधिकतर पर्वतों को काटकर बनाए गए

हैं और साधारणतय 8वीं सदी के हैं इस प्रकार के मन्दिर शिवालिक के सोलन सिरमौर, नालागढ़ आदि क्षेत्रों में भी निर्मित हुए।

पत्थरों को तराशकर बनाए गए मन्दिर अथवा चट्टानों पर निर्मित मन्दिर 8वीं - 9वीं शताब्दी तक बने हैं। उसके पश्चात ईंट - पत्थर, गारे - सूर्खी से निर्मित मन्दिर 16 - 17वीं शती तक बनते रहे हैं। इस परम्परा का शिखर - शैली का अर्की का जखौली मन्दिर है जो पत्थर की शिलाओं को जोड़कर बनाया गया तीन कक्षों का शिखर नागर शैली का मन्दिर है। तीन लघु कक्षों को इस प्रकार जोड़ा गया है कि यह एक शिला ही दृष्टिगोचर होती है। इन में भद्रकाली, मनसा देवी तथा गणेश की प्राचीन प्रस्तर मूर्तियां स्थापित हैं। एक शिला ही दृष्टिगोचर होती है। इन में भद्रकाली, मनसा देवी तथा गणेश की प्राचीन प्रस्तर मूर्तियां स्थापित हैं।

यह मन्दिर वास्तुकला (11वीं शती) का अद्भुत नमूना है। यह पिछली सदी में खुदाई में मिला था इसलिए जनसाधारण इसे स्वयं - उत्पन्न (आप - पन्ना) मानते हैं। इस प्रकार के लघु मन्दिर क्योंथल - बघाट आदि में पाए जाते हैं किन्तु वे इतने प्राचीन नहीं है।

सोलन का नृसिंह तथा शूलिनी मन्दिर, बातल का शिव मन्दिर, वणिया देवी मन्दिर अर्की, तथा कुनिहार, दुर्गा मन्दिर पट्टा नालागढ़ के मन्दिर अधिकांश ईंट - गारे एवं ईंट - सूर्खी चूना के बने हैं जो बाद की सदियों के है।

बातल का शिव मन्दिर संवत 1814 (1757 ई.) में बना था यह इस पर अंकित भी है। इसी शैली - शिल्प के मन्दिर बरवालग शिव मन्दिर, कुनिहार तालाब मन्दिर, दाड़ला - स्यार तथा जालपा के मन्दिर 17वीं शती के आस पास बने मन्दिर है। अर्की के मन्दिरों का निर्माता राणा मेहर सिंह तथा शिवशरण सिंह को माना जाता है। धुन्दन का जालपा मन्दिर तथा गंगागीर में धुनी - मन्दिर 15वीं शती के प्राचीन मन्दिर है।

सोलन क्षेत्र में शाक्त धर्म अथवा शक्ति पूजा की परम्परा भी है। इसके समस्त क्षेत्रों में देवियों के मन्दिर मिलते हैं जो दुर्गा के स्थानीय रूप है तथा स्थानीय नामों से प्रसिद्ध हैं। जैसे बणिया देवी, जालपा देवी,

छामला देवी, मंगला माता, शीतला माता, मनसा माता, बगाइणी देवी – चण्डी देवी आदि। अधिकांश मन्दिर जलाशयों, खड्डों के आस पास है। जालपा को जल से उत्पन्न देवी माना गया है।

वस्तुत: ये रूप नवदुर्गाओं के स्थानीय रूप हैं जिन्हें मान – मनौतियों तथा आचारों के लिए स्थानीय परम्पराओं के अनुसार पूजा जाता है। शैव – वैष्णव – शाक्त मतों के अतिरिक्त इन क्षेत्रों में पितृदेवों की परम्परा वर्तमान है। ये लोकदेव राणा – ठाकुरों के पूर्वज, सन्त पुरूष योद्धा तथा पौराणिक वीर पुरूषों के प्रतीक हैं। सोलन जनपद के लोक देवों के उत्सव आज भी श्रद्धा और विश्वास के साथ मेलों के रूप में आयोजित होते हैं। पौराणिक लोक देवताओं में बाड़ा देव (महाभारत कालीन बर्बरीक) दानो देव (पौराणिक सहस्रबाहु), गण देव (रूद्रगण वीरभद्र), माहूनाग (कर्ण) आदि प्रख्यात रथ चक्रधारी – देव हैं।

राजाओं के पितृ देव अथवा योद्धा दूसरी प्रकार के लोक देवता है जो रथ – चक्र के साथ उत्सवों पर नृत्य करते हैं तथा मनौतियों के रूप में घर – घर उत्सवों पर नृत्य करते हैं तथा मनौतियों के रूप में घर – घर यात्राएं करते हैं। देव धारा वाला, बाडू बाड़ा (वीरसेन सुकेत का निर्माता), गुग्गा जाहर पीर (योद्धा), मंढ़ोड़ देव (टीका कुरगण प्रकाश) आदि देवों के धार्मिक मेले प्रदेश में बहुत प्रसिद्ध हैं।

अन्य प्रकार के लोक देवों में बाबा बालक नाथ दामोदर देव (हरसंग), अच्छू देव, संत नीकू देव, नारसिंह वजीर एवं 52 वीरों की पूजा – अर्चना पूरे जनपद में प्रचलित रही है। नदी नालों के किनारे पशुओं के रक्षक ख्वाजा देव की पूजा भी ग्राम – अंचलों में देखने को मिलती हैं। जनपद के कुछ क्षेत्रों में पीरों की मजारें भी हैं तथा दरगाहें भी। मजारे एवं गुरूद्वारे नालागढ़ तथा पंजाब से लगते क्षेत्रों में अधिक हैं। जौहड़ जी महलोग, हरिपुर का जवाहर सिंह गुरूद्वारा, दाड़ला का सरडमरास तथा रौड़ी के गुरूद्वारे सिक्ख सम्प्रदाय के इतिहास को जीवन्त करते हैं। अर्की में पीर की मजार भी है।

पाण्डवों की स्मृति में मनाया जाने वाला मेला 'बाड़ी मेला' घटोत्कच पुत्र बर्बरीक को समर्पित मेला है। कहते हैं पाण्डवों ने इस धार

पर शिवलिंग की स्थापना की थी। बर्बरीक को 'बाड़ा देव' नाम से पुकारा जाने लगा।

मान्यता है कि पाण्डव अपने वनवास के समय बाड़ी धार के विभिन्न 5 गांवों में रहते थे जिनके नाम हैं - ब्यूला, देवथल, भेलगांव, कोयला सनोग एंव अन्दरौली। इन गांवों में पाण्डवों के 5 मन्दिर हैं जहां से आषाढ़ की संक्रान्ति को इनकी मूर्तियां पालकियों में बाड़ादेव स्थल पर एकत्रित होती है। यहां प्राचीन काल से रियासत का प्रसिद्ध मेला आयोजित होता है जहाँ पर सोलन ही नहीं दूसरे जिलों के लोग भी इस पहाड़ी का भ्रमण करने आते हैं। राक्षस देव होने के कारण इस बकरे और भैंसे की बली दी जाती थी। आजादी के पूर्व इसे भैंसे की बलीदी जाती थी जिसे 1942 ई. प्रजामण्डल के लोगों ने आन्दोलन करके राजा अर्की से बन्द करवा दिया था।

बर्बरीक हिडिम्बा - भीमसेन का पौत्र था पैदा होते ही युवा हो गया था। वह धनुर्विद्या में पारंगत था। उसने गुप्त क्षेत्र में नवदुर्गाओं की तपस्या करके अमर होने का वरदान प्राप्त कर लिया था। जब आर्यावर्त के समस्त राजा महाभारत के युद्ध में कौरवों और पाण्डवों के पक्ष में इक्ट्ठे हुए तो वह भी कुरूक्षेत्र के मैदान की तरफ चला। मार्ग में उसकी भेंट श्री कृष्ण से हुई।

कृष्ण ने जब बर्बरीक से पूछा कि तुम किस पक्ष से लड़ोगे तो उसने उत्तर दिया कि जो पक्ष हार रहा होगा वह उस पक्ष से युद्ध करेगा। कृष्ण उसके उत्तर से हतप्रभ हो गए। उन्हें पता था कि बर्बरीक को अजय - अमर होने का वरदान प्राप्त है। उन्होने कूटनीति से उससे बलि मे रूप में उसका सिर मांग लिया। कृष्ण ने उसकी धनुर्विद्या की परीक्षा ली तो उन्हें मालूम हो गया कि बर्बरीक को हराना अर्जुन के बस की बात नहीं है। उन्होने अपनी योगमाया से उसे बलि के लिए इस शर्त पर तैयार कर लिया कि उसका सिर जीवित रहेगा और अपनी इच्छा के अनुसार वह सम्पूर्ण महाभारत का युद्ध देख सकेगा।

कहते हैं बर्बरीक का सिर उसकी इच्छा के अनुसार एक लम्बे बांस पर एक पहाड़ी पर लटका दिया गया था जहां से वह कुरूक्षेत्र में महाभारत का युद्ध देख सकता था। बाड़ीधार उस घटना की स्मृति है। युद्ध समाप्ति पर जब कृष्ण ने बर्बरीक के सिर से पूछा कि महाभारत युद्ध में कौन जीता और कौन हारा, तो उसने उत्तर दिया 'इस युद्ध' में न कोई जीता, न कोई हारा। मैंने यही देखा कि रण क्षेत्र में आगे – आगे कृष्ण का सुदर्शन चक्र था और पीछे – पीछे खून से भरा द्रौपदी का खप्पर।

बर्बरीक का रूप राजस्थान में कृष्ण के अवतार 'श्याम खाटू' के रूप में पूजा जाता है। उसे 'हारे हुए का सहारा' कहा जाता है। हिमाचल के कमरूनाग को भी बर्बरीक का अवतार माना जाता है। महासू के ननखड़ी एवं सोलन के घड़स्यांग क्षेत्र में इनके देवस्थल हैं।

दानो देव सोलन के दानोघाट में एक चबूतरे पर स्थित प्राचीन काल से पूज्य देव है। यह पौराणिक सहस्रबाहु की स्मृति है जिसका युद्ध भगवान परशुराम से हुआ था। परशुराम ने अपने पिता यमदग्नि की हत्या का बदला लेने के लिए सहस्रबाहु को मार गिराया था तथा अत्याचारी क्षत्रिय शासकों को 21 बार हराया था। लगता है इस देव की स्थापना भज्जी – तत्ता पानी क्षेत्र में सहस्रबाहु की मान्यता के कारण यहां हुइ हैं।

दानोघाट में ज्येष्ठ की पन्द्रहवीं तिथि को प्रति वर्ष रियासती मेला परम्परा से आयोजित होता है। शिव के रूद्ररूप को साकार करता 'गणदेव' का मन्दिर दाड़ला के कोटला पुजारिया में स्थित है।

कहते हैं यह रियासत में पूर्वकाल में अर्की के पुराने महलों में स्थित था। इसका मोहरा बाद में यहां लाया गया था। यह शिव का रूद्र रूप 'वीरभद्रगण' है। चैत्र मास के पश्चात इसका रथ पालकी के रूप में घर – घर मनौतियों के लिए ले जाया – जाता है।

कर्ण का अवतार माहू नाग देवता का प्राचीन मन्दिर चण्डी – अर्की की मंज्याटल धार पर स्थित है। इसका मूल मोहरा मण्डी की बुखारी कोठी से यहां लाया गया था। आमने – सामने की ऊँची बर्फीली धारों के कारण कहा जाता है कि देव – मोहरा उड़कर यहां आया था।

माहूनाग के विषय में सुकेत-पांगणा क्षेत्र तथा अर्की में अनेक दन्त कथाएं प्रचलित हैं। मण्डी में इसकी 12 कोठियां हैं।

पितृदेवों एवं युद्धवीरों के अनेक रूप यहां सदियों से पूजे जाते हैं। धारावाला देव सोलन जनपद का सबसे महत्त्वपूर्ण देव है। इसकी मान्यता सोलन से बाहर हरियाणा, पंजाब आदि में भी है। धारावाला देव धारा नगरी (मालवा) से आया परमार वंश का महान योद्धा जगदेव परमार है जो बाघल राजवंश का पितृ देव है। जगदेव परमार ने 13वी शती में गुजरात, राजस्थान, बंगाल आदि के राजाओं की सेना में बहादुरी के कारनामें दिखाए तथा दक्षिण भारत के राज्यों को जीतता सिंहल द्वीप तक पहुँचा। पश्चात पंजाब के साथ के क्षेत्रों को जीतता जम्मू-अखनूर तक पहुंचा जहाँ उसने 52 वर्ष राज किया। सोलन के सोलन के सेरीघाट में इस देवता का प्राचीन स्थल है जहाँ प्रत्येक संक्रान्ति को देव का उत्सव होता है।

सोलन के सपाटू की गंभर नदी के पूर्वी किनारे 'बीजू देव' (बृजेश्वर महादेव) का भव्य बहु छत शैली वाला मन्दिर है। इसे देवथल के नाम से जाना जाता है। इसका मूल मन्दिर चूड़ी-चांदनी के नीचे जुब्बल क्षेत्र में है। उसे 'बीजट देव' भी कहा जाता है। उसे प्रकाश और विद्युत का देवता माना जाता है। वस्तुत: यह श्रीगुल देवता का सहायक देव है जो कोट गुरू के अजयपाल का पुत्र था बचपन से विरागी होने के कारण वह साधु बन गया और गंभर नदी के पास देवथल में बस गया। उसके चमत्कारों के कारण उसे मृत्यूपरांत देवता के रूप में पूजा गया। इसकी मान्यता कुठाड़, बेजा, महलोग, क्योंथल, जुब्बल, चौपाल, कोटखाई, कुनिहार आदि में अधिक पाई जाती है।

सोलन के प्रख्यात लोकदेवों में बाडू बाड़ा देव का प्रमुख स्थान है। इसका मुख्य मन्दिर मांगल से लगती मंज्याटल धार के पूर्वी किनारे चोटी पर स्थित है। इसकी अन्य पूजाएं तथा रथ दाड़ला सुकेत के नालनी, बटवाड़ा तथा अनेक क्षेत्रों में स्थापित है। यह रथ-चक्रधारी देव है। इसकी मनौतियां एवं मेले फाल्गुन के पश्चात बैसाख तक आयोजित होते हैं।

बाडूबाड़ा देव सुकेत का निर्माता पराक्रमी वीरसेन है जिसने 8वीं

शती में सुकेत की स्थापना की थी। इसकी राजधानी पांगणा में थी। इस योद्धा ने सुकेत, कुल्लू, मण्डी तथा चम्बा आदि के क्षेत्रों को जीता था। हिस्ट्री ऑफ शिमला हिल्ल स्टेटस (बोगल - हुच्चीसन) के अनुसार इसने अनेक किले जीते थे - श्रीगढ़, नारायणगढ़, रघुपुर, जंज, माधोपुर बगा, चञ्ज्याला, कोट मनाली, रायसन आदि। इन किलों के स्वामी इनके अधीन हुए तथा अनेक लोक देवों के रूप में प्रतिष्ठित हुए वीर सेन के विरूद्ध - गीत घर - घर गाए जाते हैं -

'हो पगड़ा महाराजा देवा बाड़ू बाड़ेया देवा जय जय।
नेवल छोड़ेया पहाड़े नो आया, वण्या पहाड़े दा राजा
बाड़ू बाड़ेया देवा जय जय।
पहला युद्ध दिल्लिया कित्या काले अम्बे आया
काले अम्बे ते बदेया देवा काले खूण्टे आया
बाड़ू बाड़ेया देवा जय जय।
बाई गजो री पाणी मट्याल्या ये सत देख्या तेरा
बाड़ू - बाड़ेया देवा जय जय ....।'

मांगल क्षेत्र के पार सतलुज की तलहटी बाड़ू में इसका ऐतिहासिक मन्दिर होने के कारण इसे बाड़ू बाड़ा का नाम दिया गया है। मढोड़ देव का देवस्थल कराड़ाघाट (अर्की) में स्थित है। इसका मूल मन्दिर मंढोड़घाट (सन्नी) में स्थित है। दानो (सहस्रबाहु) की तरह सुन्नी क्षेत्र से प्राचीन काल में यहां इसका मोहरा लाया गया था। इस देव की स्थापनाएं मांगू, कोलका, रौड़ी आदि क्षेत्रों में रथ - चक्र सहित वर्तमान है।

मढोड़ देव सिरमौर का टीका - राजकुमार कुरगण प्रकाश है। यह गिरी नदी में बाढ़ आने एवं नाहन में महलों के नष्ट हो जाने के कारण अपने सेवक भड़ चनाल के साथ मढ़ोड़ घाट आया। यहां रानी मनसा ने इसे शरण दी थी। इन दोनों के मन्दिर एक साथ इस स्थान पर हैं।

कहते हैं सिरमौर में नटनी के शाप के कारण राजवंश खत्म हो गया था। केवल यही टीका बना था। किसी प्रेम प्रसंग के कारण इसे नलावण के लोगों ने मार दिया था। किन्तु मरने के बाद भी इसका धड़

बात करता रहा। यह प्रतापी था अतः मृत्यूपरांत इसे देव का स्थान मिला। देवता की 'भारनी' (देवगीत) से इसका वर्णन मिलता है।

> ''तोह कित्या तीन्ने नलाउणिये जगो रे निऊंदे बुलाया
> गढ़ सिरमौरो रा टीका चढ़ी पहाड़े नो आया।
> फेर टांगरूए फाट लाया –
> सिर रया तेरा हियूणे बसाले मशे रे ताने आया
> किल्टुए चकी ल्याया। टांगरूए फाट लाया ......''

इसकी यात्राएं रथ–चक्र के साथ आयोजित होती है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोक देवता है जिन्होंने जनता के लिए अच्छे कार्य किए है और मृत्यूपरांत देवता बन गए। अर्की–धुन्दन क्षेत्र का 'अच्छू देव' इस प्रकार का देव है जिसकी डाबर (झील) पवित्र मानी जाती है। इसने गोरखा आक्रमण के समय राणा अर्की की मदद की थी तथा वह राजपुरोहित था।

इसी प्रकार हरसंग धार पर हरसंग देव का प्राचीन स्थल है जिसे दामोदर देव कहा जाता है। यह सरसा पटड़ी–राजस्थान से यहां आया है। इसके मन्दिर रथचक्र सहित चनौग, बडोग, चण्डी में है। यह देव पर्व–त्यौहारों पर पूजा जाता है।

सोलन जनपद के अनेक क्षेत्रों में बाबा बालक नाथ के देवस्थल हैं। मांगल में कठपोल शिखर पर बाबा बालक नाथ का देवस्थान है जहां 26 जून को प्रतिवर्ष मेला आयोजित होता है। राजस्थान के मरू देश से सम्बन्धित देव गुग्गाजाहर पीर की पवित्र मैढ़ी सपाटू में स्थित है जहां इसका विशाल मेला आयोजित होता है

कहा जा सकता है कि सोलन क्षेत्र का सांस्कृतिक इतिहास मूल रूप से यहां के मन्दिरों एवं देव परम्परा में खोजा जा सकता है। इसके शोध की परम संभावनाएं हैं।

संदर्भ ग्रंथ – सूची, पत्र – पत्रिकाएं एवं सरकारी दस्तावेज़

1. रिपोर्ट बन्दोबस्त कानूनी रियासत बाघल – मियां शेर सिंह – 1907
2. वंशावली बाघल रियासत – अर्की
3. बाघल – राज्य प्रबन्ध – प्रणाली – सं. – 2004 वि. – राजेन्द्रसिंह पंवर
4. राज्य रोहण
5. गजेटियर ऑफ शिमला हिल – स्टेट्स – महासू डिस्ट्रीक्ट – 1910
6. जनगणना रिपोर्ट हिमाचल प्रदेश – 1911
7. पंजाब स्टेटस गजेटियर सिमला – हिल स्टेट्स बघाट – स्टेट लाहौर – 1911
8. Aitchison. C.U. A Collection of Treaties, engagements and Sanads. Calcutta - 1931
9. Panjab Hill Mahlog state, states Gazetteers of Simla Hill States-1910
10. रिपोर्ट बन्दोबस्त कानूनी रियासत महलोग – 1910
11. Punjab StatesGazetteers of Simla Hill States Kunihar State - 1911
12. Punjab State Gazetteers of Simla Hill States Kuthar-1911
13. बंशावली मांगल – स्टेट – राणा सुरेन्द्र सिंह – हस्त लिखित – 1940
14. हिमाचल प्रदेश का इतिहास – मियां गोवर्धान सिंह – रिलायंस पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली – 8
15. हिमाचल प्रदेश अंधकार से प्रकाश की ओर – रुप शर्मा, करन प्रकाशन मण्डी – 6
16. Punjab State Gazetteers-Hill States - 1910 Lahore
17. History of Punjab Hill States - 1933- J. Huchison and J. Ph. Vogel, Ph. D.

18. Remanants of a Glorious Past, Amar Chand The Tribune, July, 2001
19. दैनिक ट्रिब्यून 14 जनवरी, 2007 मकर सक्रान्ति – राधा रानी
20. Himachal Pradesh District Gazetteers, Bilaspur M. D. Mamgain -1910
21. ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में अर्की - अमरदेव आंगिरस, गिरिराज 18 मई 1983
22. Extracts from by Glossery of the Tribes and castes of the Punjab and north west frontier vol. 1- Sir Dangil Ibbetsun
23. संत सिपाही गुरु गोविन्द सिंह – गुरमीत बेदी – 2006 दैनिक ट्रिब्यून 4 जनवरी 2009
24. सिखी का दायरा – डॉ. महीप सिंह – दैनिक ट्रिब्यून 14 जून, 2009 ।
25. श्री गुरु ग्रंथ साहिब का पावन स्वरुप – डॉ. नवरत्न कपूर दैनिक ट्रिब्यून
26. Historical Biography of Ancient India 2008
27. श्री राजा राजेन्द्र सिंह जी रे भाषण 28 पोह 2003 वि. एम. सुन्दर सिंह पाल – विक्टोरिया प्रिंटिंग वर्क्स शिमला
28. A Village Survey Batal- Himachal Pradesh 1961. By R.C. Pal Singh
29. A Village Survey Shakra, Himachal Pradesh 1960. By. R. C. Pal Singh
30. हिमाचली लोकनाट्य 'धाजा' – सांस्कृतिक एवं सांगीतिक अध्ययन – 2005. प्रो. परमानन्द बंसल
31. कुल्लूत देश की कहानी – लालचंद प्रार्थी 1972
32. हिमाचल में स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास – भाषा एवं संस्कृति विभाग, हि. प्र. 1992

विमोचन



महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत अमरदेव आंगिरस की पुस्तक ''हिमाचली लोक नाट्य-धाज्जा, करियाला एवं बरलाज'' का दिनांक 31 मार्च, 2016 को राज भवन, शिमला में विमोचन करते हुए।

देव हरशिंग चनावग धार





अमर देव आंगिरस

जन्म : हिमाचल के ज़िला सोलन के गांव बातल - अर्की में 1 अगस्त, 1948

शिक्षा : एम. ए. एम. फिल्, बी. एड. प्राध्यापक, प्राचार्य (कार्य.)

प्रकाशित रचनाएं : 'राष्ट्र - अस्मिता' (काव्य संकलन), 'देवता की उत्पत्ति एवं लोक - विश्वास' (सांस्कृतिक लेख), 'घाटियों में बिखरी कथाएं' (नीति लोक - कथाएं), हिमाचली लोक नाट्य धाज्जा, करियाला एवं बरलाज, देव कुरगण मंढोड़ एवं कर्णावतार माहूनाग देव (लोक गाथाएं), 'शिवालिक संस्कृति की समृद्ध धरोहर : सोलन जनपद की लोक देव परम्परा', प्रतियोगी पत्रिकाओं में लेखन तथा देवताओं पर प्रकाशन - श्रृंखला।

'दाड़लाधार - दर्पण' और 'वीणापाणि' (पत्रिका - सम्पादन)

अन्य : स्कूली शिक्षा के दौरान लेखन आरम्भ। ' वीर प्रताप' जालन्धर, 'बाल भारती' नई दिल्ली, 'बाल सखा' दिल्ली में कविताएं तथा कहानियां प्रकाशित। तत्पश्चात देश - प्रदेश की सभी पत्र - पत्रिकाओं में हिमाचली संस्कृति पर निरन्तर रचनाएं प्रकाशित। भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश की पत्रिकाओं सोमसी विपाशा, हिमभारती, दैनिक ट्रिब्यून, दैनिक भास्कर, जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला तथा 'गिरिराज साप्ताहिक' शिमला में 1982 से निरंतर सांस्कृतिक रचनाएं प्रकाशित। प्रदेश की लेखक गोष्ठियों एवं कवि - सम्मेलनों में भाग। आकाशवाणी शिमला से दर्जनों वार्ताएं तथा नाटक प्रसारित। शिक्षा बोर्ड हि. प्र. की प्राथमिक तथा 9वीं, 10वीं कक्षाओं की पाठ्य - पुस्तकों में लेख सम्मिलित। सर्वशिक्षा अभियान में स्रोत - व्यक्ति।

सम्प्रति : हिमाचली - संस्कृति पर लेखन

सम्पर्क : अंगिरा भवन, समीप फलोद्यान, दाड़लाघाट, सोलन (हि. प्र.) 171102
मो. 94181 - 65573, 98051 - 16573

E-mail : amardevangiras@gmail.com

मूल्य - रु.350/-